

अं३२/२४

तावसेव
तावसेव

६१

तावसेव

जीवनी व्यक्तित्व तथा कृतित्व

तावसेव
तावसेव

तावसेव
तावसेव

द्विवेदी

य

१-५

तानसेन बहुचर्चित हैं; तथापि, उनके विषय में मध्ययुगीन एवं आधुनिक इतिहासकारों के विवरण एकांगी हैं; उनकी जीवनी से संबंधित किवंदंतियाँ इतिहास पर अभिभावी रही हैं; संगीत-सम्राट के कविरूप और उनके संगीत-विषयक विशद ज्ञान का समुचित मूल्यांकन अभी तक नहीं हो सका; विशेषतः इस महापुरुष के व्यक्तित्व के आकलन का प्रयास आज तक किया ही नहीं गया।

विद्वान् लेखक ने इस ग्रंथ में उपर्युक्त वृत्तियों का सफल परिमार्जन किया है। तानसेन के विषय में उपलब्ध समस्त साहित्य का विवेचन और विविध स्रोत-सामग्री का तर्क-सम्मत उपयोग करते हुए डॉ० द्विवेदी ने तानसेन की जीवनी, कृतित्व और व्यक्तित्व का निरूपण किया है। अधिकारी लेखक ने 'दरबारी गायक' के प्रवाद के घुसरित आवरण से मुक्ति दिला कर इस मनीषी युग-पुरुष के विभूति-संपन्न चरित्र का इस ग्रंथ के माध्यम से भव्य उद्घाटन किया है।

विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध तानसेन के पदों की यथाप्रसंग प्रस्तुति इस ग्रंथ की अतिरिक्त उपलब्धि है, अनेक पद इस कृति में ही सर्वप्रथम प्रकाशित हो रहे हैं।

*

साहित्यवाचस्पति डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी

दिनारा (शिवपुरी-मध्यप्रदेश) में 27 मई 1911 को जन्म।

संगीत, विशेषतः ध्रुपद गायन, ध्रुपद नृत्य और रास नृत्य के इतिहास की अध्ययनपूर्ण प्रस्तुति। तोमर-काल में ग्वालियर में विकसित संगीत की लुप्त कड़ियों की खोज और उनका प्रकाशन। ग्वालियर की संगीत-क्षेत्र की विभूतियों की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व की शोध।

726 ई० से 1193 ई० तक के दिल्ली के इतिहास के विस्मृति के अंधकार में खोए तथ्यों को खोज कर क्रांतिकारी स्थापनाएँ। मध्य-भारत के इतिहास की अभिनव रूप में प्रस्तुति। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी के साहित्य-कला-संस्कृति का केंद्र ग्वालियर के इतिहास का उद्घाटन-लोक और समाज को धुरी बना कर क्षेत्रीय इतिहास का प्रस्तुतिकरण।

चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी के ग्वालियर के हिंदी-निर्माताओं की खोज। उनकी कृतियों का संपादन; हिंदी साहित्य के इतिहास में एक सर्वथा नवीन अध्याय की स्थापना।

देश में सर्वप्रथम (1939-46 ई०) 150 से अधिक महत्वपूर्ण अधिनियमों की परिनिष्ठित हिंदी में प्रस्तुति। विधि के क्षेत्र में हिंदी की अभिव्यक्ति-सामर्थ्य प्रतिष्ठापित करने का सतत प्रयास। पैंतीस वर्ष से प्रतिष्ठित दो विधि-मासिकों और एक विधि-साप्ताहिक का संपादन। महत्वपूर्ण अधिनियमों के हिंदी और अंगरेजी में

अति प्रकाश वरन वरन पुष्प रंग ल
नन्द कारि चहु ओर फर बरसायो

रहो जौलौ धुव मेरु तारौ ।

तुम पै थावत पावत मन इच्छा स
गाय कहुँ दौर वही आज कीरत करै
अजायब कीये तानसेन प्रतिपाद

पिया की मया मो पै कही ना
तानसेन के प्रभु पलकन से

उआई उषा

हेमकिरीटिनी उषा देवी कनक वर
सिंधु दारि उदत भानु विमल सौह

विहग माधुर ललित तान गावै भुव
कमल नेत्री गायत्री जगधारी जाकी

तौनी स्खाम बाट सेक ठाडी भयो
नैन मिलाय हृदय सौ लगाय तान

सत बात करत मृदु बानी ॥

१। अनेक सृष्टि रवि पवि गये ब्रह्मा विष्णु रुद्र महामुनि प्रशन्न भये सारंग बौरायो ।
साप्त प्रगाढ साप्त गुप्त नायक गोपाल ध्यायौ तानसेन ताकी बैजू पाषाण पिघलायौ ।
तोही तैं चंद तोही तैं अग्नि-पानी नंग तोही तैं अनेक रंग ।
तोही तैं चटखताई तोही तैं भोग गत तोही तैं छूटत डर ।
मे उगे तैं सब औ चंद्र भासैं विभावान निहसे सविता कविता गर ।

हो कौ जग अजियायौ
परीछा करन हायौ ।

सत है सब तियन छाडि मेरे गृह आयौ ।
मग भारौ जीवन जन्म सुफल करायौ ॥

सविता - गेहनी उदत माधुर हास हसायौ ।
मे मानौ दिशा नागरी कनक गागरी
पानी भरि - भरि सब जग मंगल स्नान करायौ ॥

मवजीवन आनन्द मगन सब जग - जन मंगल गीतगायौ ।
रसन किरन मंजन तानसेन मानस तामस दूर करायौ ॥

हो कौ बुलाय पास अधरन को रस लीनौ ।
बंसी बजाय आदू सौ कीनौ ॥

जियै जूहमैं ब्रज बसिवौ बांसुरी न बसैं बांसुरी बसाय कान्ह हमें बिदा दीजियै ।
बांसुरी की टेर सुनत रहत ना परत मोपै कान सुनि सुनि बन बसेरौ कीजियै ॥
ते उनसुर गाये तेते हम भेद लीने जहां राग तहां दाग रोम रोम कीजियै ।
तानसेन के प्रभु दया कीजै मो पर अंग अंग चीर चीर सिंदूर मांग दीजै ॥

अनहद शब्द उपज्यौ मो घट में ताकी ध्यान धर अख्यान ।
खड्ग विभवाधार मध्यम पंचम धैर्य त्रिवाद पावे ज्यौ अति अभिराम ॥
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारौ पदारथ पावे जब प्रगायौ नाद ब्रह्म सहस्र रूप अनंद धाम ।
धर धर जौति हरि हर अचरज कर और परसैं तानसेन कंद धाम ॥

लाल बनावत नूनिहि मानत उठरी गंवार नारि चले समभवरी ।
तानसेन कहै प्रभु सैं तजो मान हाथ सैं गंवाय लाल फेर पड़त वरी ॥

तानसेन

जीवनी, व्यक्तित्व तथा कृतित्व

प्रिय लाल प्रेमन्तरा के सम्मानपूर्वक

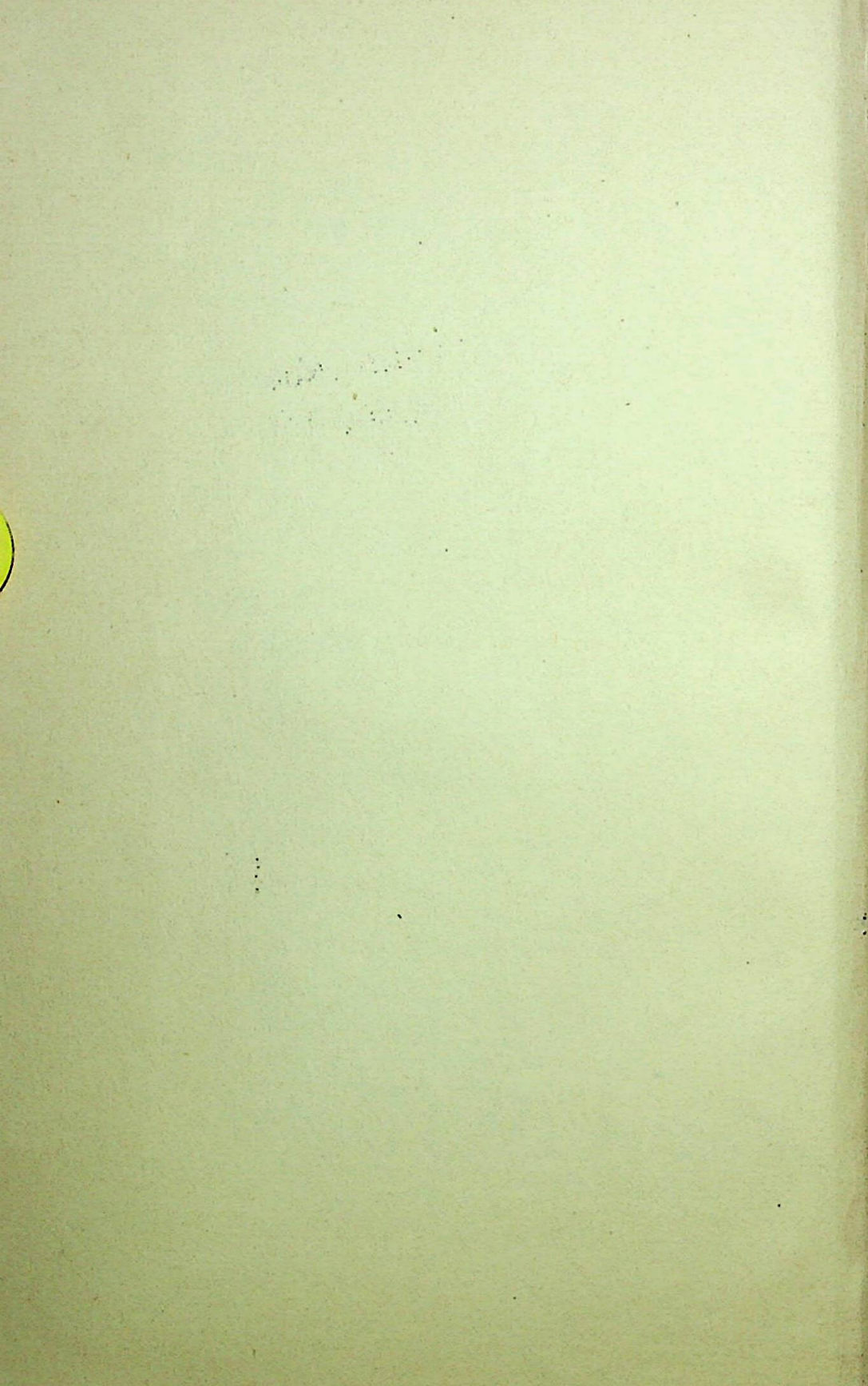
आभार

अः 2/28

आम्नाय-ग्रन्थालय,

भरतनिधि, करोली

वाराणसी-5



श्री. विनाय-ग्रन्थालय,
नरसिंह, करौली
वाराणसी-5

तानसेन

जीवनी, व्यक्तित्व तथा कृतित्व

लेखक : साहित्यवाचस्पति

डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी

एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्० (मानद)

कला और सज्जा : ऋतुराज-आशुतोष द्विवेदी

प्रथम संस्करण : जुलाई 1986

मूल्य : रु० 250/-

मुद्रक : मधुमतेयाज, ग्वालियर

प्रकाशक : विद्यामंदिर प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर-474006

Dr. Harihar Nivas Dvivedi :
TANSEN o Jivani, Vyaktitva tatha Krititva

आज्ञाय-ग्रन्थालय,
परतनिधि, करौली
पारापत्ती-५



माधवराव सिधिया

रेल राज्य मंत्री, भारत

नई दिल्ली

20 नवंबर, 1985

दो शब्द

ग्वालियर ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की कई महानतम विभूतियाँ प्रदान की हैं। इनमें तानसेन सर्वश्रेष्ठ हैं। तानसेन का नाम भारतीय शास्त्रीय संगीत के ही नहीं, अपितु विश्व संगीत के आकाश में एक दीप्यमान देनक्षत्र की भाँति सदैव जगमगाता रहेगा।

तानसेन की जीवनी के बारे में कई प्रसिद्ध मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों ने लिखा है। इनमें अकबर के समकालीन अबुलफ़ज़ल तथा बादयूनी एवं आधुनिक इतिहासकारों में डॉ० विन्सेंट स्मिथ विशेष उल्लेखनीय हैं। परंतु इन सभी इतिहासकारों के विवरण एकांगी हैं। मध्यकालीन फ़ारसी इतिहासकारों ने इस महान संगीतकार के सूरवंश के सुल्तान, बांधवगढ़ के महाराज रामचन्द्र बघेला तथा मुगल सम्राट अकबर के दरबारों से संबंधों का ही वर्णन किया है। उन्होंने तानसेन के प्रारंभिक जीवन, उनकी आस्था, विश्वास तथा धर्म आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। विन्सेंट स्मिथ और उसके अनुसरण में लिखने-वाले भारतीय इतिहासकारों ने भी मध्यकालीन लेखकों के उल्लेखों के अतिरिक्त जनश्रुतियों पर ही भरोसा किया है। उन्होंने इन मध्यकालीन उल्लेखों तथा किंवदंतियों को ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर परीक्षण करने का प्रयास नहीं किया। तानसेन के कवि-रूप और संगीत-संबंधी विशद ज्ञान पर भी अभी तक विशेष प्रकाश नहीं डाला गया है।

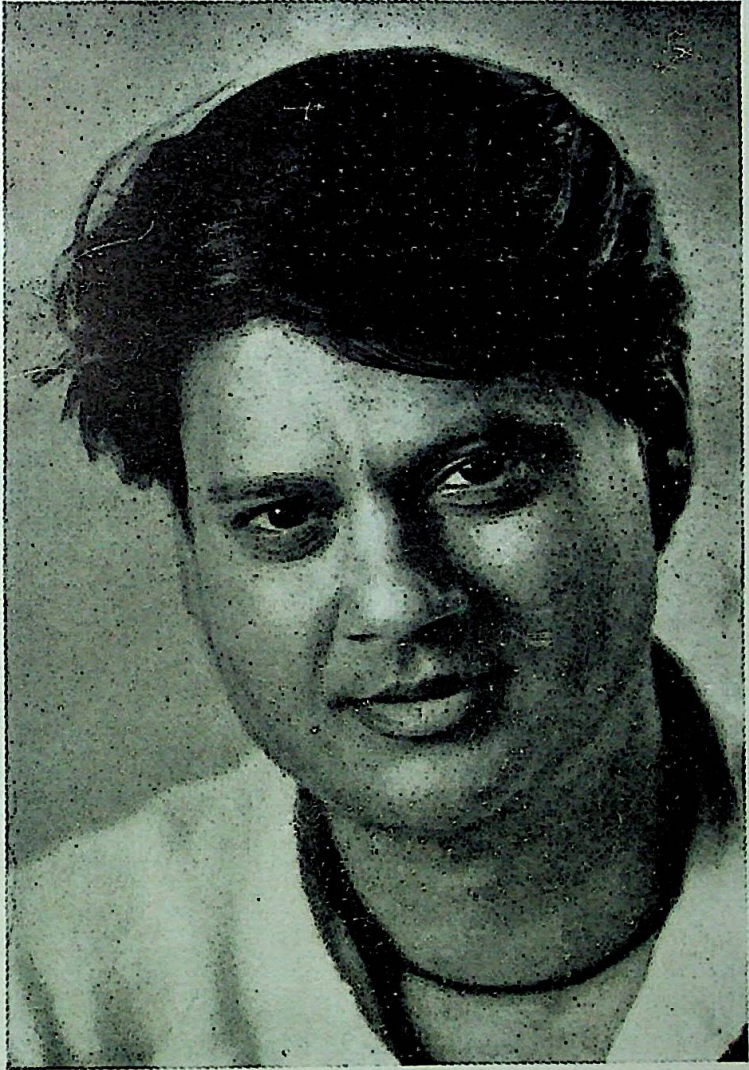
डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी ने अपनी पुस्तक में इन त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने ग्वालियरी ध्रुपद गायन

और ध्रुपद नृत्य पर जो विस्तृत ग्रंथ लिखा है, यह पुस्तक उसी की उपजात है। डॉ० द्विवेदी ने तानसेन के विषय में अभी तक उपलब्ध समस्त साहित्य का गंभीर अध्ययन करने के साथ ही उनके पदों में गुंथी ऐतिहासिक सामग्री को भी खोज निकाला है। तानसेन के कवित्व तथा संगीत-शास्त्र-संबंधी विशद ज्ञान का इस पुस्तक में प्रथम बार विवेचन किया गया है। श्री द्विवेदी ने इस पुस्तक में तानसेन की समस्त कृतियों का समावेश कर, इसकी प्रामाणिकता को द्विगुणित कर दिया है।

डॉ० द्विवेदी ने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग ग्वालियर के विगत वैभव की खोज में समर्पित किया है तथा अभी तक वे ग्वालियर के विषय में ~~अनेक~~ अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। यह पुस्तक उसी शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मुझे आशा है कि युवा पीढ़ी के इतिहासकार डॉ० द्विवेदी के अध्यवसाय-पूर्ण परिश्रम से प्रेरणा प्राप्त कर, ग्वालियर अंचल के अतीत गौरव के खोज के कार्य को और आगे बढ़ाने का यथासंभव प्रयास करेंगे।

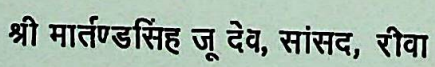
माधवराव सिंधिया

अभिजाय-अभ्यास,
भारतनिधि, करोती
वाराणसी-5



श्री माधवराव सिधिया
रेल राज्य मंत्री, भारत

1998



श्री मार्तण्डसिंह जू देव, सांसद, रीवा

प्रस्तावना

कुछ वर्ष पहले उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग में संगीतशास्त्र के प्रवाचक पद के लिए साक्षात्कार के प्रसंग में एक अभ्यर्थी से प्रश्न पूछा गया कि भारतीय संगीत का इतिहास कहाँ से आरंभ होता है। उसने उत्तर दिया—“तानसेन से”। पुनः पूछा गया कि तानसेन से पहले क्या कुछ भी नहीं था? उत्तर मिला—“नहीं”। उस समय तो उसके अज्ञान की घोरता से अभिभूत हो जाने के कारण मैं आज की शिक्षा-पद्धति की विफलता के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकी। किंतु आज उसका स्मरण करके सोचती हूँ कि भारतीय संगीत का पर्याय यदि कोई एक नाम है, तो वह है तानसेन।

तानसेन की जीवनी और व्यक्तित्व तो अधिकतर किंवदंतियों द्वारा ही आवृत है, किंतु उनका कृतित्व उनके रचित पदों के माध्यम से आंशिक रूप में हमारे समक्ष प्रकट है। गांधर्व के तीन घटक स्वर, ताल और पद ही तो हैं। इनमें से प्रथम दो तो ‘लक्षण’ के रूप में ही सुरक्षित रह पाते हैं, उनका लक्ष्यगत रूप तो प्रतिक्षण विलीन होता रहता है, किंतु ‘पद’ की सुरक्षा अपेक्षाकृत अधिक संभाव्य रहती है। लिखित और मौखिक, दोनों परंपराओं में ‘पद’ की सुरक्षा के लिए अवसर रहता है। यह अवश्य है कि प्रामाणिकता का प्रश्न वहाँ भी स्थिति को जटिल बना सकता है, किंतु फिर भी अनुमान और तर्क को जो कुछ ठोस आधार मिल सकता है, वह ‘पद’ ही है। किंतु ‘पद’ को संगीत-संबंधी ऐतिहासिक अध्ययन का आधार बनाया जाना बहुत-कुछ 1950 के बाद की ही घटना है। उदाहरण के लिए इस शताब्दी के प्रथम पाद (1919-21) में भाव-भट्ट के ग्रंथों के कुछ अध्याय जब पूना से प्रकाशित हुए तब संपादक ने रागाध्याय में संगृहीत पदों को संगीत के अध्ययन में अनुपयोगी मान कर छोड़ दिया था। संगीत-संबंधी इतिहास के अध्ययन में ‘पद’ का उपयोग जिन हिंदी के विद्वानों ने विशेष रूप से किया है, उनमें सरयू प्रसाद अग्रवाल, आचार्य, बृहस्पति, प्रभुदयाल मीतल, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी कुछ प्रमुख नाम हैं। इन में आचार्य बृहस्पति का कार्य प्रखरतम है और उसका अपना वैशिष्ट्य है।

प्रस्तुत ग्रंथ के स्वनाम-धन्य लेखक ने मुख्य रूप से 'पद' के आधार पर तानसेन की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व के बिखरे सूत्रों को बटोरने एवं अन्य प्रमाणों द्वारा उनकी परीक्षा करने का स्तुत्य प्रयास किया है। व्यापकता की दृष्टि से यह कार्य अपूर्व और अप्रतिम है। जिस विषय पर अनेक विद्वान् लेखनी चला चुके हों उस पर पुनः लेखनी उठाना बड़े साहस का काम है और हमारे प्रस्तुत विद्वान् इस साहस के अधिकृत धनी हैं। भारतीय पुरातत्त्व, इतिहास, हिंदी भाषा, साहित्य, विधि आदि अनेक विषयों की पारदर्शी विद्वत्ता और अनुपम कर्मठता से संपन्न आचार्य हरिहर निवास द्विवेदी को ही यह साहस शोभा देता है और उनकी लेखनी के स्पर्श से इस बहुचर्चित विषय के कई अँधेरे कोने आलोकित हो उठेंगे, इसमें संदेह का अवकाश नहीं है। प्रामाणिकता की उनकी कसौटी पर कई प्रचलित धारणाएँ खोटी सिद्ध हो जाएँगी।

इस प्रसंग में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ऊपर उल्लिखित विद्वानों ने जिस सामग्री का उपयोग किया है, उसकी अपेक्षा आचार्य द्विवेदी की समीक्षित सामग्री में 'सहसरस' (बस्त्रू) की वृद्धि विशेष महत्वपूर्ण है। श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय के उद्धृत पदों का समग्र भाव से उपयोग भी आपने प्रथम बार किया है।

तानसेन को गायक, संगीताचार्य के अतिरिक्त कवि के रूप में देखने की भी प्रवृत्ति कुछ विद्वानों को हुई है। सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय की बंगला पुस्तक 'भारत संस्कृति' (द्वितीय संस्करण, 1964) में 'कवि तानसेन' शीर्षक से प्रकाशित विस्तृत लेख इस का उदाहरण है। नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी की पुस्तक का ती शीर्षक ही है—'कवि तानसेन और उसका काव्य'। आचार्य द्विवेदी ने तो उनकी कवित्व-शक्ति को इस प्रकार उजागर किया है कि अब तानसेन केवल गायक या संगीतशास्त्री के रूप में विख्यात रह ही नहीं सकेंगे।

तानसेन के कवित्व के विश्लेषण में द्विवेदी जी के अपने सहज कवि-हृदय का जो परिचय मिलता है, वह अत्यंत मनोरम है। काव्य के आधार पर इतिहास का निर्माण और इतिहास के प्रतिपादन में पुनः काव्य की रचना, यह प्रक्रिया मंडलाकार है और उसका हृदय-ग्राही दर्शन इस कृति में होता है। यह प्रक्रिया भारतीय चेतना के

सर्वथा अनुकूल है। अतः इसके दर्शन से मुझे धन्यता का अनुभव हुआ है।

तानसेन की तीर्थ-यात्राएँ, उन पर सूफी मत और गोरख-पंथ का प्रभाव, उनकी तंत्र-साधना, राजाश्रय का उनके मानस पर प्रभाव कितना गहरा था इसका नवीन दृष्टि से विश्लेषण, ये सब कुछ अच्छले पहलुओं के नमूने हैं।

अनुसंधान के क्षेत्र में कोई भी कार्य 'अंतिम' नहीं कहला सकता। आचार्य द्विवेदी का यह कार्य भविष्य में अधिकाधिक अनुसंधान की प्रेरणा देगा, प्रामाणिकता की कसौटी को प्रखरतर बनाएगा, तानसेन के जीवन के किस पक्ष को कितना महत्व दिया जाए इसके औचित्य-निर्धारण के लिए मानदंड प्रस्तुत करेगा और किंवदंतियों को उनके सही स्थान पर कीलित करने में सहायक होगा। ग्वालियर की कीर्ति-पताका तो यह फहराएगा ही।

प्रस्तावना लिखने का अवसर दे कर आचार्य द्विवेदी ने मुझे जो सम्मान दिया है, उसके लिए उन्हें मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करती हूँ। हिंदी जगत में इस कृति का उचित सम्मान होगा, ऐसी मेरी श्रद्धा है। प्रभु से प्रार्थना है कि द्विवेदी जी सुदीर्घकाल तक भगवती भारती के भंडार को अमूल्य मणियों से भरते रहें।

डा० (कु०) प्रेमलता शर्मा

वाइस चांसलर

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

निवेदन

मानसिंह तोमर के संगीत-शास्त्रियों द्वारा विरचित 'मान-कुतूहल' के फ़कीरुल्ला सैफ़खाँ द्वारा फ़ारसी में 'रागदर्पण' के नाम से किए गए अनुवाद का हिंदी अनुवाद सन् 1954 में मैंने प्रस्तुत किया था। तब से मैं निरंतर ऐसे महान् व्यक्ति या व्यक्तियों की खोज में रहा, जिनके द्वारा भारत का गौरव इस देश में ही नहीं, भारत के बाहर भी अनेक देशों में प्रकाशित हुआ हो। मेरी दृष्टि में इस कसौटी पर महाराज मानसिंह तोमर पूर्णतः खरे उत्तरते हैं और जब तक 'ध्रुपद' गायन का नामजीवित रहेगा, ये भी भुलाए नहीं जा सकेंगे। तथापि मूल से ब्याज को अधिक मूल्यवान माना जाता है। मानसिंह तोमर की राजसभा में अनेक प्रसिद्ध नायक (संगीत-शास्त्री) थे, किंतु किसी कारण वे भारत के बाहर अपने सुयश का विस्तार न कर सके। मानसिंह तोमर की रंगशाला में शैशव में ही प्रवेश करने-वाले तन्नु जी, आगे चल कर जो तानसेन कहलाए, उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारत सम्राट अकबर की राजसभा में प्रवेश करने के कारण और अपनी कवित्व तथा गायन की अद्भुत प्रतिभा के कारण उनका यश संसार-व्यापी हो गया। इस कारण मैंने अपनी लेखनी को पवित्र करने के लिए इस पुस्तक को प्रस्तुत किया।

तानसेन का यह अध्ययन लगभग 400 पदों पर आधारित है। इनमें तानसेन की आत्मकथा के विषय में भी कुछ पद प्राप्त होते हैं; कुछ में उनकी आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति मिलती है; कुछ में उत्कृष्ट कवि के रूप में उनके दर्शन होते हैं; कुछ में सम्राट, महाराज, राजा, अथवा सामंतों के विषय में लिखा गया है; कुछ में सगुण तथा निगुण भक्ति का विवेचन किया गया है। यदि तानसेन के समस्त पद उपलब्ध हो सकें, तब इन सभी विषयों पर पूर्ण प्रकाश पड़ सकता है—इसकी आशा भी है।

तानसेन ने शिव के अनेक नाम दिए हैं, तथापि उनके अपने नाम 'त्रिलोचन' का अब तक प्राप्त पदों में उल्लेख नहीं मिलता। यह सहेतुक भी हो सकता है अथवा केवल संयोग के रूप में हुआ हो।

इस पुस्तक के परिच्छेदों के शीर्षकों के विषय में कुछ भ्रांति हो सकती है। उसका निराकरण यहाँ कर देना आवश्यक है। परिच्छेद 18 का शीर्षक है 'कवि तानसेन' और परिच्छेद 20 का शीर्षक है 'संगीत-शास्त्री कवि तानसेन'। इन दोनों में पुनरुक्ति का आभास हो सकता है। वास्तव में परिच्छेद 18 तो तानसेन की रचनाओं के साहित्यिक, भाषा-वैज्ञानिक और कथ्यपरक विश्लेषण का प्रवेश-द्वार मात्र है। तानसेन के संगीत-शास्त्री रूप की इस प्रसंग में उभारने की दृष्टि से ही प्रवेश-द्वार को यह शीर्षक दिया गया है। तानसेन के संगीत-शास्त्री रूप का परिचय परिच्छेद 20 में ही प्रस्तुत है।

तानसेन के पदों के चार पाद अर्थात् स्थायी, आरोही, संचारी, आभोग पारिभाषिक अभिधान संगीत-शास्त्रियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को सहज-गम्य नहीं होंगे। इस कारण इन पारिभाषिक पदों के नामों को या तो दिया नहीं गया, यदि दिया है तो पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे चरण के रूप में उल्लेख किया गया है।

कृष्णानंददेव व्यास द्वारा संकलित 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' तथा श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी की 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका' में से तानसेन के जो पद इस पुस्तक में दिए गए हैं उनके लिए कोई पाद-टिप्पणी नहीं दी गई है। रामपुर की जो प्रति उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी में है उसके पदों के विषय में पाद-टिप्पणी में 'अप्रकाशित रागमाला से', जो प्रतिलिपि वाराणसी में है उसके पदों की पाद-टिप्पणी में नसती क्रमांक आदि तथा डॉ० फ्रांस्वांज़ देलवोआ 'नलिनी' का उल्लेख किया गया है।

अब केवल आभार-प्रदर्शन तथा धन्यवाद देने का सुखद कार्य शेष रह जाता है। मैं श्री माधवराव सिधिया, रेल राज्य मंत्री, भारत शासन के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। इनके 'दो शब्द' ने मेरा उत्साह बढ़ाया है। वास्तव में वे उस सिधिया वंश के प्रतिनिधि हैं, जिसने ग्वालियर के तोमरों की परंपराओं को अग्रसर किया।

श्री मार्तण्डसिंह जू देव, सांसद, रीवा तथा उनके राजगृह-कार्य-नियंत्रक श्री रमाशंकर शुक्ल का मैं आभारी हूँ। उनके द्वारा इस पुस्तक में प्रकाशन के लिए न केवल बांधवगढ़ नरेश महाराज रामचंद्र बघेला का भव्य चित्र प्राप्त हुआ है, वरन् बघेला वंश के

इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी-युक्त 'रीवा राज्य दर्पण' पुस्तक भेजने की कृपा भी उन्होंने की है। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के छाया-चित्र प्रखंड द्वारा इस पुस्तक के लिए कुछ छाया-चित्र प्राप्त हुए हैं। कुछ छाया-चित्र मध्यप्रदेश के पुरातत्व विभाग द्वारा गूजरी महल संग्रहालय तथा मोतीमहल के प्राप्त हुए हैं। इन सब का मैं आभारी हूँ।

परम विदुषी डॉ० प्रेमलता शर्मा, वाइस चांसलर, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, ने 'भूमिका' में मेरे और इस पुस्तक के विषय में अधिक ही लिख दिया है; अपितु, उससे इस प्रयास के प्रमुख प्रेरणा-स्रोत महान् मनीषी, कवि और गायक तानसेन के गरिमामय चरित्र के प्रति मेरी भाव-सिक्त निष्ठा की प्रतीति मुझे अवश्य हुई है।

डॉ० फ्रांस्वाज़ देलवोआ 'नलिनी' के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ; उन्होंने कुछ अत्यंत उपयोगी पद मुझे भेजे। अब तक यह फ्रेंच विदुषी 1500 से अधिक पद एकत्र कर चुकी हैं और आशा है कि वे शीघ्र ही 2000 पद पूरे कर लेंगी। ज्ञात यह होता है कि यह देवी भारत की भारती को समृद्ध करने में ही अपना बहुमूल्य समय बिता देंगी। इन्होंने सोरबोने विश्वविद्यालय, फ्रांस, से नन्ददास-कृत भँवरगीत का पाठ-संपादन कर और उसका फ्रेंच भाषा में अनुवाद कर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। अब वे तानसेन पर डी० लिट० करने जा रही हैं, तानसेन के 2000 पदों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद बहुत बड़ा कार्य होगा।

यह आश्चर्य की बात है कि तानसेन के पदों की खोज एक फ्रेंच विदुषी करे। किसी भारतीय, विशेषतः ग्वालियर के शोधार्थी ने यह प्रयास नहीं किया, यह वास्तव में ग्लानि का विषय है।

आचार्य कौलाशचन्द्रदेव बृहस्पति, भारत के संगीत-शास्त्रियों में विलक्षण थे। आचार्यवर ने संगीत के शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान के पक्ष के साथ ऐतिहासिक तथ्यों में भी गहरी पैठ दिखाई है। यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि मैंने इनकी पुस्तकों का भरपूर उपयोग किया है। आचार्यवर की पुस्तकों की सहयोगिनी श्रीमती सुलोचना बृहस्पति का भी मैं आभारी हूँ।

अन्य लेखकों की जिन कृतियों से मैंने लाभ उठाया है उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया है। यदि कुछ विद्वानों से मैं सहमत

नहीं हो सका हूँ, उसका कारण कोई विद्वेष न हो कर केवल सत्य की खोज है, जो प्रत्येक लेखक का अधिकार है।

मेरे अनुज श्री शान्तिचन्द्र ने इस पुस्तक का मुद्रण बहुत प्रयास से शुद्ध रूप में कराया है। मेरे चिरंजीव ऋतुराज और आशुतोष तथा पुत्री सुधा चण्डी ने इस पुस्तक के आवरण को कलात्मक रूप दिया है। इन्हें मैं धन्यवाद तो नहीं, आशीर्वाद ही दे सकता हूँ।

मेरी इस कृति की यदि विद्वज्जन उपयोगी समझेंगे तब मैं अपना श्रम सार्थक मानूँगा।

विद्यामंदिर

मुरार, ग्वालियर

7 जुलाई, 1986

हरिहरनिवास द्विवेदी

तानसेन

विषय-सूची

दो शब्द	श्री माधवराव सिधिया रेल राज्य मंत्री, भारत	पाँच
प्रस्तावना	डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा वाइस चांसलर इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़	सात
निवेदन		दस

—जीवनी—

एक — प्रारंभिक	1
1. नाम	2
2. माता-पिता	3
3. जन्म	4
4. जन्म-स्थान	5
5. शैशव	5
6. प्रारंभिक शिक्षा	6
दो — मान की राजसभा में	8
1. स्तुत्य परिवर्तन	9
2. राजसभा में आने का वर्ष	11
3. बख्शू और तानतरंग का प्रभाव	11
4. बैजू तथा गोपाललाल के बीच प्रतिस्पर्धा	13
5. गोपाललाल द्वारा मानसिंह की स्तुति	15
6. उलझन का एक पद	17
तीन — विक्रमादित्य की राजसभा में	19
1. विक्रमादित्य के टोडर	19
2. तानसेन या तानसिंह	19
3. तानतरंग	20
4. अखाड़ा उखड़ा	21
चार — दो शेख	22
1. ग्वालियरी राजनीति के मोहरे	22

2. शेख गौस तथा शेख गूरान	22
पाँच — सूर वंश	23
1. इस्लामशाह	23
2. दौलतखाँ उजियाला	23
3. मुहम्मद आदिलशाह	24
4. इब्राहीम	25
छह — संक्रांति काल	26
1. हुमायूँ की भारत की ओर यात्रा	26
2. अकबर का जन्म और सिंहासन-प्राप्ति	26
3. पानीपत का युद्ध	27
4. ग्वालियर	27
5. अकबर की वैरमखाँ से मुक्ति तथा माहम अनका का प्रभाव	28
6. स्वाधीनचेता अकबर	28
7. कालंजर	28
सात — राजा राम की राजसभा में	29
1. राजसभा में प्रवेश	29
2. राजसभा में प्रथम गायन	30
3. आभार प्रदर्शन	31
4. मंगलकामना	31
5. राजा राम की संगीतज्ञता	32
6. राजन प्रथम राजा राम — तानन प्रथम तानसेन	34
7. मगन रहो राजा राम	35
8. थरथरात देस-देस	35
9. हिंदूपति रामचन्द्र	36
10. समारोह	36
11. दानी रामचन्द्र	37
12. वसंतोत्सव	38
13. लाज के जहाज, सिरताज, गरीब-निवाज	38
14. पूर्ण-काम का वैराग्य-भाव	39
15. बिदाई : इतिहासों में	40
16. बिदाई : लोक-इतिहास में	49
17. रामचन्द्र की राजसभा में अंतिम गायन	41
18. माधव कवि द्वारा अभ्यर्थना	42

आठ — अकबरी दरबार में	44
1. कवि-गायक अकबर	44
2. अकबर की रचनाएँ	44
3. अकबर की संगीतज्ञता : अन्य ध्रुपदकारों की दृष्टि में	46
4. अकबरी दरबार के संगीतज्ञ	49
5. कुछ किंवदंतियाँ	49
6. दरबार में प्रथम गायन	49
7. अकबर की छत्तीसी	51
8. अकबर की राजसभा के नवरत्न	53
9. अकबर और गोपाचल	53
10. मंगल-कामना	54
11. सम्राट का प्रताप	54
12. विजेता का स्वागत	55
13. शाहजादा का जन्मोत्सव	57
14. एक अति-विशिष्ट अतिथि	57
15. सूर्योपासना	58
16. नबी के नायब और अल्लाहु-अकबर	59
17. नरपति-तानपति	60
18. उपदेश	61
19. अंतःपुर संगीत	62
20. विविध उत्सव	65
दशहरा * ईद * खुमारी	65, 66, 67
21. राजा राम को अंतिम श्रद्धांजलि	68
22. बीरबल	71
महाकवि केशवदास और बीरबल	72
प्रवीणराय और बीरबल	72
दानी बीरबल * प्रवीणराय की मुक्ति	73, 74
बीरबल के साथ देवी-पूजन	74
23. खानखाना और तानसेन	75
रहीम के दुर्दिन * दानी रहीम	75
राजा रामचन्द्र बघेला और रहीम	76
ब्रजभाषा नाम के जनक	76
तानसेन का खानखाना के अंतःपुर में गायन	77
24. माघवसिंह	78

भैरव राग और सप्त स्वर	79
भैरव तथा उसकी पत्नियाँ	79
25. पुण्डरीक विट्ठल	79
26. तानसेन की संतानें	80
सरस्वती * तानतरंग * विलास	80, 83, 86
सूरतसेन.	89
27. जन्म-वर्ष	91
28. कंठ-विकार	94
29. संगीत-सूर्य का अवसान	95
निर्वेद * महायात्रा की ओर	96
प्रभु से प्रेम-वारि की याचना	97
गोलोक-विहारी के आश्रय में	97

—व्यक्तित्व—

नौ — राजाश्रय	99
1. वाजिदअली शाह	99
2. सुनीति बाबू का अभिमत	101
3. तानसेन के स्तुत्य	102
4. दरबार में गायन की रीति	104
5. पदों का अंतःसाक्ष्य	104
दस — तानसेन की छवि	106
1. राष्ट्रीय संग्रहालय	107
2. प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय	107
3. म्युनिसिपल संग्रहालय, इलाहबाद	108
4. अप्रामाणिक छवियाँ	108
5. कलकत्ता संग्रहालय	108
6. प्रामाणिक छवि के आधार पर व्यक्तित्व की खोज	108
ग्यारह — तीर्थ-यात्राएँ	110
1. महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाईं विट्ठलनाथ	110
2. सूरदास	112
3. स्वामी हरिदास जी	113
4. ग्वालियर-यात्रा	116
5. ओढ़छा-यात्रा	117
6. अन्य यात्राएँ	118
बारह — सूफी मत का प्रभाव	119

1. शेख सलीम चिश्ती	119
2. शेख चिश्ती के लिए लिखे गए पद	121
तेरह — तानसेन और तंज-साधना	124
चौदह — गोरखपंथ का प्रभाव	128
1. शेषनाथ	128
2. अलख पुरुष	128
पंद्रह — प्रबोध	130
सोलह — जाति	131
1. बेहट	131
2. पुजारी की दंतकथाएँ	132
3. मिश्र और पांडे	133
सत्रह — धर्म	135
1. विन्सेण्ट स्मिथ	135
2. चट्टोपाध्याय का धर्म-संकट	136
3. दीलत काजी	137
4. तानसेन का धर्म-समन्वय	139
5. तानसेन का मकबरा	140
6. दीलतखाँ का उजियाला	141
7. उपसंहार	141

—कृतित्व—

अठारह — कवि तानसेन	143
उत्तीस — तानसेन की रचनाएँ	144
1. संगीत-सार	145
2. रागमाला	145
बीस — संगीत-शास्त्री कवि तानसेन	148
इक्कीस — भाषा-विवेचन	149
1. माधव कवि	149
2. भावभट्ट	149
3. मध्यप्रदेश की परिकल्पना	150
4. मानकुतूहल	150
5. ग्वालियरी का व्याकरण	151
6. तानसेन की भाषा	152
7. पुरुषोत्तम भाषा	152
8. अब्दुल रहीम खानखाना	152

9.	षट्भाषा	152
10.	भिखारीदास की भाषा का स्वरूप	153
11.	केशव की भाषा	153
12.	बुंदेली	153
13.	शालियरी और ब्रज का विभेद	154
बाईस —	छंद-विधान	155
तेईस —	अलंकार-विधान	157
1.	उपमा	157
2.	उत्प्रेक्षा	158
3.	पुनरुक्ति अलंकार	158
4.	अपह्नुति	159
5.	रूपक	159
6.	सांगरूपक	159
	वर्षा-वर्णन	160
7.	रूप-वर्णन	161
	श्रावण तीज	161
चौबीस —	नायक-नायिका भेद	162
1.	नायक-भेद	162
	साधारण नायक * दक्षिण नायक	162
	शठ नायक * घृष्ट नायक	162
2.	नायिका-भेद	162
	पद्मिनी * चित्रिणी * शंखिनी * हस्तिनी	163
3.	नायिकाओं के उप-भेद	163
	परकीया * अज्ञात-यौवना * प्रौढ़ा	163, 164
4.	दक्षिण नायक	164
5.	खंडिता	165
6.	वियोगिनी	165
7.	पावस वियोगिनी	166
8.	आगम-पतिका	167
9.	दूती	167
10.	प्रिय-दर्शन की लालसा	168
11.	कुब्जा	168
पन्चीस —	रस-सामग्री	170
1.	भक्ति	170
2.	शृंगार	171

3.	वात्सल्य	172
4.	वीर	172
छब्बीस —	भक्त-कवि तानसेन	173
1.	निर्गुण भक्ति	173
2.	सगुण भक्ति	176
	गणेश-वन्दना	176
	सरस्वती * प्रभु की आराधना	178, 180
	विष्णु-नामावली * शिव-शक्ति	180, 181
	मृग-नयनी का शिवार्चन	182
3.	राम-भक्ति	182
4.	कृष्ण-भक्ति	184
	बालकृष्ण * ब्रज-भूमि की लाली	185, 186
	कृष्ण-प्रेम-लीला * गो-रस की खोज	186
	गो-चारण * उपालंभ	187
	मान-मनावन * शरण-लालसा	188
	मिलन की लालसा * दर्शन-लालसा	189
	वेणु-वादन * संयोग	190, 191
	मदन-महोत्सव * ब्रज की होली	195
	शोवर्धन-लीला * संगीतज्ञ कृष्ण * महावट वर्षा	196
	गौओं का कृष्ण-प्रेम * शबरी * उद्धव-संदेश	197
	कृष्ण से विदा याचना	198
5.	सूर्योपासक तानसेन	198
सत्ताईस —	प्रकृति-वर्णन	200
1.	उषा	200
2.	सूर्योदय	202
3.	सूर्यास्त	203
4.	वसंत-ऋतु	204
5.	वर्षा-ऋतु	204
	वर्षा-विहार	205
अठ्ठाईस —	संगीत-शास्त्री तानसेन	206
1.	संगीत-शास्त्र के शब्द	206
	तत्सम * देशज	206
2.	राग, रागिनी और ताल	207
3.	तानसेन का संगीत-विधान	208
	फकीरूला	209

गणेश और सरस्वती की वंदना	210
निपुण गुरु	210
नाद की उत्पत्ति * सप्त-स्वर	211
छह राग * नाद-विद्या	212
ध्रुपद की चार वाणियाँ	212
गुणी गायक * मूर्ख गायक	213
तानसेन की विकट तान * गान-वाद * वाद्य	214
उनतीस — दृश्य संगीत	216
1. संस्कृत रागमालाएँ	217
भैरव राग * दीपक राग * रागिनी टोड़ी	217, 218
2. हिंदी रागमालाएँ	219
3. फ़ारसी रागमालाएँ	221
भैरों राग का बयान	221
दीपक राग का बयान	222
टोड़ी रागिनी का बयान	222
4. मोती-महल के भित्ति-चित्र	222
5. तानसेन की रागमाला	222
भैरव	222
दीपक राग * टोड़ी रागिनी * राग दरबारी	223
तीस — मूर्यांकन	224
1. फ़कीरुल्ला	224
2. अबुलफ़जल	224
3. अकबर	224
4. अजमखाँ	225
5. जगन्नाथ कविराय	225
6. जहाँगीर	225
7. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय	227
इकतीस — नीराजना	228
अनुसूची	
1. व्यक्ति-अभिधान	230
2. स्थान-नाम	236
3. तानसेन के पदों के स्थायी, अर्थात्, प्रथम पंक्ति	238
4. संदर्भ-ग्रंथ	244

चित्र-सूची

1. श्री माधवराव सिधिया, रेल राज्य मंत्री, भारत	छह
2. श्री मार्तण्डसिंह जू देव, सांसद, रीवा	सात
3. महाराज मानसिंह तोमर	मुखचित्र
4. गढ़ गोपाचल	
5. महाराज मानसिंह तोमर की राजसभा	
6. संगीत-सम्राट तानसेन	
7. स्वामी हरिदास-तानसेन-अकबर	
8. जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर	44
9. बांधवगढ़-पति महाराज रामचंद्र बघेला	45
10. अशुद्ध पहचानी गई तानसेन की कुछ छवियाँ	108
11. संगीत-सम्राट तानसेन का तथाकथित मकबरा (ग्वालियर)	109
12. पुरातन वटवृक्ष की छाया में शिव-मढ़िया (बेहट)	132
13. बेहट की शिव-मढ़िया	133
14. राग भैरव (फ़ारसी रागमाला)	222
15. राग भैरव (मोतीमहल-ग्वालियर)	
16. राग दीपक (फ़ारसी रागमाला)	
17. राग दीपक (मोतीमहल-ग्वालियर)	
18. रागिनी टोड़ी (फ़ारसी रागमाला)	
19. रागिनी टोड़ी (मोतीमहल-ग्वालियर)	223

टिप्पणी

—मान की राजसभा के चित्र की प्रामाणिकता—

यह चित्र उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में ग्वालियर पर कप्तान पोफम की विजय के पश्चात् अंकित किया गया है। यह सुनिश्चित है कि किसी प्राचीन पट-चित्र अथवा पित्ति-चित्र के आधार पर यह बनाया गया है। भारतीय परंपरा के अनुसार राजा के साथ राजसिंहासन अवश्यंभावी अंग है। कल्पना के आधार पर कोई चित्तेरा राजा को फर्श पर बैठा दिखा ही नहीं सकता था। पृष्ठ 16 पर दिए गए तथ्यों के अतिरिक्त, राजसभा के इस अंकन में बैठे हुए व्यक्तियों की छवियाँ पहचानी जाती हैं।

तन्नू (त्रिलोचन) का 'तानसेन' विरुद्ध से अभिषेक
कर उनकी संगीत-सम्राट् के ध्रुव पद पर स्थापना
तथा ध्रुपद शैली के माध्यम से ग्वालियर को विश्व-
व्यापी ख्याति-अर्जन के विभूति-प्रखर उत्स

महाराज मानसिंह महान

की

पुण्य स्मृति को समर्पित

[यस्मिन्] गोपाचलेन्द्रे विजयिनि विवधांकीर्तिमुद्गातुकामा ।

प्रोद्यत्संगीतधारा ध्रुपदशतपदाभारती संबभूव ॥

गोपाचल के विजयी स्वामी की विविध-आयामी कीर्ति का
गायन करने की कामना से स्वयं भारती ध्रुपद के शतशः छंदों
की उद्देलित धाराओं के रूप में मूर्तिमंत हो कर अवतरित हुई ।

—मैथिल कवि-पंडित शिवदेव

[मितसेन तोमर के रोहिताश्वगढ़ के शिलालेख (सं० 1688 वि०) से ।]

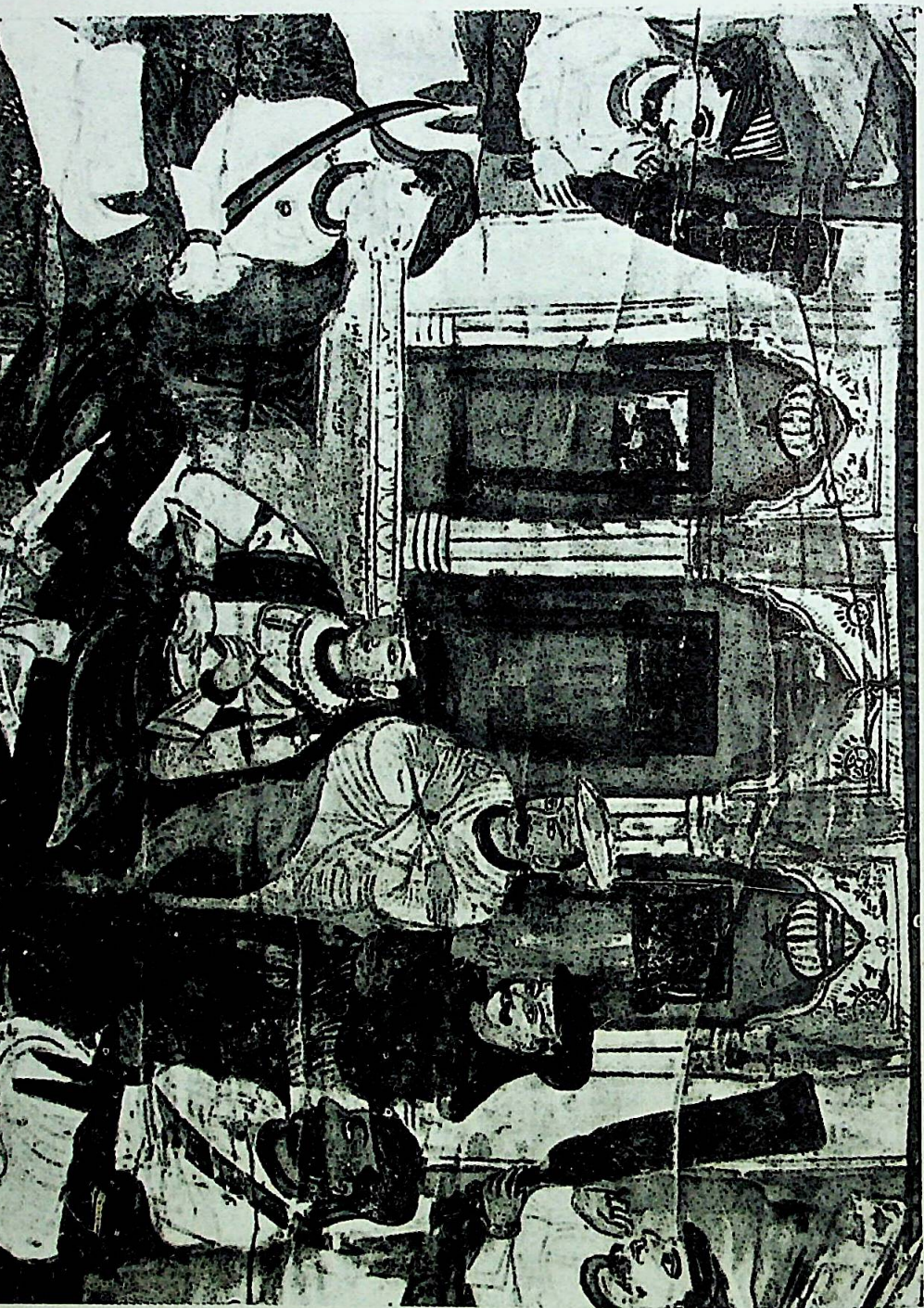


गोपाचलगढ़-पति
 महाराज मानसिंह तोमर
 राज करै जो राजा मान । जैसे मढ़ लोक पै भान ॥
 —खड्गराय



गढ़ गोपाचल रे

जाकी है कमलासन नारि कमला जाकी लाली लीयें प्रथम औतार कीनों ही ।



महाराज
मानसिंह तोमर
की
राजसभा

सामने बैठे :
युवराज विक्रमादित्य
बाई ओर :
भतीजा सलहदी
पीछे बड़े :
प्रधान मंत्री श्रीमशाह
'टोडर'
भतीजा श्रीतसिंह



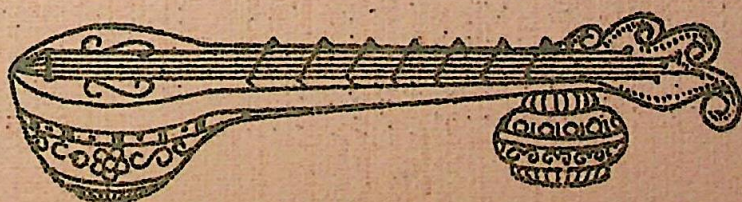
संगीत-सम्राट तानसेन



आम्नाय-मन्त्रालय,
कारतनिधि, कर्तव्य
आवागमो-६

तावर्शेव

जीवनी





प्रारम्भिक

ग्वालियर की भूमि ने भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान किया है। संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी, भाषा और साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य, धार्मिक सहिष्णुता आदि क्षेत्रों में उसने उच्चतम कीर्तिमान स्थापित कर उनकी परम्पराओं को भारतमाता के चरणों में समर्पित किया है। संगीत के क्षेत्र में ग्वालियर का योगदान अप्रतिम रहा है, यह सर्वमान्य है। इसकी गौरव-गाथा को भारत-व्यापी किंवा विश्व-व्यापी बनाने में इसी भूमि में जन्मे, पले, बढ़े और सीखे, प्रमुख मनीषियों में तानसेन हैं।

राजा मानसिंह तोमर की रंगशाला में एक उत्कृष्ट प्रतिभाशाली किशोर बाल-गंधर्व अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रविष्ट हुआ था। नाम था उसका त्रिलोचन-‘तन्नु’। किशोरावस्था में ही उसे महाराज मानसिंह, बैजू, बख्शू, तानतरंग तथा मदनराइ जैसे महान कलाविदों के चरणों में बैठ कर संगीत में निपुणता अर्जित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसने अपना गुरु-ऋण अपनी अप्रतिम प्रतिभा तथा निरन्तर अभ्यास द्वारा पूरी तरह चुकाया। ग्वालियर ध्रुपद-संगीत शैली को तत्कालीन भारत-साम्राज्य की राजधानी आगरा तथा सीकरी में स्थापित किया, जिसके कारण ग्वालियर का नाम और उसके संगीत की मंजुल किरणें समस्त भारत में फैल गईं। महान संगीतज्ञ के अतिरिक्त वह सक्षम भाषाविद और मंत्रद्रष्टा कवि था। ग्वालियर का त्रिलोचन-तन्नु-तानसेन बना; और वह केवल ग्वालियर का ही नहीं, समस्त भारत का बहुमूल्य जाज्वल्यमान रत्न बन गया। उसका तेजोवलय अनेक शताब्दियाँ पार कर आज भी सांस्कृतिक जगत को प्रकाशमान कर रहा है।

तन्नु जी की जीवन-गाथा जितनी कीर्तिशाली है, उसे प्रस्तुत करना उतना ही दुरूह है। अनेक स्थलों पर इतिहास मौन साध लेता है, अनेक प्रसंगों को पूर्वाग्रह-ग्रस्त जनश्रुतियों ने उसे भ्रामक बना दिया है और अनेक संदर्भ अतिशयोक्तियों के कारण संकट उत्पन्न करते हैं। इन परिस्थितियों में समकालीन इतिहास-ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थों से सामग्री ले कर, परवर्ती इतिहासों से सहायता प्राप्त कर, स्वयं तानसेन के पदों के अन्तर्दृश्य के आधार पर तथा, ‘हारे के हरिनाम’ के रूप में, प्रचलित जनश्रुतियों का सहारा ले कर तानसेन के जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है।

1. नाम

सबसे पहले किसी भी व्यक्ति के जन्म-वर्ष का विवेचन करने की प्रथा चली आई है। परन्तु नाम को स्थापित किए बिना उन विषयों का विवेचन निर्गुण, अनाम और अरूप का विवेचन बन जाएगा। इस कारण सब से पहले तानसेन के शैशव के नाम पर विचार करना आवश्यक है। इसके लिए केवल जनश्रुतियों का ही एकमात्र सहारा है। देखना यह होगा कि समकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में वे तथ्य के रूप में संभाव्य हैं या नहीं।

प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार तानसेन का मूल नाम तन्नू, तन्ना, अथवा त्रिलोचन था। तन्नू, तन्ना और त्रिलोचन समान ध्वनि के शब्द हैं। तत्कालीन प्रथा को देखते हुए इनमें से कोई नाम होना संभव है। उस युग में राजाओं, सामन्तों जैसे वर्गों के अतिरिक्त किसी का नाम पूरा नहीं लिया जाता था। बँजू और बख्शू के पूरे नाम अज्ञात ही हैं, लोगों ने इन्हें इसी नाम से सम्बोधित किया और उन्होंने भी उसे अंगीकार कर लिया। उस युग का कवि दामोदर केवल 'दल्ह' रह जाता था। पजू, रामू, बल्दू जैसे नाम भी मिलते हैं। यह बहुत संभव है कि मूल नाम त्रिलोचन हो और उसका संक्षिप्तीकरण तन्नू या तन्ना हो गया हो। शैशव का मूल नाम तानसेन कदापि नहीं हो सकता, 'तान' का सम्बन्ध संगीत की तान से है और 'सेन' सिंह के लिए प्रयोग होता था (लक्ष्मणसेन, सूर्यसेन आदि में 'सेन' सिंह के लिए है)।¹ तानसेन नाम उस समय रखा गया होगा जब वे 'तान' के अभ्यास में कुशलता प्राप्त कर चुके होंगे। संभावना यह अधिक है कि जब तन्नू ने ग्वालियर आ कर, राजा मान के नायकों के चरणों में बैठ कर संगीत का ज्ञान बढ़ाया तब उससे प्रसन्न होकर किसी नायक ने तन्नू को तानसेन के नाम से सम्बोधित किया होगा। फिर वही नाम चल पड़ा।

कुछ फारसी के इतिहास-ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि विक्रमादित्य तोमर ने तानसेन को 'तानसिंह' की उपाधि दी थी, तथापि तानसेन नाम में प्रयुक्त 'सेन' और 'सिंह' में कोई अन्तर नहीं है। तानसिंह की उपाधि मिली भी होगी, तब भी उसने स्वयं अपने-आपको तानसेन कहा जाना ही उचित समझा होगा, क्योंकि सिंह की तान रंजक न होकर भयावह होती है। रामचन्द्र बघेला की राजसभा में तानसेन उस समय पहुँचे थे, जब वे संगीतज्ञ के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुके थे। वहाँ उनका नामकरण करने या नाम के बदलने की कोई संभावना नहीं हो सकती थी। अकबर ने उन्हें 'कण्ठाभरण-वाणी-विलास' की उपाधि दी थी। समकालीन जगन्नाथ कविराय ने उन्हें 'जगत-गुरु' कहा है। ये उपाधियाँ तन्नू, त्रिलोचन या तानसिंह को नहीं, वरन् तानसेन को मिली थीं। यह भी स्मरणीय है कि तानसेन का जो पद 'मान राजा' के उल्लेखयुक्त प्राप्त हुआ है उसमें रचयिता की छाप 'तानसेन' के रूप में ही मिलती है, अतएव 'तन्नू' उसी समय तानसेन बना दिए गए थे।

1. गीठ-बंगाला में सेन वंश का राज्य था। सिध, सिह, सिन्हा बिहार में हुए हैं।

सुनिश्चित परिणाम यह निकाला जा सकता है कि मूल का नाम त्रिलोचन था, संक्षिप्त रूप में वह तन्तू या तन्ना कहा जाने लगा।¹ मानसिंह की संगीत-सभा में यह नाम ध्वनि-साम्य और गुण के आधार पर 'तानसेन' कर दिया गया। यही तानसेन आगे चल कर महान् गायक के रूप में प्रख्यात हुआ।

2. माता-पिता

तानसेन के माता-पिता का नाम किसी इतिहास-ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। इस सम्बन्ध में तानसेन का एक पद 'रागमाला' में प्राप्त हुआ है।² वह तानसेन के माता और पिता तथा जन्म-स्थान के विषय में कुछ धुंधला-सा प्रकाश डालता है। इस पद का सम्बद्ध अंग नीचे लिखे अनुसार है:—

(राग चौरास्तक, जलदत्तिताला)

गढ़ गोपाचल रे

जाकी है कमलासन नारि कमला जाकी लाली
लीयें प्रथम औतार कीनों हो।

तुम त्रईफन धर चारि वरन

इन के अतन जतन गुन तीन (हो ?)।

अस्तकर जल पुसकर जल ताके चारी कंगूरा
तीषे नीके लागत नों (हो ?)।

दलमल करत (करन ?) गुर मकरंद पद

राग रागिनी रति (राति) सुवासन।

'तानसेन' कों दीनों (हो ?) ॥165॥

इस पद के पाठ-संशोधन का हमारे पास कोई साधन नहीं है। मूल को जैसा षड़ा गया है, उसी से अभी काम चलाना होगा।

पहले गढ़ गोपाचल की 'कमलासन नारि कमला' वाक्यांश पर विचार करना होगा। दूसरा कमला शब्द किसी महिला का नाम है, वह कमला (लक्ष्मी) के समान सुन्दर या सौभाग्यशालिनी थी।

फिर आता है 'औतार'। उस कमला की लाली से अवतार लिया (स्वयं तानसेन ने)। यह 'लाली' शब्द पन्द्रहवीं शताब्दी का बहु-अर्थी शब्द है—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल

1. तानसेन के पिता मकरन्द ने शिव के प्रसाद से प्राप्त पुत्र का नाम 'त्रिलोचन' ही रखा था। शिव का 'त्रिलोचन' नाम सदा प्रसिद्ध रहा है।

2. यह पद रागमाला की हस्तलिखित प्रति में है जो संगीतशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय की नस्ती (1) पृष्ठ 10, पत्रक (फोलियो) 18 में है।

ऊपर उद्धृत पद में लाल (शिशु) से तानसेन की लाली (अरुणोदय) का आभास मिलता है ।

इस पद के आगे के दो चरणों का अर्थ कुछ स्पष्ट नहीं है । 'तुम' से आशय गोपाचल से ज्ञात होता है, वह तीनों फल (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) प्रदान करने वाला है, वह चारों वर्णों का पालक है, उसमें तीनों गुण (सत, रज तथा तम) हैं । 'अस्तकर' किसी तीर्थ का नाम हो सकता है, इसके तथा पुष्कर तीर्थ के जल (के समान जिसके सरोवर पवित्र हैं) और जिस (गढ़) के चारों कंगूरे बहुत सुन्दर हैं ।

जब तक इस पद का पाठान्तर उपलब्ध न हो तब तक इसका आशय यह समझ कर चला जा सकता है कि तानसेन की माता का नाम कमला था, वे ग्वालियर गढ़ के नीचे बसे हुए ग्वालियर नगर की थीं और तानसेन का जन्म भी गोपाचल की छाया में ही हुआ था—अर्थात् ननिहाल में । बुन्देलखण्ड में पहले शिशु का जापा ननिहाल में कराने की प्रथा बहुत पुरानी है । ऐसा एक उदाहरण अन्य भी मिलता है । कविवर विहारी के पिता महाकवि केशवदास ओड़छा के निवासी थे, उनका विवाह ग्वालियर की किसी कन्या के साथ हुआ था । विहारी का जन्म भी ननिहाल में हुआ था—

जनम ग्वालियर जानिए, खण्ड बुन्देले बाल ।

तरुनाई आई युवा मथुरा बसि ससुराल ॥

तानसेन की ननिहाल और उसके जन्म की ओर तो उनका उपर्युक्त पद इंगित करता है, बाल्यकाल या तरुणाई के लिए अन्यत्र खोज करना होगी ।

इस पद में मकरन्द को तानसेन का 'गुरु' कहा गया है और यह भी कहा गया है कि उनके द्वारा ही तानसेन को पद-रचना और राग-रागिनी 'रात सुवासिन तानसेन कों दीनों हो' । इसका यह आशय हो सकता है कि मकरन्द ने तानसेन को इस योग्य बनाया कि वे स्वरचित पदों के आधार पर संगीत की महफिल में सम्मिलित हो सकें, जो रात को ही होती थीं और आजकल भी रात में ही होती हैं ।

यह भी असंभव नहीं है कि मकरन्द पिता भी हो और प्रारम्भिक प्रशिक्षक, अर्थात् गुरु भी । जब तक कोई अन्य ठोस प्रमाण उपलब्ध न हो, यह मान कर चलने में कोई हानि नहीं है कि तानसेन के पिता का नाम मकरन्द था, वे स्वयं संगीतज्ञ थे और उन्होंने तन्म को पद-रचना तथा संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा भी दी थी ।

3. जन्म

तानसेन का जन्म कैसे हुआ, इसके विषय में दो जनश्रुतियाँ प्रचलित रही हैं । एक के अनुसार तानसेन के पिता मकरन्द के कोई सन्तान नहीं थी और वे इस

कारण बहुत दुखी रहते थे। किसी जानकार ने मकरन्द को बतलाया कि वेहट ग्राम में एक शिव-मन्दिर है, उसमें नित्य जा कर बेलपत्र और बकरी का दूध चढ़ाया करो, कुछ समय में भोलानाथ प्रसन्न हो जाएंगे और तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इस निदेश के अनुसार मकरन्द ने शिवार्चन प्रारम्भ किया और भगवान शंकर ने उन्हें एक पुत्र-रत्न दिया। परन्तु वह गूँगा था। मकरन्द ने अपने पुत्र सहित पुनः वेहट में शिव की आराधना की और जब तन्नु केवल पाँच वर्ष का था, तब उसके मुख से यह पद फूट निकला—

प्यारे तुही ब्रह्म, तुही विष्णु, तू ही महेश।

एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार पुत्रहीन मकरन्द ने मोहम्मद गौस से मित्रता माँगी, गौस का आशीर्वाद सफल हुआ और तन्नु अवतरित हो गए। मकरन्द अपने परिवार सहित तन्नु को ले कर गौस के पास पहुँचे। गौस ने बालक को गोद में ले कर अपने मुँह का जूठा पान तन्नु के मुँह में रख दिया और आशीर्वाद दिया कि लड़का बहुत होनहार होगा तथा इसकी ख्याति सूर्य के समान फैलेगी। किन्तु मकरन्द इस कारण दुखी हुए कि मुसलमान सन्त ने अपना झूठा पान तन्नु के मुँह में डाल कर उसे भ्रष्ट कर दिया। अतएव वे बालक को शेख के पास छोड़ कर चले आए। आगे बालक शेख के संरक्षण में पला, आदि-आदि।

इन दोनों ही जनश्रुतियों पर विश्वास करना असम्भव है। पहली किंवदन्ती इस कारण हमारे गले नहीं उतरती क्योंकि हमें वह आस्था प्राप्त नहीं है जो उसे स्वीकार कर ले। दूसरी तो ज्ञात इतिहास के नितान्त विरुद्ध है। इस समय मुहम्मद गौस का ग्वालियर में निवास नहीं हुआ था, वे सुदूर चुनार में किशोरावस्था में थे या अपनी अम्मीजान का दूध पी रहे थे।¹

4. जन्म-स्थान

कमला और मकरन्द से उत्पन्न तानसेन ने गोपाचल की छाया में अवतार लिया था। इसके साथ ही उस जनश्रुति को ध्यान में रखना आवश्यक है, जिसमें तानसेन का जन्म-स्थान वेहट ग्राम बतलाया गया है। इन दोनों विचारों का समन्वय संभव है। तानसेन ग्वालियर गढ़ के पास ग्वालियर नगर में जन्म भी ले सकते थे और शैशव वेहट में बिता सकते थे। यह बात उसके पिता के निवास-स्थान पर निर्भर है जो वेहट ही था।

5. शैशव

तानसेन का शैशव किस रूप में बीता इसके विषय में जनश्रुतियाँ ही एक-

-
1. शेख मोहम्मद गौस से सम्बन्धित जनश्रुतियों को नितान्त शंका की दृष्टि से देखना, अथवा उन्हें पूर्णतः अस्वीकार कर देना ही उचित होगा। वे किसी छल का परिणाम हैं। उनकी ऐतिहासिकता का आगे विवेचन किया गया है और उनके प्रचलित किए जाने का कारण भी बतलाया गया है।

मात्र फिसलनी आधार हैं। एक किंवदन्ती है कि वे प्रारम्भिक पाँच वर्ष तक बोल नहीं सकते थे, गूँगे थे। दूसरी अनुश्रुति है कि शैशव में उनका काम पशु चराना था और जंगल में वे अपने पशुओं की हिंसू जीवों से रक्षा करने के लिए सिंह की ध्वनि का अनुसरण करते थे। इन किंवदन्तियों को मिला कर कहानी यह बनती है कि तानसेन पाँच वर्ष की वय तक गूँगे रहे और फिर जब किसी दैवी कृपा से स्वर फूटा तो वे पशुओं को चराने वन में भेजे जाने लगे, जहाँ वे सिंहनाद कर उन पशुओं की रक्षा करते थे। जब तक तानसेन के अभी तक अज्ञात पदों में अथवा अन्य कहीं इसके विपरीत तथ्य सामने नहीं आते, इन रोचक जनश्रुतियों के आधार पर खड़ा किया ताना-बाना स्नेहपूर्वक देखने में कोई बुराई नहीं है। वैसे इसके बिना भी काम चल सकता है। इन जनश्रुतियों में एक बात सत्य हो सकती है कि तानसेन की ध्वनि इसी प्रकार परिपक्व हुई होगी।

तानसेन के शैशव के विषय में एक और जनश्रुति है जो तानसेन के स्वर की परिपक्वता की द्योतक है। "तानसेन जानवरों की बोलियों की नकल करने में बड़े सिद्धहस्त थे। पशु और पक्षी, दोनों ही का अनुकरण वह ऐसी कुशलता से करते कि असल और कृत्रिम में अन्तर करना बड़ा कठिन होता था। संध्या-समय शेर की बोली बोल कर वह जंगल से लौटती गायों को इस प्रकार डरा देते थे मानो सचमुच का शेर उनको खाने के लिए भूखा-पेट दहाड़ मार रहा हो। मार्गों पर बैठे हुए कुत्तों को लड़ाना; चिड़ियों, तोतों और अन्य पक्षियों की बोलियों की नकल करना; उनके लिए साधारण-सी बात थी। तानसेन के पिता ने अपने पुत्र के इन्हीं विलक्षण लक्षणों से प्रभावित हो कर गाँव के बाग की रक्षा के लिए उनकी नियुक्ति करवा दी, जहाँ वह भाँति-भाँति की बोलियाँ बोल कर नन्हें-नन्हें पौदों की पशुओं और पक्षियों, दोनों से ही रक्षा करते थे।"

6. प्रारम्भिक शिक्षा

मकरन्द ने ही तानसेन को पद-रचना तथा गायन की शिक्षा दी थी, यह ऊपर उद्धृत पद से प्रकट होता है। इसके साथ कुछ जनश्रुतियों को जोड़ देने से चित्र कुछ आकर्षक बन जाता है। कहा जाता है कि त्रिलोचन या तानसेन को सिंह की ध्वनि की अनुकृति करते हुए सुन कर मकरन्द को यह भरोसा हो गया कि तन्मू तत्समय प्रतिष्ठित ध्रुपद शैली का सफल गायक हो सकता है, अतः उसे पद-रचना और गायन की शिक्षा देना प्रारम्भ किया गया। एक अन्य अनुश्रुति यह कहती है कि तन्मू का यह सिंहनाद स्वामी हरिदास ने सुना, और वे उसे अपने साथ ले गए, तथा संगीत की शिक्षा दी।

1. इस पुस्तक में समाविष्ट समस्त जनश्रुतियों का आधार ईश्वरीप्रसाद भाथुर की सन् 1942 में प्रकाशित 'तानसेन' नामक पुस्तक है। उन्हें संक्षिप्त कर दिया गया है। उसके लेखक खालियर निवासी थे और संगीत के प्रेमी तथा ज्ञाता थे।

तानसेन के जितने पद अब तक उपलब्ध हुए हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भाषा तथा साहित्य का उनका ज्ञान अत्यन्त सुपुष्ट था। पुराणों और महाकाव्यों की कथाओं से उनका परिचय था, नायिका-भेद का उनके द्वारा अध्ययन किया गया था। निश्चय ही इस ज्ञान का सूत्रपात मकरंद द्वारा तानसेन की किशोरावस्था में ही कर दिया गया था। इस ज्ञान को विकसित होने का अवसर उन्हें आगे प्राप्त होता रहा। स्वामी हरिदास का नाम इस प्रसंग में जनश्रुति फैलाने वालों ने व्यर्थ घसीटा है। स्वामी हरिदास का जीवन पूर्णतः जात है। उन्होंने ग्वालियर से ध्रुपद गायन में पूर्णता उपलब्ध की थी और वे बँजु के शिष्य, अर्थात् तानसेन के गुरु-भाई थे।¹

इस प्रसंग में उन अनुश्रुति का उल्लेख कर देना उपयोगी है, जिसके अनुसार वेहट के शिव-मन्दिर को तानसेन का साधना-स्थल कहा गया है। वहाँ वे रागालाप भी करते थे और उसके कारण मन्दिर टेढ़ा हो गया। मन्दिर का टेढ़ापन ही इस भोले विश्वास की निर्बलता है।

यह मन्दिर (मढ़िया) चूने का बना हुआ है। उस समय चूना बहुत पक्का बनाया जाता था। उसकी घिसाई बहुत बारीक होती थी तथा उसमें कुछ ऐसे पदार्थ घिसाई के समय ही मिलाए जाते थे जो चूने को जमने पर अत्यन्त सुहृद, बज्र-चूर्ण बना देते थे। इस प्रकार का चूना बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण तक बनाया जाता था। नींव से शिखर तक यह मन्दिर (मढ़िया) ऐसे ही सुदृढ़ चूने से बनाया गया है। नींव में कहीं पोलापन रह गया और कभी किसी भारी वर्षा के कारण, पीसा की मीनार के समान, मन्दिर एक ओर झुक गया। झुक कर अब उसकी नींव ने पक्का आधार प्राप्त कर लिया है और वह इसी रूप में अभी भी कुछ शताब्दियों तक खड़ा रहेगा।

फिर भी यह मान लेने में कोई हानि नहीं कि तन्मू जी के आराध्यदेव प्रारम्भ में यही शिव रहे थे और उसने उस मढ़िया में रियाज भी किया था। निरन्तर अभ्यास के बिना न तो ध्रुपद शैली के गायन के लिए स्वर का परिमार्जन होता है और न राग हृदयस्थ हो सकता है।

मान की राजसभा में

तानसेन के मानसिंह तोमर (1486-1516 ई०) को सम्बोधित कुछ पद प्राप्त हुए हैं। उनमें से एक नीचे लिखे अनुसार है:--

(राग बिहाग, चौताल)

छत्रपति राजा मान, चिरंजीव रहो जौलों ध्रुव-मेरु-तारौ ।

चहूँ देस ते गुनीजन आवत तुम पै धावत

पावत मनइच्छा सबही कौ जग उजियारौ ॥

तुमसे जो नहीं तौ, कासैं जाय कहूँ और,

वही आजि कीरत करै मोपै रच्छा करन हारौ ॥

देत करोरन गुनी जनन कौ अजाचक कीने, 'तानसेन' प्रतिपारौ ॥

इस पद के पाठ में विचित्र प्रकार से संशोधन किए गए हैं। नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी रचनाएँ' नामक संग्रह में 'मान राजा' है। सरयूप्रसाद ने अपने शोध-निबन्ध 'अकबरी दरबार में हिन्दी कवि' में इस पद में 'मान राजा' माना है। प्रभुदयाल मिश्र ने अपनी पुस्तक 'संगीत सम्राट तानसेन-जीवनी और रचनाएँ', में 'मान राजा' लिखा है। आश्चर्य की बात यह है कि स्वयं नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'कवि तानसेन और उसका काव्य' में 'राजा-मान' के स्थान पर 'राजा राम' कर दिया। मूल 'राजा मान' ही है।¹ समस्त पद के आशय पर ध्यान देने से भी यह स्पष्ट है कि यह पद मानसिंह से ही सम्बन्धित है।

तानसेन का संगीत-गुरु कोई रहा हो, उनके प्रारंभिक पदों में बख्शू के पदों का प्रभाव बहुत अधिक है। इस प्रसंग में बख्शू तथा प्रमोदतरंग द्वारा विरचित दो पदों पर विचार करना उपयोगी होगा। बख्शू ने लिखा है —

(राग देसकार, कमठताल)

आवत ते विद्याधर सकल विधान के तुमहूँ पै सीखन परपाटी,

तुमतैं न सुर ग्यानिन बुध जान, तुम गुन की कस कसौटी ठाटी ।

जे कहे लच्छन संगीत-अंग गायन बाद निरत और मुद्रा करनाटी ।

सकल कला सम्पूरन जान राजा मानलाल

जिन्हें दई विद्या-बुधि-धन दलिहर-गत काटी ॥112॥²

1. इस पद के पाठ के लिए कृष्णानन्ददेव व्यास के 'संगीत रागकल्पद्रुम', भाग 2 का पृष्ठ 321 देखें।

2. इस पुस्तक में बख्शू के पदों की संख्याएँ सर्वत्र प्रेमलता शर्मा द्वारा सम्पादित 'सहसरस' की हैं।

“सुविज्ञ व्यक्ति जो समस्त कलाओं में कुशल हैं, वे भी आपके पास आपकी शैली (परपाटी) सीखने के लिए आते हैं, उनका स्वर-ज्ञान आपसे अधिक नहीं है। आप ऐसी कठोर कसौटी के समान हैं, जिस पर गुणियों के गुण की परख होती है। संगीत के सभी तीनों (लच्छन) अंग—गायन-वादन-नृत्य और उसकी कर्णाटी मुद्राओं की सभी कलाओं में आप परिपूर्ण हैं। राजा मान ! आप संगीत कला के ज्ञान-धन ने ऐसे धनी हैं कि जिसे देते हैं उसका (कला का) दारिद्र्य मिट जाता है।”

प्रमोदतरंग ने लिखा है¹ —

(राग गुनकली, समताल)

राजा मान की विद्या की चटसार, सीखलै गुरन में पंगत ।

एक-ते-एक गुनी परचंडराइ जाकैं सब जिनकी संगत ॥

जिनके गान करत ध्रुव-ध्रुपद रंगत ।

‘प्रमोदतरंग’ कहै मेरो कह्यो मान, बुधही मति इंगत॥317॥

यह पद प्रमोदतरंग द्वारा विरचित है और प्रचंडराइ नामक पात्र² को संबोधित है। इसका आशय है—“राजा मान की संगीत विद्या की चटसाल, जिसमें उच्चकोटि के गुणी हैं, वे एक-से-एक श्रेष्ठ हैं, जिनके साथ रहने से (ज्ञान-वर्धन होता है) तथा जिनके ध्रुवा-ध्रुपद के गायन से रस-वर्षा (रंगत) होती है। प्रमोदतरंग कहती है कि हे प्रचंडराइ ! मेरा कहना मान कर इस चटसाल से कुछ सीख ले, इसी में बुद्धिमानी है।”

इन दोनों पदों की, तानसेन के ऊपर उद्धृत पद की शैली तथा विषयवस्तु से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तानसेन का यह पद राजा मान को ही संबोधित है। मानसिंह की ‘विद्या की चटसार’ का वर्णन जैसा बक्शू तथा प्रमोदतरंग ने किया है, लगभग वही तानसेन द्वारा किया गया है। तानसेन के किसी अन्य आश्रयदाता से इन गुणों का संबंध नहीं हो सकता।

1. स्तुत्य³ परिवर्तन

तानसेन का इस प्रसंग में एक अन्य पद भी विचार योग्य है—

(सगिनी पूर्वी, चौताल)

साह अकबर कों रिभायलै री, मान कियेतें कहा पावंगी ।

1. यह पद बक्शू के ‘सहस्ररस’ में सम्मिलित कर लिया गया है, वास्तव में यह प्रमोदतरंग द्वारा विरचित है।
2. ‘पात्र’ पारिभाषिक शब्द है, इसका उपयोग आगे ‘पातर’ के रूप में होने लगा और पात्र के गुणों का भी अवमूल्यन कर दिया गया।
3. ‘स्तुत्य’ पारिभाषिक शब्द है। जिस आश्रयदाता को पद संबोधित या समर्पित होता है उसे ‘स्तुत्य’ कहा जाता है।

पिय की चौप में तूं उठि चलि है तौ दिन (मनि ?) सी भावेंगी ॥
होत मेरे कहैं कहा देखै री ना तरसी रह जावेंगी ।

‘तानसेन’ पी कौ मन मोहै,

तासैं तूं हठ निबार, नहीं फेर पछतावैगी ॥

क्या वास्तव में यह पद मूलतः अकबर को संबोधित है ? इस पद की शैली, विषयवस्तु तथा भाषा पूर्णतः वङ्गशू के पदों के समान है । तानसेन के परवर्ती पद इससे नितांत भिन्न हैं । ज्ञात यह होता है कि स्वयं तानसेन ने अकबरी दरबार में पहुंचने के उपरांत, महाराज मानसिंह को संबोधित पद में ‘राजा मान’ को बदल कर ‘साह अकबर’ कर दिया और अकबर के किसी समारोह में गा कर सुना दिया । काव्य के क्षेत्र में इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । दामोदर (दल्ह) ने अपने ‘विल्हण-चरित’ में कल्याणमल्ल तोमर के नाम का उल्लेख किया था और उसके राज्यारोहण के समारोह के अवसर पर सुनाया था¹—

गढ़ गोपाचल अगम अथाह, तेज तरनि तुंवर नरनाह ।

सेस पयाल अमरपुर इंदु, महिमण्डल कल्याण नरिंदु ॥

जब दामोदर गुजरात हो कर द्वारका की यात्रा पर गया, तब मार्ग में उसने किसी ‘बीरसिंह नृपति’ को अपना काव्य सुनाया और उस राजा का नाम अपने काव्य में जोड़ दिया—

गुज्जर देस धरम कौ मूल, सोहइ इन्द्रपुरी समतूल ।

वारह जोयण असह सुहाई, बीरसिंह तहँ नरपत राई ॥

यही दशा छिताईचरित की हुई थी । वह लिखा गया था कल्याणमल्ल के समय में, परंतु नारायणदास ने उसे कभी सुनाया सारंगपुर में सलहदी को । उस समय कवि ने कल्याणमल्ल का प्रसंग हटा कर सलहदी और उसकी पटरानी कमलादेवी का नाम जोड़ दिया । जायसी भी अपने पदमावत में समय-समय पर तत्कालीन ‘शाहे-वक्तों’ के नाम जोड़ते-घटाते रहे ।²

यही दशा तानसेन ने अपने इस पद की की है । ग्वालियर में जहाँ ‘राजा मान’ था, आगरा में वहाँ ‘साह अकबर’ हो गया ।

तानसेन के उपलब्ध पदों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके कौन-से पद उनके प्रारंभिक जीवन-काल में लिखे गए थे, कौन-से पद रामचन्द्र बघेला के समय में लिखे गए और कौन-से अकबर के साथ रहने के

1. इस विषय पर विस्तृत विवेचन के लिए ‘ग्वालियर के तोमर’, पृष्ठ 121-123 देखें ।
2. बासुदेवशरण अग्रवाल, पदमावत, संजीवनी भाष्य, प्राक्कथन, पृष्ठ 13 ।

समय में लिखे थे। इन पदों में तानसेन के कवित्व का क्रमिक विकास हुआ स्पष्ट दिखाई देता है।

2. राजसभा में आने का वर्ष

विचारणीय प्रश्न यह है कि तानसेन मानसिंह (1486-1516 ई०) की राजसभा में कब आए होंगे ? यह अब सुनिश्चित है कि वे उस सभा में मानसिंह के जीवन के अन्त तक रहे और फिर आगे मानसिंह के युवराज और उत्तराधिकारी विक्रमादित्य (1516-1526) की राजसभा में सन् 1526 ई० तक रहे। परन्तु उन्होंने मान के समक्ष सभा-संगीत कब प्रारम्भ किया होगा ? देखना यह होगा कि तानसेन किस वय में पद-रचना करने तथा मान के समक्ष गायन करने में समर्थ हुए होंगे। यह संभव है कि सन् 1523 में तानसेन 21 से 23 वर्ष के थे और उसके अनेक वर्ष पहले मान की राजसभा में पहुँचे थे।

जिस बाल-गंधर्व ने 5 वर्ष के शैशव काल से गायन और वादन का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया हो, वह 10-11 वर्ष की वय में किसी संगीताचार्य के चरणों में बैठ कर अपनी निपुणता को आगे बढ़ाने के योग्य हो सकता है। ऐसे प्रतिभाशालियों की संख्या भारत में बहुत बड़ी रही है। जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में शैशव काल से ही महानता के बीज प्राप्त होते रहे हैं, तानसेन के संदर्भ में भी संगीत के क्षेत्र में यह संभाव्य है। यह निर्विवाद है कि गायन के क्षेत्र में तानसेन बाल-गंधर्व, प्रद्युत्पन्नमति और चमत्कारी प्रतिभा-सम्पन्न थे।

3. बख्श और तानतरंग का प्रभाव

तानसेन के प्रारम्भिक पदों के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनके प्रारम्भिक पदों पर सर्वाधिक प्रभाव बख्श के पदों का है।

राजा मान की रंगशाला की पात्र-भणियों में तानसेन सर्वाधिक प्रभावित 'तानतरंग' से थे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं हो सकता जिससे कि तानसेन अपने प्रथम पुत्र का नाम तानतरंग रखते। इस प्रसंग में बख्श का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है जिसमें बख्श ने तानतरंग की बहुत अधिक प्रशंसा की है:—

(राग कान्हड़ा, बठताल)

ऐसैं सबन रिभूवत रवनत प्यारी राजा मान जैसे राग-रागिनी

सप्त सुरन सोधत सुर ज्ञान।

पेखि संपूरन नैन नाभि-सुर-तान ॥

तानतरंग तार तान नीकें जानत सुजान।

इहँ बिध तेरी मूरत परमान ॥863॥

तानतरंग की प्रशंसा में प्रबोधतरंग द्वारा विरचित एक पद विशेष दृष्टव्य

(राग देसकार, अठताल)

ए तरुनता, ए कुच उतंग, जांबर नारंग,

चच्छ चकित सदिस कुरंग ।

औखधीस सम बदन मध दसन भिलमिलात, बिराजत अधर सुरंग ॥

हरि कटि-स्थल, नितम्ब स्थूल, कंठ मधुरंग अत तानतरंग ।

राजा मान गुण-निधान राज करहु प्रबोधतरंग ॥113॥

यह पद बद्धू के पद-संग्रह 'सहसरस' में सम्मिलित कर लिया गया है, परन्तु उसे पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी रचयिता प्रबोधतरंग है ।

इस पद का आशय है—“तानतरंग की तरुणाई, उसके ऊँचे कुच जंभीरी नीबू या नारंगी जैसे हैं, उसके नेत्र चकित हरिण जैसे हैं तथा औषधीश चन्द्रमा के समान उसका मुख है, जिसमें दन्तपंकित झिलमिला रही है; होठों का भी वैसा ही आकर्षक रंग है; उसकी कटि सिंह के समान पतली और नितम्ब भारी हैं, उसका कंठ बहुत मधुर है; उस तानतरंग के साथ गुण-निधान राजा मान सदा राज करते रहो, यह 'प्रमोदतरंग' की आकांक्षा है ।”

इसी प्रकार का सौन्दर्य-वर्णन तानसेन के अनेक पदों में प्राप्त होता है—

(राग मालव, चौताल)

हार-हमेल सौं नीकी लागत, और गोरे हाथन चूरी हरी ।

कंठ कपोति, बदन जोति, कानन बारी औ बेसर,

केसर की खौर तापर लटपटात लटकत लट सुथरी ॥

भुज मृनाल श्रीफल से कुच, कटि केहरी, जंघ कदली ।

चंद्रबदनी सादक-नैनी, बोलत अमृत बैन धजरी ॥

'तानसेन' प्रभु रिझाय लयो

सोलहौ सिंगार बत्तीस आभरन सज-री ।¹

अथवा

(राग विहाग, रूपक)

मोह लेत पिय कौ मन तेरे नैना प्यारे ।

खंजरीट-मृग-मीन हीन तैं बिन काजर कजरारे ॥

भौह धनुक, तिरछी चितवन, नासिका सुक वारे,

चंद्र-वदनी, कटि-केहरि रंभा-जंघ संवारे ।

'तानसेन' प्रभु प्यारे कौ रस बस कर लीनौ जोबन-भार संवारे ॥

1. इस पद में बुन्देली शब्द और बुन्देलखण्ड के आभूषणों के नाम ध्यान आकर्षित करते हैं ।

इन पदों में उल्लिखित 'तानसेन प्रभु' कौन है और किस नायिका का वर्णन इनमें किया गया है, इसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। बख्शू तथा प्रबोधतरंग के पदों से इन पदों की तुलना करने पर यह प्रकट होता है कि ये 'प्रभु' राजा मानसिंह ही हैं और पात्र है 'तानतरंग'।

इन पदों को पढ़ने से यह भी ज्ञात हो जाता है कि तानतरंग का महत्व राजा मान की रंगशाला में बहुत अधिक था। कोई आश्चर्य नहीं कि युवा तानसेन तानतरंग से प्रभावित हुआ हो और उसने उसी समय ग्वालियर में जन्मे अपने प्रथम पुत्र का नाम तानतरंग रखा हो।

इन प्रमाणों के होते हुए भी इस प्रश्न का समाधान इन तथ्यों से नहीं होता कि मान की संगीत-शाला के किस नायक ने तानसेन को राजा मान तक पहुँचने में सहायता की होगी। मान की रंगशाला में तानसेन के गुरु की खोज व्यर्थ है, क्योंकि वहाँ परमगुरु स्वयं मानसिंह ही थे। जो कनिष्ठ कलाकार थे उन्हें बैजू, गोपाललाल, बख्शू, महमूद लोहंग, चर्चू, सब के या एक के चरणों में निष्ठापूर्वक सीखने का अवसर मिलता होगा। परन्तु इस तथ्य को देखते हुए कि बख्शू मानसिंह का सर्वाधिक मुँह-लगा बाल-सखा था, यह कहा जा सकता है कि तानसेन को राजा की दृष्टि में लाने का कार्य वह अधिक सरलता से कर सकता था; तथापि 'बावरे' बैजू की धाक अन्य नायकों तथा पात्र-मणियों पर सर्वाधिक थी। तानसेन और बख्शू के सम्बन्धों पर आगे विचार किया गया है।

4. बैजू तथा गोपाललाल के बीच प्रतिस्पर्धा

तानसेन के जितने पद अब तक उपलब्ध हैं उनमें बैजू, गोपाललाल और बख्शू को छोड़ कर किसी अन्य गायक का नाम नहीं मिलता; न पूर्ववर्ती और न समकालीन। नायक बख्शू से सम्बंधित पद आगे दिया गया है। बैजू और गोपाललाल के विषय में तानसेन के दो पद प्राप्त हुए हैं। ये पद प्रत्यक्षतः बैजू और गोपाललाल के बीच संगीत-स्पर्धा से संबद्ध प्रतीत होते हैं, तथापि उनसे अनेक बातें ज्ञात होती हैं—

(रागिनी मुह्तानी धनाश्री, चौताल)

नाद-समुद्र को पार न पायौ, सुनियत गुनी कहायौ,
प्रबंध-छंद, धारु-ध्रुपद, मार्गी-देसी द्वै बिधि गायौ।
ब्रह्मा बेद उचरायौ, सारंग बौरायौ, भरत मत
कल्लिनाथ-हनुमत मत, सप्ताध्याय गायौ।
अनेक सृष्टि रचि-पचि गये ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र,
महामुनि प्रसन्न भये, सारंग बौरायौ ॥

सप्त प्रगट सप्त गुप्त नायक गोपाल ध्यायौ,

‘तानसेन’ ताकों प्रभु बैजू पाधान पिघलायौ ॥

इस पद का आशय यह है : नादरूपी समुद्र को पार करना बहुत कठिन है, उसको बहुत थोड़े लोग पार कर सकते हैं। जो इस योग्य हो जाते हैं और प्रबन्ध, छंद, ध्रुवा-ध्रुपद के पदों की रचना कर सकते हैं तथा देशी एवं मार्गी, दोनों प्रकार के राग गा सकते हैं वे ‘नायक’ हो जाते हैं।¹ ब्रह्मा ने नाद का विवेचन किया है, भरत और कल्लिनाथ ने भी उसका विस्तृत विवेचन किया है, हनुमत ने भी अपना मत (हनुमत्संहिता में) प्रतिष्ठित किया है, तथा शाङ्गदेव ने भी सप्ताध्यायी (संगीतरत्नाकर) में संगीत के सिद्धांतों को गाया है। इन सिद्धांतों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने और ‘महामुनि’ ने प्रतिपादित किया है। उन्हें जो आत्मसात कर सकता है वही अपने गायन से वन के हरिणों को उन्मत्त बना सकता है।

‘सप्त प्रगट सप्त गुप्त’ का विवेचन कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने अपनी अनूठी शैली में किया है। अमीर खुसरो और गोपाल नायक (देवगिरि) की प्रतियोगिता के कथन के उपरांत विद्वद्वर ने अपने ब्रह्मतेज को प्रज्ज्वलित कर लिखा है²—

ये पकड़ कर लाए गए संगीतज्ञ (गोपाल नायक आदि) भला क्यों संगीत-शास्त्र का रहस्य बतलाते ? शाङ्गदेव की उस परम्परा के प्रतिनिधि भला अत्याचारियों और अघर्मियों को ग्राम और मूच्छना का वह रहस्य क्यों बतला देते, जिसके ज्ञान से वेद की ऋचाओं के समान पवित्र और अपरिवर्तनीय ‘जातियाँ’ जान ली जातीं और उनमें विकार की आशंका उत्पन्न हो जाती। वे लोग दिल्ली आए, रहे और प्रत्यक्षतया राग-प्रयोज्य स्वरों के वहीं नाम लेने लगे जो हुजूर लोगों को मंजूर थे। कोमल, तीव्र इत्यादि विशेषणों के लग जाने पर भी स्वरों की भारतीय संज्ञाएँ तो सात ही थीं। राग में प्रयोज्य ध्वनियों से इन्द्रप्रस्थ-मत वाले नामों को उन्होंने ‘सात प्रकट’ अर्थात् ‘स्वरों के प्रचलित या प्रचारित नाम’ कहा और उन्हीं ध्वनियों की मूच्छना की दृष्टि से संज्ञाओं को ‘सात गुप्त’ कहा।

आजीविका के लिए वे स्वरों के दरबारी नाम लेते थे और परम्परा में, ज्ञान अक्षुण्ण रखने के लिए वे ‘सात गुप्त’ के नाम भी अपने पुत्रों या शिष्यों को सिखाते थे।

‘सात गुप्त, सात प्रकट’ का यही रहस्य है। इन सात गुप्त नामों में ही भरत और शाङ्गदेव की परम्परा की कुंजी थी। ‘जिनि पायो, तिनिही लुकायौ’ में उस परम्परा की पवित्रता को बचाने की ही भावना थी।

1. नायक की यही परिभाषा फकीरल्ला ने मानकतुहल के अपने फारसी अनुवाद में दी है। द्विवेदी, मानसिंह और मानकतुहल, पृष्ठ 131।

2. कैलाशचन्द्र बृहस्पति तथा सुमित्रा कुमारी, संगीत चिन्तामणि, पृष्ठ 371-372।

यह स्पष्ट है कि ये 'सात गुप्त' बैजू, गोपाललाल तथा, उनके माध्यम से, तानसेन को भी ज्ञात हो गए थे ।

ऊपर उद्धृत पद में 'महामुनि' बैजू के लिए ही है, उसके लिए ही यह कहा जाता है कि उसने हरिणों को मत्त कर दिया था । मृगों को 'बौराना' और 'पाषाण पिघलाना' लाक्षणिक प्रयोग हैं । यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि बैजू ने हुमायूँ के पाषाण-हृदय को पिघला कर मांडू का कत्ले-आम बंद करा दिया था ।

ऐसी प्रशस्त पृष्ठभूमि में बैजू और गोपाललाल की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने से ही ज्ञात होता है कि तानसेन, जो अपने युग का महान गायक था, इन पर अगाध श्रद्धा रखता था ।

एक अन्य पद में गोपाललाल को मानो डाटते-डपटते हुए तानसेन ने लिखा है—

(रागिनी मुस्तानी घनाश्री, चौताल)

नाद विस्तार किनहू ना पायौ पार,

पीछें-पीछें थक हारौ ससार ।

कौन मूल, कौन धूल, कौन फूल, कौन फल,

कौन पत्र, कौन डार ॥

त्रेदेव करौ उचार, तिनहूँ न पायौ पार,

जिन कीनौ अभिमान, ते बूढ़े मझधार ।

कहै 'तानसेन' सुनौ हो गोपाललाल,

नाद-सागर नाद-समुद्र अपार ॥

परोक्ष रूप में यह पद भी बैजू और गोपाललाल की प्रतिस्पर्धा से संबंधित है ।

इस प्रसंग में उस जनश्रुति का उल्लेख मात्र पर्याप्त है जिसमें तानसेन और बैजू में ही संगीत की प्रतियोगिता करा दी गई है । वह इतिहास के नितांत विपरीत है । तानसेन को बचपन में बैजू का सान्निध्य प्राप्त हुआ था, वह भी एक विनम्र शिष्य के रूप में ।¹

5. गोपाललाल द्वारा मानसिंह की स्तुति

नायक गोपाललाल ने भी महाराज मानसिंह तोमर के विषय में कुछ पद लिखे हैं । उनका प्रताप-वर्णन करते हुए वह लिखता है²—

(राग गन्धार, तिताला)

तुम सुनत उनि पग डगे कहा करौं तेरौ बखान,

तू महाजांन गुनिअनि देत गजदान दिल्ली नरेस रे ।

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 103 ।

2. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

तेरी बाज बस्म रे चढ़ि फौजें संगनि,
 और अ-मान लीअौ ललकारि माचौ हंकारि रे ।
 तू उगीअौ सूरज मान रे,
 धारू गावत गोपाल राजा मान चक्कवै सजान रे ॥

इस पद का आशय है : तेरा समाचार सुनते ही उसके पग डगमगा गए, तेरा बखान क्या करूँ, तू महाज्ञानी है । ओ दिल्ली नरेश, तू गुणियों को गजदान देता है । अरे, तेरा डंका बजा, फौजों के साथ चढ़ाई कर के तूने 'अ-मान' को ललकार कर ले डाला (अथवा शान्ति प्राप्त की) । तूने ललकार कर आक्रमण किया । तू सूर्य की भाँति उदित हुआ । ओ चक्रवर्ती राजा मान, नायक गोपाल धारू गा रहा है ।

विचारणीय प्रश्न यह है कि यह 'अ-मान' कौन हो सकता है । ज्ञात होता है, गोपाललाल ने 'अ-मान' शब्द का प्रयोग सिकंदर लोदी के लिए किया है और उसका संकेत सिकंदर लोदी पर मानसिंह की जौरा-अलापुर पर अभूतपूर्व विजय से है ।¹ मानसिंह को 'दिल्ली नरेश' कह कर गोपाललाल ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि ग्वालियर के तोमरों के पूर्वज कभी दिल्ली के सम्राट थे ।² यही कारण है कि ग्वालियर का कोई तोमर राजा कभी सिंहासन पर नहीं बैठा । महाराज मानसिंह की जो छवि इस पुस्तक में दी गई है उसमें भी वे महल की भूमि पर गद्दी बिछाए बैठे हैं । इसी पूर्व-इतिहास के आधार पर तोमरों में यह अनुश्रुति प्रचलित है—

फिर-फिर दिल्ली तौरौ की,
 तौर गये तब औरौ की ।

नायक गोपाललाल का एक अन्य पद ऐसा प्राप्त हुआ है जिसकी पूर्ण छाया तानसेन के एक पद में भी दिखाई देती है—

(षट् शपताला)

प्रथम मनि औंकार, देवनि मनि महादेव,
 ग्यान मनि गोरिख, वेद मनि ब्रह्मा ।
 विद्या मनि सरस्वती, नदीन मनि गंगा,
 भक्त मनि नारद, निर्त मनि रंभा ।
 ब्रह्म मनि कल्पब्रह्म, गज मनि ऐरावत,
 खर्ग मनि करवाल, राज मनि इंद्रा ।

1 द्विवेदी, ग्वालियर के तोमर, पृष्ठ 158 ।

2. द्विवेदी, 'दिल्ली के तोमर' देखें ।

भनत गोपाल सुनौ हो राजा मान,
 द्यौस मनि सूरज, रैन मनि चंदा ॥

इसी प्रकार का एक पद तानसेन का भी प्राप्त हुआ है जो राजा रामचन्द्र बघेला से संबंधित है और यथास्थान दिया गया है। उसका प्रारंभिक चरण नीचे लिखे अनुसार है:—

(रागिनी टोड़ी, चौताल)

प्रथम मनि औंकार, बर्न प्रथम अकार,
 जाति मनि ब्राह्मण प्रनाम कर लीजियै ।

आदि-आदि ।

महाराज मानसिंह तोमर की दानशीलता के विषय में किसी कवि खूबचंद ने उसके युग के सभी दानी राजाओं की सूची एक छंद में दी है, उसमें सर्वप्रथम महाराज मानसिंह का उल्लेख है¹—

मान दस लाख दयौ, दोहा हरिनाथ के पै ।

यह स्मरणीय है कि महाराज मानसिंह के राजपुरोहित प्रकाण्ड पंडित काशीनाथ मिश्र थे। इन्हीं काशीनाथ के वंशज महाकवि केशवदास थे। महाराज मानसिंह की धर्म-समन्वय की नीति के अनुसार वे सूफी संतों का भी समादर करते थे। इस नीति से काशीनाथ रुष्ट हो कर ग्वालियर छोड़ कर राणा सग्नमसिंह के पास चले गए। उदारमना मानसिंह ने उनके पुत्र हरिनाथ को ही राजपुरोहित का पद प्रदान किया।²

इसी हरिनाथ के किसी दोहे पर प्रसन्न हो कर महाराज मानसिंह ने दस लाख मुद्राएँ उपहार में दी थीं। निश्चय ही तानसेन भी इस उदारता से वंचित नहीं रहे होंगे।

जब तानसेन ने अपने पद में 'देत करोरन' लिखा है, उसका समर्थन खूबचंद के छंद से होता है।

यह स्मरणीय है कि लाख अथवा करोड़ को अतिशयोक्ति नहीं मानना चाहिए। उस समय कुछ ऐसी मुद्राएँ प्रचलित थीं जिनका मूल्य बहुत कम था।

6. उलझन का एक पद

तथाकथित रूप से तानसेन द्वारा रचित एक अजीब पद प्राप्त हुआ है—

आज जनम सफल भयौ तानसेन बाबा हरिदास हाथ पकन्यौ
 श्री राग सिखायौ पहले पहल ।

1. पूरा छंद खानखाना के प्रसंग में दिया गया है।

2. द्विवेदी, ग्वालियर के तोमर, पृष्ठ 437।

मैं औरन सौं सीखी साह मोहम्मद गौस पीर समान

नायक बख्श की समाधि में पहले पहल ॥

गुनीजन आदर ना कीनौ सब मिलि कह्यौ रस नाहीं

तानसेन गुरु कर हम ना सिखायौ पहले पहल ।

तानसेन के प्रभु वाक्वानी के परसाद गुरु हरिदास और कुलगुरु

हृदय राख्यौं बाहू के चरन तरायौ पहले पहल ॥

कैलाशचन्द्र बृहस्पति इस पद को हरिदास डागुर से संबंधित बतलाते हैं ।¹ हमारी दृष्टि में बाबा हरिदास संभवतः डागुर न हों । ज्ञात होता है कि किसी डागुर कहलाने-वाले गवैये ने उक्त विद्वान से यह कथन कर दिया होगा । जो भी हो, यह पद है बड़ा विचित्र ।

इस पद में 'बाबा हरिदास' से आशय यदि स्वामी हरिदास है तब केवल यह माना जा सकता है कि तानसेन स्वामी हरिदास के प्रति श्रद्धा रखते थे । वे उनके दर्शन के लिए वृन्दावन गए थे । 'मोहम्मद गौस पीर समान' कहने से केवल यह आशय माना जा सकता है कि वह निरक्षर राजनीतिवाज 'पीर' भी कहलाने लगा था । परन्तु यदि गौस से तानसेन के संगीत सीखने का भाव है, तब वह पूर्णतः मिथ्या कथन है ।

नायक बख्श की 'समाधि' का उल्लेख भी नितांत असंगत है । हम पहले लिख चुके हैं कि तानसेन ने शैशव में बख्श के चरणों में बैठ कर संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था । यह संभव हो सकता है कि गुजरात-यात्रा में तानसेन ने अपने गुरु की समाधि (मकबरे) के दर्शन किए हों ।

तीसरे चरण का आशय यह है कि गुणी-जन ने तानसेन का आदर नहीं किया और सबने मिल कर कहा कि उसकी वाणी में रस नहीं है और हम उसके गुरु नहीं वनेंगे । मान की राजसभा के पश्चात ऐसा कौन हो सकता है जो तानसेन के विषय में इस प्रकार कह सके ?

चौथे चरण का आशय यह ज्ञात होता है कि सरस्वती के प्रसाद-युक्त गुरु हरिदास और कुलगुरु को हृदय में रख कर उनके चरण ने भी तानसेन को तार दिया ।

यह पद किसने लिखा है और क्यों लिखा है इसका अनुमान करना कठिन है तथापि असंभव नहीं है । संभावना यह है कि तानसेन की जीवनी से पूर्णतः अनभिज्ञ किसी परवर्ती हरिदासी संप्रदाय के परम उत्साही अनुयायी की यह करतूत हो । यह पद तानसेन विरचित कदापि नहीं हो सकता ।

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 197 ।

विक्रमादित्य की राजसभा में

मानसिंह की मृत्यु सन् 1516 ई० में हुई थी। यद्यपि उसके पूर्व मानसिंह को सिकंदर लोदी से विषम संघर्ष करना पड़ा था, तथापि सिकंदर मानसिंह के पहले ही मर चुका था। जब मानसिंह की मृत्यु हुई और विक्रमादित्य को राज्य मिला तब ग्वालियर को अपेक्षाकृत शांत वातावरण उपलब्ध हो सका था, क्योंकि सिकंदर का उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी घर के झगड़ों में फँसा हुआ था।

1. विक्रमादित्य के टोडर

विक्रमादित्य को मानसिंह की समृद्ध रंगशाला दाय में मिली थी। नायक बैजू, नायक बड्छू, नायक महमूद लोहंग, नायक चर्वू, बाबा रामदास, आदि सभी नायक उसकी राजसभा को सुशोभित करते रहे। मानसिंह की अनेक पात्र-मणियाँ भी विक्रमादित्य की रंगशाला में रहीं। पर ये सब कलाकार प्रौढ़ता प्राप्त कर चुके थे। मान की पात्र-मणियाँ भी अति-प्रगल्भा हो चली थीं। उनमें से फ़ीरोजा (पिरोजाराइ) तथा मोहनराइ को विक्रमादित्य ने 'टोडर' की उपाधि दी थी।

मानसिंह ने अपने प्रधानमंत्री क्षेमशाह को 'टोडर' की उपाधि दी थी, अर्थात् पैरों में सोने के तोड़े पहनने का अधिकार दिया था।¹ विक्रमादित्य ने अपनी रंगशाला की अति-प्रगल्भा नर्तकियों को यह अधिकार प्रदान किया था, अर्थात् पात्रों का खलीफा बना दिया और सोने के तोड़े पैरों में पहना दिए थे।

2. तानसेन या तानसिंह

कुछ आधुनिक रामपुरी उर्दू विद्वानों ने अपने लेखों में लिखा है कि विक्रमादित्य ने तानसेन अर्थात् तन्नू को तानसेन की उपाधि दी थी। कुछ का कहना है कि तानसेन को तानसिंह की उपाधि दी गई थी। पहला कथन नितांत निर्मूल है क्योंकि तन्नू ने महाराज मानसिंह के समक्ष ही तानसेन नाम से पद सुनाया था। दूसरा तथ्य इस कारण अग्राह्य है कि तानसेन ने तानसिंह की उपाधि का कभी उपयोग नहीं किया। विक्रमादित्य ने तानसेन के उत्साहवर्धन के लिए क्या किया था, यह स्पष्ट नहीं है।

यद्यपि तानसेन द्वारा विरचित कोई ऐसा पद अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है जिसमें विक्रमादित्य का उल्लेख हो, तथापि यह माना जा सकता है कि बैजू और

1. द्विवेदी, ग्वालियर के तोमर, पृ० 130।

बख्शू तानसेन की प्रवीणता की वृद्धि करते रहे थे। विक्रमादित्य के समय से ही तानसेन का जो रूप प्राप्त होता है, वह एक प्रतिष्ठित गायक का है।

3. तानतरंग

जिस समय तानसेन विक्रमादित्य की राजसभा को सुशोभित कर रहे थे उस समय उनका ज्येष्ठ पुत्र तानतरंग इतना बड़ा हो गया था कि वह स्वयं पद-रचना कर सके। उसने 'बड़ी रानी महाराज' अर्थात् विक्रमादित्य की पटरानी की स्तुति करते हुए लिखा था—

(रागिनी मुल्तानी धनाश्री, चौताल)

प्यारी ! तेरी रूप सुघर गुन पूरन समुद्र भयी,
तामधि सोभा ऐसी बुद्धि जहाज ।

जोवन तरंग लियें, कमला कौ दुख मानो मोतीहृद (?)

सेवा कुंडल स्वर्ग-अंबर जानौ मीन-हंस-ताज ॥

क्रोध कौ घूंघट कियें ता मधि मुख मयंक,

नहीं है कलंक तामैं, मेरी जान बुध समाज (न) ।

'तानतरंग' प्रभु निरख अस्तुति कीन्हीं,

महरबान बड़ी रानी महाराज ॥

वह युग वास्तव में बड़ा विचित्र था। बख्शू तो घोर शृंगारिक वर्णन करने के लिए प्रसिद्ध है ही, संत कवि-गायक बँजू ने भी मानसिंह की अवरुद्धाओं का वर्णन उसी भाँति किया है; भले ही अब तक ऐसे केवल दो पद ही प्राप्त हुए हैं। तानसेन ने भी कहीं-कहीं अति कर दी है। उनके आश्रयदाता भी इससे प्रसन्न ही होते थे।

तानतरंग ने भी लगभग उसी शैली में लिखा है : प्यारी (बड़ी महारानी), आपका सुघर रूप गुणों से परिपूर्ण समुद्र के समान है। उसमें आपका यौवन तरंगों के समान है (क्षण-क्षण बदलता-बढ़ता है), कमला (लक्ष्मी या तानसेन की माता ?) का 'दुख मोतीहर' (?) (अपहृत) हो जाता है। उनकी सेवा मानो कुण्डल हैं, उनमें स्वर्ग और आकाश मीन और हंस के समान शोभित (ताज) हैं। आप क्रोध का घूंघट किए हैं (क्रोध में सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है), उसमें से आपका मुख चंद्रमा के समान झलकता है; आकाश का शशि सकलंक है, किंतु आपका मुख-चंद्र निष्कलंक है। मेरे मत में आपका मुख बुध ग्रह के समान उज्ज्वल है।

अंत में अपनी ग्रीवा की सुरक्षा हेतु तानतरंग ने जोड़ दिया—मालकिन बड़ी रानी महाराज, मैं तो आपके दर्शन करते ही आपकी स्तुति करने लगता हूँ। मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखें (महरबान रहें)।

2. अखाड़ा उखड़ा

इब्राहीम लोटी के सर्वश्रेष्ठ सेनानायक आजम हुमायूँ ने एक लाख से अधिक सेना ले कर सन् 1518-19 में ग्वालियर गढ़ को घेर लिया। तत्कालीन अनेक राजा भी आजम हुमायूँ का साथ अपनी सेनाओं सहित दे रहे थे। यह घमासान युद्ध पाँच वर्ष सन् 1523 तक चला।¹ ज्ञात होता है कि ग्वालियर की रंगशाला की निपुण पात्र-मणियाँ जल-विहीन मछलियों के समान समाप्त हो गईं। नायकों और कवियों ने अन्यत्र आश्रयों की खोज करना प्रारंभ कर दिया।

1. द्विजेंदी, ग्वालियर के तोमर, पृष्ठ 173।

सन् 1523 में विक्रमादित्य की पराजय के साथ ग्वालियर की तोमर राजसभा के अनेक संगीतज्ञ इधर-उधर राजसभाओं अथवा धार्मिक मठों में, अपनी रुचि के अनुसार, चले गए। बख्शू विक्रमादित्य के साथ पानीपत में उसकी मृत्यु (1526 ई०) तक रहा। उसके पश्चात् बख्शू विक्रमादित्य के काका अजीतसिंह तथा भाई नृसिंहदेव तोमर के साथ चंबल क्षेत्र में रहे। तानसेन भी इस बीच बख्शू के साथ ही रहे होंगे। इसके आगे गुरु-शिष्य के मार्ग विभिन्न हो गए। बख्शू कालंजर कीर्तिसिंह के पास चले गए और तानसेन ग्वालियर में ही रह गए।

1. ग्वालियरी राजनीति के मोहरे

इस समय ग्वालियर में एक विशेष प्रकार की राजनीति उभरी थी तथा उसके अनुरूप समाज भी इकट्ठा हो गया था। बाबर ने रहीमदाद को ग्वालियर का प्रशासक नियुक्त किया था। तोमर सामंत और सैनिक उसे त्रस्त किए हुए थे। वह गढ़ छोड़ कर या तोमरों को दे कर भागना चाहता था। उसी समय शेख मोहम्मद गौस भी ग्वालियर में आ गए थे। वे रहीमदाद को गढ़ तोमरों को देने से रोकते रहे। उधर शेख आगरा जा कर बाबर से भी मिले, और रहीमदाद पर रुष्ट न रहने का बादशाह से आग्रह किया।¹ इस आग्रह पर बाबर ने रहीमदाद को आगरा बुला लिया और ग्वालियर गढ़ के हाकिम के रूप में अबुल फतह (शेख गूरान) को भेजा (सन् 1529 के अंत में)। उस समय शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर पर छा गए। इनमें से शेख गूरान सफल सेनानायक होने के साथ कुशल संगीतज्ञ भी था, निरक्षर शेख गौस कोरे राजनीतिवाज संत थे।

2. शेख गौस तथा शेख गूरान

यह बहुत संभव है कि इस अवसर पर तानसेन शेख गौस से आशीर्वाद प्राप्त करने के उत्सुक हुए हों, संगीत के रूप में तो शेख गौस के पास देने के लिए कुछ था नहीं। यह भी सत्य है कि ध्रुपद शैली का उदीयमान गायक तानसेन कभी शेख गूरान की कव्वाली गायकी अंगीकार नहीं कर सकता था। ऐसी दशा में कुछ मेल हुआ भी होगा, तब वह प्रशासकीय रोष से मुक्त रहने के लिए ही हुआ होगा। तोमरों की राजसभा से संबंधित होना उस विषम काल में कठिनाई उत्पन्न कर सकता था। इससे अधिक इन दोनों शेखों से तानसेन का संबंध जोड़ना इतिहास-विरुद्ध होगा।

1. द्विवेदी, ग्वालियर के तोमर, पृष्ठ 191।

— पाँच — सूर वंश

बाबर की मृत्यु सन् 1530 में हुई। इसके पश्चात् मुगुल सल्तनत हुमायूँ के हाथ आई। प्रारंभिक विजयों के पश्चात् हुमायूँ को शेरखाँ अफगान से 26 जून सन् 1539 को गंगा-किनारे चौसा में तथा फिर कन्नौज में पराजित हो कर ईरान भाग जाना पड़ा। ग्वालियर को भी इस विग्रह का परिणाम भुगतना पड़ा। शेरशाह ने शुजातखाँ को ग्वालियर की विजय करने के लिए भेजा और सन् 1542 ई० में स्वयं शेरशाह ग्वालियर आया। उस प्रकार ग्वालियर पूर्णतः सूर वंश के अधीन हो गया। मुगुलों के अन्य पक्षधरों के समान शेख गौस भी ग्वालियर से भाग कर गुजरात पहुँच गए।

1. इस्लामशाह

22 मई, 1542 ई० को शेरशाह कालंजर के घेरे के समय मारा गया। 25 मई, 1544 ई० को शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लामशाह सूर ने गद्दी सँभाली। इस्लामशाह सूर को ग्वालियर से बहुत लगाव था, और उसने उसे अपनी राजधानी बना ली। राजनीतिक क्षेत्र में यह षड्यंत्री और नीच प्रवृत्ति का था, तथापि वह विद्वान था और अच्छा संगीतज्ञ भी था। उसे ध्रुपद गायन-शैली बहुत प्रिय थी, उसके लिखे हुए कुछ ध्रुपद भी प्राप्त हुए हैं। उसने ग्वालियर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ बाबा रामदास, नायक चर्चू तथा महापात्र¹ को प्रश्रय दिया।

2. दौलतखाँ उजियाला

इस्लामशाह के समय में एक विचित्र व्यक्तित्व दिखाई दिया था। शेरशाह के समय ग्वालियर को अफगानों के लिए जीतने-चाले शुजातखाँ को शेरशाह ने मालवा का सूवेदार बना दिया था। उसका दत्तक पुत्र था दौलतखाँ उजियाला। वह अत्यंत कमनीय था तथा वह इस्लामशाह का प्रेम-पात्र बन गया। उसे 'उजियाला' इस कारण कहा जाता था कि रात्रि के समय उसके और सुल्तान के निवास के बीच मार्ग के दोनों ओर मशालें जलाई जाती थीं। इस्लामशाह और दौलतखाँ के बीच इस प्रेम का संगीत के इतिहास से अधिक संबंध नहीं है। यह प्रसंग केवल इसलिए लिखना पड़ा क्योंकि युवा तानसेन भी दौलतखाँ के उजियाले

1. यह महापात्र ओडीसा से ग्वालियर आया था। आगे वह अकबर के आश्रय में भी पहुँचा। अकबर ने उसे ओडीसा के राजा मुकुन्ददेव के पास अपना राजदूत बना कर भेजा था। उसका नाम अज्ञात है।

की चकाचौंध के चक्कर में आ कर उस पर अनुरक्त हो गए थे। 'तानसेन के नयन-चकोर भी दौलतखाँ के मुख-चन्द्र की रूप-सुधा का पान आतुरतापूर्वक करते थे ।'¹

एक ध्रुपद में तानसेन द्वारा दौलतखाँ उजियाला को मनाने का प्रयास किया गया है²—

(राग छाया, धीमा तिताला)

मोसों रुसनौ हो किन करत हौ प्यारे
जौ मोते कछू चूक परी ताहि तुमही सुधारन हारे ।
अब तौ गरें लगाओ जोअ में उताउल भई,
प्रीति-वचन तजि भए न्यारे ॥
कौनों जहं सीख दई कहा तुम जीअ धरी,
मोसों यौ कहा हा हारे ।
हसि करि बूझत उतर काहे न देत
दौलतिखाँन उज्यारे ॥

माना यह जाता है कि यह पद दौलतखाँ द्वारा विरचित है। इसकी विषय-वस्तु देखते हुए यह मान्यता पूर्णतः संदेह-युक्त है। केवल तानसेन के नाम की छाप न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि यह पद उनका नहीं है।

दौलतखाँ को इस्लामशाह से प्रतिदिन एक लाख टंक (टके) प्राप्त होते थे। इस कारण वह तानसेन को प्रश्रय देने में भी समर्थ था। इस्लामशाह की संगीत-सभा को बाबा रामदास, नायक चर्चू तथा महापात्र सुशोभित करते थे और दौलतखाँ उजियाला की सभा में तानसेन उजाला करते थे। दौलतखाँ की छाप के कुछ और ध्रुपद भी मिले हैं। संभव है, उसकी रचना तानसेन ने की हो। कुछ भी हुआ हो, तानसेन को यह संगति महेँगी पड़ी थी। इस तथ्य पर आगे विचार किया गया है।

3. मुहम्मद आदिलशाह

इस्लामशाह सूर के पश्चात् उसके बारहवर्षीय पुत्र फ़ीरोजशाह सूर को ग्वालियर में सुल्तान बना दिया गया। उसे इस्लामशाह के साले ने मार डाला और स्वयं सुल्तान बन गया। उसने मुहम्मदशाह आदिल (1549-1556 ई०) की उपाधि धारण की। 'आदिल' का अर्थ न्यायी होता है, परंतु वह अदली (मूर्ख) कहा जाने लगा और फिर जब उसके अनाचार और अधिक बढ़ गए तो लोग उसे आँधली (अंधा) कहने लगे।

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुपद और उसका विकास, पृष्ठ 260 ।

2. अप्रकाशित 'रागमाला' ।

मुहम्मदशाह आदिल संगीत के इतिहास में 'अदली' के नाम से ही जाना जाता है। मुहम्मदशाह का शासन कैसा भी रहा हो, निश्चित ही वह अत्यंत प्रवीण संगीतज्ञ था और उसके लिखे ध्रुपद भी मिलते हैं। मुत्तखबुत्तवारीख के अनुसार तानसेन तथा वायजीद (बाज बहादुर), दोनों आदिल को अपना गुरु मानते थे।¹

तानसेन आदिल को गुरु मानते थे या नहीं, इस विषय में मुल्ला बदायूनी का कथन गंभीरता से लेने की आवश्यकता नहीं है। तानसेन इस्लामशाह सूर तथा मुहम्मद आदिलशाह सूर के दरबार में रहे अवश्य, जहाँ उनका सम्पर्क बाबा रामदास, नायक चर्चू, महापात्र तथा बाज बहादुर जैसे समकालीन महान् ध्रुपद गायकों से हुआ था। तानसेन ने उनसे भी कुछ अवश्य सीखा होगा।

तानसेन को उजियाला के संपर्क द्वारा लगे लांछन को बाबा रामदास के पावन स्पर्श ने अवश्य कुछ सीमा तक धो-पोंछ दिया होगा। जो विद्वान बाबा रामदास को तानसेन का गुरु मानते हैं, वे इसी सीमा तक सही हैं। रामदास को बाबा इस कारण कहा जाता था कि वे निर्विकार, निर्लिप्त और निर्भीक व्यक्ति थे और इसी कारण इन सूर सुल्तानों के समय के उच्छृंखल वातावरण में कमल-पत्रवत् निष्कलुष रहे।

4. इब्राहीम

आदिल के पश्चात् ही सूर वंश का सूर्य अस्ताचल की ओर उतरने लगा था। उसके एक अमीर ताजखाँ किरानी ने विद्रोह कर दिया और अपने-आप को सुल्तान घोषित कर दिया। आदिलशाह को स्वयं युद्ध में जाना पड़ा और ताजखाँ का पीछा करता हुआ वह चुनारगढ़ की ओर गया। इस घटना का लाभ उठा कर इब्राहीमखाँ सूर (जो आदिल का भाई या भतीजा था) ने आगरा और उसके आसपास का भू-भाग अपने अधीन कर लिया और आगरा में राजधानी जमा कर बैठ गया। मुहम्मदशाह आदिल उसे पराजित करने में असफल रहा, और विवश हो कर उसने चुनारगढ़ पर अपनी राजधानी बना ली।

इब्राहीम सूर ने तानसेन को आगरा बुलाने का बहुत प्रयास किया, पर तानसेन ने उसका आमंत्रण अस्वीकार कर दिया। इसके साथ ही तानसेन का सूर वंश के सुल्तानों के साथ संबंध समाप्त हो गया।

1. मुल्ता अब्दुल कादिर बदायूनी, मुत्तखबुत्तवारीख, भाग 1, पृष्ठ 257।

संक्रांति काल

इस समय स्थिति यह थी कि ग्वालियर का प्रशासन आदिल का दास सुहैल देख रहा था। आगरा पर इब्राहीम सूर राजधानी बनाए हुए था। मुहम्मदशाह आदिल ने पूर्व दिशा में रोहतास पर अपनी राजधानी बना ली और उसने हेमू नामक व्यक्ति को अपना सेनापति बना दिया।

फिर इब्राहीम सूर तथा मुहम्मदशाह आदिल सूर आपस में लड़ बैठे। आदिल के सेनापति हेमू ने इब्राहीम सूर को पराजित कर दिया और अंततोगत्वा उसे ओड़ीसा की ओर भगा दिया।

आदिल ग्वालियर या आगरा राजधानी बनाने के स्थान पर चुनार में रह कर हुमायूँ के साथ युद्ध करने के लिए सेना इकट्ठी करने लगा।

1. हुमायूँ की भारत की ओर यात्रा

शेरशाह से पराजित हो कर हुमायूँ भागते-भागते ईरान पहुँच गया। ईरान में हुमायूँ को जब यह ज्ञात हुआ कि भारत के अफगान अमीर सूर सुल्तान के विरुद्ध हो गए हैं, वह अपने भारत के साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने की तैयारी करने लगा। जैसे ही उसने इस्लामशाह सूर की मृत्यु का समाचार सुना, उसने ईरान से भारत की ओर कूच कर दिया। मार्ग में विजय प्राप्त करते हुए, उसने 23 जुलाई, 1555 को दिल्ली में प्रवेश किया और वहाँ राजधानी बना कर जम गया। परन्तु इसके छह मास के ही भीतर 24 जनवरी, 1556 को वह अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिर कर मर गया। अफगान फिर प्रबल हुए। हेमू को दिल्ली की ओर रण-यात्रा पर भेजा गया।

इसके आगे की घटनाओं पर विचार करने से पूर्व, हुमायूँ के विश्व-विख्यात पुत्र अकबर महान के विषय में कुछ तिथियाँ जान लेना आवश्यक है।

2. अकबर का जन्म और सिंहासन-प्राप्ति

जब अपदस्थ नाममात्र का बादशाह हुमायूँ राजस्थान की मरुभूमि में सहायता-प्राप्ति के लिए मारा-मारा फिर रहा था, उस समय सन् 1541-42 में उसका विवाह 14 वर्ष की हमीदा बानू से हुआ जिसका नाम 'मरियम मकानी' रखा गया। 15 अगस्त, 1542 में हुमायूँ अपने सात सवारों के साथ अमरकोट

पहुँचा।¹ अमरकोट में राणा ने हुमायूँ का दिल खोल कर स्वागत किया और उसे पाँच हजार अश्वारोही सैनिक दिए। उस समय हमीदा बानू के गर्भ में बालक पल रहा था। हुमायूँ हमीदा बानू को अमरकोट छोड़ कर विजय-यात्रा के लिए चल पड़ा। जब वह एक पड़ाव ही आगे बढ़ पाया था, तब उसे युवराज के जन्म का समाचार प्राप्त हुआ। युवराज का जन्म बदर (पूर्णिमा) 23 नवम्बर, 1542 को हुआ, इस कारण उसका नाम बदरुद्दीन मुहम्मद अकबर रखा गया जो सिंहासनारूढ़ होने पर 'जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर' कर दिया गया। उसके आगे अकबर के बाल्यकाल की घटनाएँ यहाँ संबद्ध नहीं हैं। जिस समय हुमायूँ ने दिल्ली पर अधिकार किया था, उस समय बालक अकबर बैरमखाँ के संरक्षण में पंजाब में युद्ध कर रहा था। उसी समय उसे हुमायूँ की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। 14 फरवरी, 1556 को कन्नोर² में बैरमखाँ ने अन्य अमीरों सहित चौदह-वर्षीय अकबर को तख्त पर बैठाया। इसके लिए जो 18 फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा, 2 फुट ऊँचा ईंटों का चबूतरा बनवाया गया था, अँगरेजों ने उसे 'तख्ते-अकबरी' नाम दे दिया तथा उसकी मरम्मत भी करवा दी। बैरमखाँ अकबर के संरक्षक बने जिन्हें अकबर 'खान बाबा' कहता था।

3. पानीपत का युद्ध

उधर हेमू ने दिल्ली के मुगुल अमीर को हरा कर भगा दिया और स्वयं 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की उपाधि धारण कर दिल्ली में जम गया। उसके स्वामी आदिल ने हेमू को पंजाब की ओर कूच कर अकबर को पराजित करने का आदेश भेजा। 'खान बाबा' (संरक्षक) बैरमखाँ के नेतृत्व में सेना ले कर अकबर हेमू से युद्ध करने के लिए बढ़ा, तथा पानीपत पर दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। 5 नवम्बर, 1556 को पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में हेमचन्द्र विक्रमादित्य पराजित हो कर मारा गया।

4. ग्वालियर

बैरमखाँ ने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया। अकबर ने कियाखाँ को ग्वालियर तथा आसपास का क्षेत्र जागीर में दे दिया। इधर ग्वालियर में आदिलशाह के दास सुहैल को विक्रमादित्य तोमर के युवराज रामसिंह तोमर का भीषण प्रतिरोध सहना पड़ रहा था। अंततोगत्वा सुहैल ने रामसिंह तोमर से धन ले कर ग्वालियर गढ़ उसे दे दिया। फिर कियाखाँ ने

1. अमरकोट, राजस्थान की मरुभूमि के किनारे पर सिंध प्रांत के पास है। अब वह पाकिस्तान के सिंध प्रांत में मिला लिया गया है। उसे भूल से 'अमरकोट' भी लिखा जाता है।
2. जिला गुरुदासपुर, आजकल पाकिस्तान में।

रामसिंह को बुरी तरह पराजित कर दिया। बड़ी कठिनाई से रामसिंह भाग कर उदयपुर के राणा के पास पहुँच सका।

5. अकबर की बैरमखाँ से मुक्ति तथा माहम अनका का प्रभाव

बैरमखाँ के संरक्षण-काल में अकबर ने उत्तरी भारत का बहुत बड़ा भाग जीत लिया था। जब अकबर 18 वर्ष का हो गया, तब उसने अपने-आपको बैरमखाँ के संरक्षण से मुक्त कर लिया। परंतु इसके पश्चात् एक-दो वर्ष उसकी धाय-माँ माहम अनका ने उस पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया। अकबर ने उससे भी पीछा छुड़ाया।

6. स्वाधीनचेता अकबर

सन् 1562 तक अकबर अपनी इच्छानुसार साम्राज्य की गतिविधियाँ संचालित करने लगा। इसी वर्ष अकबर ने आमेर के राणा बिहारीमल की राजकुमारी (जोधाबाई) से विवाह कर लिया और उसे संमान देने के लिए अपनी माता का नाम 'मरियम मकानी' उसे प्रदान कर दिया। इस घटना से अकबर की राजनीति में एक नवीन दिशा का सूत्रपात हुआ। पहली बार मुगलों के साम्राज्य को स्थायित्व देने वाले स्तंभों में राजपूत भी संमिलित हो गए।

7. कालंजर

ग्वालियर-आगरा की स्थिति को यहीं छोड़ कर अब कालंजर के समाचार प्राप्त करना आवश्यक है। कालंजर को शेरशाह ने कीर्तिसिंह से छीन लिया था और वहाँ के निवासियों का कत्ले-आम हुआ था।¹ राजा रामचन्द्र वघेला ने कालंजर का गढ़ शेरशाह सूर के दामाद अलीखाँ को, जो उस गढ़ का सूबेदार था, बहुत अधिक धन दे कर क्रय कर लिया। अकबर ने अपने एक सेनापति मजनूखाँ को मानिकपुर का जागीरदार बना दिया था। उसने कालंजर को घेर लिया। राजा रामचन्द्र ने जब यह सुना कि मुगलों ने रणथंभौर तथा चित्तौड़ गढ़ जीत लिए हैं, तब निराश हो कर उसने कालंजर गढ़ मजनूखाँ को सन् 1569 में सौंप दिया। बादशाह अकबर ने राजा रामचन्द्र से संबंध अच्छे रखने के लिए उन्हें इलाहाबाद का एक बड़ा क्षेत्र जागीर में दे दिया। इस तुष्टीकरण के प्रधान कारण का विवरण आगे 'तानसेन की निर्भीकता' परिच्छेद में दिया गया है।

समकालीन इतिहास की इतनी घटनाएँ प्रस्तुत करने के उपरान्त तानसेन की आगे की जीवन-यात्रा के साथ चलना सुविधा-जनक होगा।

1. कुछ विद्वान कीर्तिसिंह को वघेला लिखते हैं। यह कथन निर्मूल है। जब शेरशाह ने कालंजर पर आक्रमण किया था उस समय बांधवगढ़ का राजा वीरसिंह वघेला था। उसका कीर्तिसिंह से कोई संबंध नहीं था।

राजा राम की राजसभा में

भट या भटगोर प्रांत (अब रीवा) के राजा साहित्य, संगीत तथा अन्य कलाओं के आश्रयदाता रहे हैं। जिस समय ग्वालियर अपने सांस्कृतिक उत्कर्ष की चरम सीमा पर था उस समय भी कालंजर में सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं। ग्वालियर का अखाड़ा उखड़ने पर एक ओर तो ग्वालियर के अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों ने ओड़छा में प्रकाश फैलाया, दूसरी ओर कालंजर के राजा कीर्तिसिंह की कीर्ति-वृद्धि की। कीर्तिसिंह का सुन्दर सांस्कृतिक नीड़ शेरशाह सूर ने उजाड़ दिया। रामचन्द्र बघेला ने उसे पुनः सजाया। अनेक संगीतज्ञ और साहित्यकार उनकी राजसभा को सुशोभित करने लगे। राजा रामचन्द्र महान दानी और ध्रुपद गायन-शैली के मर्मज्ञ थे।

सन् 1556-57 ई० में इब्राहीम सूर के आगरा आने के निमंत्रण को ठुकरा कर तानसेन लगभग विरक्त जीवन बिता रहे थे। इसी समय किसी अज्ञात कारण ने उन्हें राजा रामचन्द्र की सभा की ओर आकर्षित किया।

1. राजसभा में प्रवेश

तानसेन का राजा रामचन्द्र के पास पहुँचने का समय लगभग 1557-58 ई० है। परन्तु यह ज्ञात नहीं कि वे रामचन्द्र की राजसभा में बांधवगढ़ कैसे और क्यों पहुँचे थे। इस प्रश्न का उत्तर इतिहास नहीं देता। जहाँ इतिहास मौन हो जाता है वहाँ जनश्रुतियाँ मुखर हो उठती हैं। इस विषय में भी एक मनोरंजक किंवदंती उपलब्ध है।

कहा जाता है कि मोहम्मद गौस की मृत्यु के बाद तानसेन ने फकीरी वेष धारण कर लिया और ग्वालियर छोड़ कर बांधवगढ़ की ओर चल दिए। वहाँ पहुँचने पर अपने वेष के कारण उन्हें कठिनाई उठानी पड़ी। जब वे राजमहल की ओर बढ़ रहे थे तब महल के एक रक्षक ने उन्हें रोका और कहा कि तुम राजा की आज्ञा नहीं जानते; राजा का आदेश है कि जब वे पूजा में बैठे हों तब राजमहल के दो मील के घेरे में कोई कुजाति (आशय मुसलमान से था) प्रवेश नहीं कर सकता। तानसेन यह सुन कर भी निराश नहीं हुए और अपना तानपूरा ले कर राजप्रासाद के पीछे जा बैठे। उन्होंने तान छेड़ी और गाना प्रारम्भ किया—

तू ही वेद, तू ही पुराण, तू ही हदीस, तू ही कुरान।

तू ही ध्यान, तू ही ज्ञान, तू ही त्रभुवनेश ॥

प्रभाव चमत्कारी हुआ। महल के भीतर राजा जिस शिव-विग्रह की पूजा कर रहे थे, उसका मुख राजा की ओर से हट कर उस ओर हो गया जिस ओर से तानसेन के गायन की ध्वनि आ रही थी। राजा बहुत चमत्कृत हुआ और यह देखने के लिए महल के पीछे गया कि कौन गा रहा है। यद्यपि तानसेन मुस्लिम फकीर का बाना पहने थे, राजा उनके चरणों में गिर पड़ा तथा क्षमा माँगी, साथ ही अपना भेदभावपूर्ण आदेश वापस ले लिया।

इस दंतकथा में अनेक तथ्य ज्ञात इतिहास के नितांत विपरीत हैं। इसके विषय में पहली शंका यह है कि गौस मुहम्मद की मृत्यु 10 मई 1563 ई० को आगरा में हुई थी। उसके लगभग एक वर्ष पहले तानसेन अकबरी दरबार में आगरा पहुँच चुके थे, अतः शेख गौस की मृत्यु के उपरांत तानसेन का फकीरी वेश धारण कर बांधवगढ़ की ओर जाना असंभव है। यह कहानी उस प्रवाद का अंश है जिसके द्वारा तानसेन को शेख गौस का शिष्य घोषित करने का कुप्रयास किया गया है। 'फकीरी' बाना भी इसी कल्पना पर आधारित है। यह बात हो सकती है कि तानसेन बैरागी के वेश में बांधवगढ़ पहुँचे हों, वे ग्वालियर में ही कुछ उदासीन-से हो गए थे।

तानसेन को शेख गौस का मुरीद सिद्ध करने का प्रबल कुप्रयास मुहम्मद करम इमाम ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ 'मअदन्-उल्-मौसीकी' में किया है।¹

ऊपर उल्लिखित दंतकथा के विषय में एक अन्य आपत्ति इस कारण उत्पन्न हुई है कि आधुनिक श्रद्धा-विहीन मस्तिष्क यह नहीं स्वीकार कर सकता कि पत्थर या धातु का शिव-विग्रह अपने-आप अपने मुख की दिशा बदल लेगा। अंध आस्था के अधीन विचार करने की रीति भिन्न है।

ये सब शंकाएँ होते हुए भी यह अनुश्रुति रोचक है, यही रोचकता इसका एकमात्र उद्देश्य है।

2. राजसभा में प्रथम गायन

राजा रामचन्द्र बघेला की राजसभा में तानसेन का कार्यक्रम क्या रहता था, इसे जानने का कोई साधन नहीं है। दुर्भाग्य से राजा रामचन्द्र को संबोधित तानसेन के अभी तक केवल 7-8 पद ही उपलब्ध हैं, उन्हीं के आधार पर कुछ कहा जा सकेगा।

ज्ञात यह होता है कि जब तानसेन पहली बार राजा राम की राजसभा में पहुँचे, तब उन्होंने यह पद गाया—

गये मेरे सब दुःख, देखे तैं आप दरस।

(राग गंधार, चौताला)

अष्ट-सिद्धि नव-निधि देत हौ पलक में धन-जन-कंचन जात बरस ॥

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 205।

एकन कौं गज-तुरंग, एकन कौं भूषन, एकन कौं बस्तर देही सरस ।
'तानसेन' कहै राजा राम सकल काज पूरन,

गुनियन के दारिद जात हरत ॥

मुल्ला बदायूनी ने लिखा है कि राजा राम ने तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कार में दी थीं ।¹ यह बहुत सम्भव है कि यह पुरस्कार इसी पद को सुनने के उपरान्त राजा ने तानसेन को दिया हो ।

3. आभार प्रदर्शन

पदों की विषयवस्तु के आधार पर सुनिश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, फिर भी यह अनुमान प्रस्तुत किया जा सकता है कि इस पुरस्कार की प्राप्ति पर तानसेन ने आभार प्रदर्शित करते हुए यह पद गाया था—

(राग गंधार, चौताला)

सुन्दर अति प्रवीन महा चतुर अचल राज करो,
रवि-ससि जौलों भूमि पर ।

चिरंजीवी रहौ जौलों ध्रुव-धरनि-तरन-पवन-पानी,
राजन-मनि राजा रामचन्द्र रघुवर ॥

तो सौ तुही और दूजौ नाहीं, मेरे जान सब जग कौ विस्वंबर ।
'तानसेन' तेरी अस्तुति कहाँ लौं बखानै,

भक्त-वत्सल तोहि ध्यावत सुर-नर-मुनिवर ॥

तानसेन ने इस पद में 'वीरभानु-नंदन' रामचन्द्र बघेला को दाशरथि राम के समकक्ष प्रस्तुत कर दिया है । खानखाना ने भी अपनी विपन्न अवस्था में राजा रामचन्द्र बघेला को 'अवध नरेश' कहा है । यद्यपि यह दोहा और उसका आशय आगे खानखाना से संबंधित परिच्छेद में दिया गया है फिर भी यहाँ दो पंक्तियों की पुनरुक्ति अनुचित नहीं होगी —

चित्रकूट में बसि रहे रहिमान अवध नरेश ।

जा पर विपदा परत है सो आवत इहि देस ॥

यह होते हुए भी, इसमें संदेह नहीं कि तानसेन ने अतिशयोक्ति तो की ही है ।

4. मंगलकामना

तानसेन ने राजा रामचन्द्र बघेला की मंगलकामना करते हुए लिखा है² —

1. मुल्ला बदायूनी, पूर्वोक्त, भाग 2, पृष्ठ 345 ।

2. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

(रागनी बागेशुरी कान्हरा, चौताला)

अचल चक्रवर्ती बघेलौ चकत्ता नरेश,
 गुर गनेस बुधि सुरेस सकल विद्या विनानी ।
 छत्र-पाट-सिंघासन अभिचल रहौ,
 जौ लौं दधि सुमेर भुज लौं सुलितानी ॥
 सप्त दीप नवखंड दसौं दिसा जसु छायाँ,
 षट दरसन निवास परम ग्यानी ।
 बीरभान जू कौं आनंद करन विशेष,
 महाराजा राजा रामचंद्र इंद्र सनमानी ॥

निश्चय ही यह पद तानसेन ने उस समय लिखा था जब राजा रामचन्द्र पूर्ण स्वतन्त्र थे तथा उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। वास्तव में राजा रामचन्द्र ने अकबर की जागीरदारी की स्थिति तानसेन के बांधवगढ़ छोड़ने के उपरांत स्वीकार की थी।

5. राजा राम की संगीतज्ञता

राजा रामचन्द्र की संगीतज्ञता के विषय में तानसेन ने एक पद लिखा है¹—

६

(राग कान्हरा, चौताला)

धर्म कर्म की अलाप हारु सम्हारी,
 गुन पूरौ करिबे कौं बैठौ हटवारी ।
 आकार की डांडी कीनी जोति करि काइम ग्राम डोरे,
 मानौ द्रवननि पालरा तारकी चटक पाटी पाछै गहि डारी ॥
 अर्थ मूल ते अछिर समझौं नीकी नीकी,
 धुरपत चतुर तौल तुंक अति भारी ।
 जा गुन कौ गाहक राजा रामचन्द्र देत करोरनि,
 बेचत 'तानसेन' बैपारी ॥

तानसेन ने इस पद में अपने-आपको धर्म-कर्म-युक्त आलाप का बाजार लगाने वाला कहा है और यह भी कहा है कि मैं गुण से पूर्ण हूँ और व्यापार करने बैठा हूँ। आकार (गले से लगने वाले आकारान्त स्वर) की डांडी (तुला की) बना कर 'ग्राम' (षडज ग्राम और मध्यम ग्राम) की डोरियों से जोत (डांडी के साथ पलड़ों के बांधने वाली रस्सी) स्थिर की है, 'ताल' की पट्टी लेकर चटपट पीछे

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

डाल दी है, अक्षर अर्थ-मूलक है, अच्छे ध्रुपद तौल रहा हूँ, जिनकी तुकें भारी हैं। इस गुण का ग्राहक रामचन्द्र है और मैं व्यापारी हूँ।

अप्रकाशित 'रागमाला' में राजा रामचन्द्र बघेला के नाम-युक्त 12 पद दिए गए हैं। इन पदों की रचना किसने की थी यह उन पदों से ज्ञात नहीं होता। उन्हें पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि उनमें से कुछ पद तानसेन के भी हैं। उनकी शैली वही है जो तानसेन के अन्य पदों की है। तानसेन ने निश्चय ही अनेक पद बिना अपना नाम डाले लिखे थे। यह पहले दौलतखाँ उजियाला के प्रसंग में भी देखा गया है।

इस प्रसंग में राजा रामचन्द्र की संगीतज्ञता के विषय में नाद-सागर का सांगरूपक द्रष्टव्य है—

(राग मालकोस, तेवरा)

अगम अपार नादसागर की राह तामैं तुम जिहाज मान,

आहत अनाहत जंम जानि इकईस मुरिछिना

वादवांन बाईस सुरति सौं चलावै।

काब (काव्य) रीति संगीत-गीत प्रबन्ध धुरपत धारू तत वितत जानि,

ता मध बैठि षरज लगाई लंगर सप्त सुर मंदराचल उनंचास कोटि,

सु तान सुध फिराइ मथन करै

सु चौदह रतन लेई निकारि नाम गनावै ॥

ओढव षाढव संपूरन वादी संवादी अतीत अनांघत सम विसम

तीनि ग्रामनि के करि दिखावै।

दस विधि गमक लै आरोह अवरोह मंद्र सो मध तार

स्फुरित प्रत्याहित उपज करि घरनि मुरनि अलापचारी,

सघन औ सुर बरज जानैं अस्थान चारि विचार राग लीए

निकारि अनेक रत्न संगीतरतनाकर सौं कहि माल घूअ

माठादि ताल समेति गाइ रिझाइ

गुनीजन राम कौं तब रिझावै ॥

राजा रामचन्द्र बघेला के गंभीर संगीत-ज्ञान के विषय में यह पद निश्चय ही तानसेन द्वारा विरचित है। तानसेन-विरचित इस प्रकार के अनेक सांगरूपक प्राप्त हुए हैं।

इस पदों के अतिरिक्त राजा रामचन्द्र की मंगलकामना, उसकी राजसभा का वैभव, दानशीलता आदि से संबंधित पद भी हैं। इनमें से कौन-से तानसेन द्वारा विरचित हैं, यह कहना कठिन है।

यह पद किसी का भी लिखा हुआ हो, इसकी शैली पूर्णतः तानसेन के पदों की है और इसमें निहित संगीत शास्त्र का ज्ञान भी केवल तानसेन के अनुरूप है। यह संभव है कि तानसेन ने यह पद बिना अपने नाम की छाप दिए लिखा हो। नाद-सागर का रूपक तानसेन द्वारा प्रस्तुत रूपक से कुछ अधिक स्पष्ट है। इसका आशय है—

नाद-सागर का मार्ग अगम और अथाह है। उसमें शरीर को जहाज, आहत और अनाहत नाद को खंभे, इक्कीस मूर्च्छनाओं को बादवान (मरुत्पट) समझ कर बाईस श्रुतियों से चलाना चाहिए। काव्य-रीति, संगीत, गीत-प्रबन्ध, ध्रुपद, धारू, तत, वितत को समझ कर उसमें बैठने के पश्चात् षड्ज को लंगर और सातों स्वरों को मंदराचल समझे; उनचास कूटतानों को शुद्ध रूप में फिरा कर नाद-सागर का मंथन करे और चौदहों रत्न निकाल कर उनके नाम गिनाए; तीनों ग्रामों में औढव, षाढव, सम्पूर्ण, वादी, संवादी, अतीत, अनाघात, सम, विषम करके दिखाए; दस प्रकार के गमक ले कर मंद, मध्य एवं तार स्थान में आरोह-अवरोह करके स्फुरित और प्रत्याहित में उपज करे; ढरन, मुख, अलापचारी और वर्जित स्वरों को जाने; चारों स्थानों का विचार करके संगीत-रत्नाकर से अनेक राग निकाल लेने पर ध्रुव, माठा इत्यादि तालों के समेत गा कर रिझाए; तब वह गुणी राजा रामचन्द्र को भला प्रतीत होता है।

6. राजन प्रथम राजा राम—तानन प्रथम तानसेन

तानसेन ने एक पद में राजा रामचन्द्र वधेला को 'राजन प्रथम' कहा है और अपने आपको 'तानन प्रथम'।

(सगिनी टोड़ी, चौताला)

सब्द प्रथम औंकार वरुण प्रथम अकार जाति प्रथम ब्राह्मण

प्रणाम कर लीजियै।

देव प्रथम नारायण ज्ञानी प्रथम महादेव छमा प्रथम धरनी

तेज प्रथम भान लिख लीजियै ॥

नदी प्रथम गंगा पर्वत प्रथम सुमेरु साज प्रथम बीन

भक्तन प्रथम नारद कहि दीजियै।

गीत प्रथम संगीत नर में प्रथम स्वायंभू राजन प्रथम राजा राम

तानन प्रथम तानसेन उनचास कूट रस पीजियै ॥

अपने को अपने आश्रयदाता से किसी प्रकार कम न बतलाना तानसेन के आत्म संमान की भावना का प्रतीक है। इसी प्रकार के पद उसने सम्राट् अकबर को भी सुनाए थे।

7. मगन रहौ राजा राम

तानसेन का स्थान बांधवगढ़ के राजा रामचन्द्र की सभा में बहुत संमान-पूर्ण था। वे राजा को 'मगन रहने' का उपदेश दे कर उसे प्रबोध करते भी दिखाई देते हैं।

राजा रामचन्द्र के हृदय में यह बहुत बड़ी आशंका थी कि सम्राट अकबर ने एक-एक स्वतंत्र राजा के राज्यों को हड़पने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है और उसकी यह सर्वग्रासी भुभुक्षा उसे बांधवगढ़ निगलने के लिए प्रेरित कर सकती है। तानसेन ने ऐसे दिषम समय में राजा रामचन्द्र बबेला को धैर्य देने के आशय से पद सुनाए थे। एक पद में उन्होंने दो रामों को फिर गड़मगड़ड कर दिया; उनका आशय केवल बबेला राजा को यह स्मरण दिलाना था कि उसे अपने नाम-राशि के समान धैर्यवान होना चाहिए—

(राग मेघेन्द्र, झपताल)

मगन रहौ रे दालिद्र हरन, क्यों ना भजै निरंजन,

जाके मन में ज्ञान धरें।

चौदह रतन के कोटन देत दस्तार,

या बात की कौन सरवर करें॥

कहा भयौ जो भये छत्रपति नरेस,

राजा राम कौ प्रसाद पायौ न, विपत-सागर कौन तारौ तरें।

जब भये हातिम-हरिचंद और बलि-करन,

उन्हूँ कौ तीरथ कौउ करें॥

ये राजा राम ऐसी करें, तो सकल ब्रज की मरजाद न टारी टरें।

वीरभान कौ नंदन काटत दुख-फंदन, बिनती करै 'तानसेन' उरें॥

पूरब दिसा तैं पश्चिम हू रिभायवे कौ,

राम दैवे कौ सबन आनंद करें।

इस पद में 'छत्रपति' से आशय अकबर से है। कवि-गायक यह कहना चाहता है कि केवल छत्रपति होना पर्याप्त नहीं है, राजा 'राम' का प्रसाद प्राप्त करना आवश्यक है—वे भले ही तुलसी के हों, या तानसेन के। 'ब्रज' से आशय राज्य के निवासियों से या हितु-मित्रों से है।

8. थरथरात देस-देस

कभी-कभी तानसेन के पदों में भूषण का ओज दिखाई देता है, जो वीर रस का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। राजा राम के सैन्यदल की रण-यात्रा के वर्णन का एक पद इसी प्रकार का है—

(गगिनी देशी टोड़ी)

ए तुम सजि-सजि दल चढ़त जब भूमि पर भार होत,
 थरथरात देस-देस के गढ़पति सुनि आक धरहरात ।
 जाके चढ़े तें खुर रैनु उड़त, गगन छिपि जात,
 खलबल परत सिंह हू पै, बाजत निसान जब सब्द घहरात ॥
 देव-दानव और राव-राना भाज गये,
 सेस पाताल लौं कमठ-पीठ कलमलात ।
 सहस-सहस फनि कटि-कटि चूरि-चूरि भयौ थरहरात ॥
 महाराजन-मनि राजा राम रामचंद्र की सवारी होत,
 अस्वदल, गजदल, पयदल सुनि-सुनि अकवकात धकधकात ।
 ऐसौ सूरौ-पूरौ बासौ वोही दूजौ नाहि
 मेरे जान 'तानसेन' गुनीजन कौं अजाचक कीन्हौ,
 बाकी सूरत-मूरत पर बलि-बलि जात ॥

9. हिंदूपति रामचन्द्र

अकबर के समय में भारत में कुछ हिन्दू राज्य भी थे, उनमें कुछ स्वतंत्र थे तथा कुछ मुगुल-बल के सामने झुक कर मुगुलों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे । राजा राम उस समय के पूर्ण स्वतंत्र और प्रबल राजाओं में से थे । तानसेन ने उनको 'हिंदूपति' कहा है—

(गग पट, ताल धीमा)

तुम राजा राम, कहा जानत काज अरु कान ।
 एक घर गावत, रवि-ससि गावत, मध्य पंचम रे करत बिनान ॥
 एक घर गावत, एक समभावत,
 एक नाचत गति ऐसी सदा रहत बिवान ।
 ससि-बरन राजन-पति, धरा-पति, हिंदूपति,
 'तानसेन' कौं रे अरब-खरब भूषण कै, तो समान को है आन ॥

10. समारोह

राजा रामचन्द्र की किसी विजय के उपलक्ष्य में कोई समारोह आयोजित किया गया था, उसमें तानसेन ने यह पद गाया था—

(गगिनी टोड़ी, चीताला)

प्रथम ही आनंद रच्यौ नीकी घरी महरत पांचौ सब्द बजाये ।
 देस-देस के जाचक जेते आवत ते-ते पावत
 गज-तुरंग-नगदान मुक्ता बरसाये ॥

अष्टौ भरन मध्य नाम जोति, अरिन मारवे कौं बिधि ने बनाये ।
तानसेन जुग-जुग चिरंजीव रहौ, राजाराम तेरौ जस तिहूँ लोक छाये ॥

11. दानी रामचन्द्र

एक पद राजा रामचन्द्र बघेला की दानशीलता और उसके प्रताप का वर्णन करते हुए प्राप्त हुआ है। किसी अन्य ध्रुपदकार ने राजा रामचन्द्र की दानशीलता का वर्णन करते हुए एक पद लिखा है¹—

(राग पूर्वा, चौताला)

दये जौ तुरंग राजा अधिराज ऐमोल अमोल
तिनि कौ भयौ जगमगाट जराउ जीनैं ।
अनेग गज कौं न गिनैं बातिनि पाए ऐरापति सम,
के ऐसे दान दीने कुंज-कुंज दूरि बीनि लीनैं ॥
षट दरसन कौ निवास महांपर्म ग्यानी,
लाखति दीनैं करोरनि दांन सुखकरन ।
राजा राम छत्रपती मौज-दरीया दालिद्र भंजन ॥

इस पद से मुल्ला बदार्युनी के इस कथन की पुष्टि होती है कि राजा रामचन्द्र ने तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं। इसका आशय है—राजाधिराज के दिए हुए अमूल्य तुरंग जड़ाऊ जीनों से जगमगा रहे हैं। पाने-वालों ने बातों-ही-बातों में हाथी पा लिए, जो ऐरावत के समान हैं और जिनकी गणना नहीं हो सकती। षड्दर्शन-निवास परम ज्ञानी (राजा राम) ने करोड़ों दान में दिए। छत्रपति राजा राम 'मौज दरिया' (तंरगायित नद) है और दारिद्र्य का भंजन करने वाला है।

राजा रामचन्द्र की दानशीलता के विषय में किसी ध्रुपद गायक का एक अन्य पद भी मिलता है—

(रागिनी ईमनी बिराजरि, चौताला)

आली री जिमि तुरंग बनाई राखीए
राजाधिराज कौं बिचित्र खदाई री कांम ।
पलकनि कें कर जीन पूछीअत भौहैं मटुकी
लाल डोरे पारे अत ही सुरंग अंजन लीक लगांम ।
खुरीअ कटाछि कहावत आवत मानों,
अलकैं उरझीं ताजन स्यांम ।

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

पैहलें सांट बनाई रीभे राजा राम छत्रपति

तन-मन दीन्हीं इनाम ॥

इस पद का आशय है—हे सखी, जिस प्रकार तुरंग को सज्जित कर के रखा जाता है उसी प्रकार राजाधिराज की विचित्र खुदाई (विधातापन) है। उन अश्वों की पलकों की जीन बनाई है, आँखें अश्व की पूँछ के समान मटकती हैं, उन नेत्रों में लाल डोरे दिखाई देते हैं, अंजन की लीक लगाम है। उस घोड़े की खुरियाँ कटाक्ष के समान दिखाई देती हैं; चाल ऐसी है, जैसे अलकें उलझ गई हों। उस अश्व-स्वरूपा रमणी को चाबुक से दौड़ाने पर छत्रपति राजा रामचंद्र बघेला रीझते हैं और इनाम देते हैं।

अश्व-स्वरूपा सुन्दरी को घोड़े की जीन और लगाम से सज्जित कर दौड़ाने की परिकल्पना तानसेन की कदापि नहीं हो सकती। यह किसी कवित्व-हीन ध्रुपद-कार की रचना है।

12. वसंतोत्सव

राजा रामचंद्र वसंतोत्सव धूमधाम से मनाते थे, यह एक पद से स्पष्ट होता है—

अहो नीकी घरी नीके दिन नीके महूरति

नीके गुनीअनि बसन्त अस्यापी ।

बेल निवारी सौंनजुही दै गुलाल बरन लाल पौहौप

जाई दीनौ री भौर प्रांन प्यारे कौं फुनि पंचम अलापी ॥

बरन-बरन अंबर तैसेई राजत गावत री विद्याधर,

जब स्रवननि मैं व्यापी ।

सकल जाचक तिनि कौं

भाँतिनि भाँतिनि दीनों जत्र रीभे रामचन्द्र राजा प्रतापी ॥

13. लाज के जहाज, सिरताज, गरीब-निबाज

तानसेन का एक एक सुंदर पद राजा रामचन्द्र बघेला की प्रशंसा में प्राप्त हुआ है —

(राग मालकीस, ताल ध्रुपद)

राजन के राजा महाराजाधिराज

चतुर्दस बिद्या राजा राम जोइ जोइ चाहत सोई फल पावत

रच्यो बिधाता नरन कौं यहि काम ।

लाज के जहाज सिरताज गरीब निबाज,

गरीबन के मनसा पूरन होय सब काम ।
असुरन दल-दलन दुखियन के दुख-हरन
'तानसेन' गावै तेरो ही एक नाम ॥

14. पूर्ण-काम का वैराग्य-भाव

तानसेन ने राजा रामचन्द्र की बहुत प्रशंसा की थी । राजा राम भी उन्हें अपना सुहृद मानते थे । जिस प्रकार का संमान गायनाचार्यों को ग्वालियर-पति महाराज मानसिंह तोमर द्वारा प्राप्त होता था वैसे ही तानसेन को कालंजर-पति राजा रामचन्द्र से मिला था ।

तानसेन को राजा राम से पूर्ण आर्थिक समृद्धि प्राप्त हुई थी तथा उसके साथ उन्हें मानसिक शांति भी उपलब्ध हुई थी । वे अपने-आपको सांसारिक दृष्टि से पूर्ण-काम समझने लगे थे । इस मनोदशा में उन्होंने भगवान के प्रति अगाध भक्ति-युक्त कुछ पदों की रचना की थी । तानसेन ने जो प्रसिद्धि अर्जित की थी, वह प्रभु के अनुग्रह के कारण उन्हें मिली थी—

(राग मलार)

द्रगन मेरे जौलों सुख होय, तौलों देखिबौ करौं तिहारो आनन ।

एक पल अंतर, होय अंधियारौ, सूझत न रैन-दिन

बोल न सुहाय काहू कौ आनन ॥

तुम्हारौई ज्ञान-ध्यान, तुम्हारौई स्मरन,

तुम बिन मेरे और कोऊ आन न ।

तानसेन के प्रभु, तिहारी मया तैं, सब कोऊ लागे मोहि जानन ॥

इसके साथ ही तानसेन ने अपने-आपको भी हरि को समर्पित कर दिया—

(राग मूलतानी धनाश्री, चौताला)

जनम यौही गंवायो बावरी, अब गहै न हरि के चरनन ।

हौं जान्यौ प्रिय जोवन थिर रहैगौ, भूलि याहि भरमन ॥

लख चौरासी भटकत-भटकत, सरन-सुमेरु पायौ मानुस धरमन ।

'तानसेन' के प्रभु सुमिरन करिलै, सुद्ध चित्त कर मन ॥

यह पद उस समय लिखा गया था जब तानसेन का यौवन उनका साथ छोड़ चुका था और उन्हें हरि-शरण-रूपी सुमेरु प्राप्त हो गया था ।

कोई आश्चर्य नहीं कि अबुलफजल ने यह लिखा है कि तानसेन अकबरी दरबार में आने के पहले ही सांसारिक प्रपंच से विरक्त हो कर कार्य-मुक्त होने का निर्णय कर चुके थे ।¹

1. अबुलफजल, अकबरनामा, बैबरिज कृत अंगरेजी अनुवाद, भाग 2, पृष्ठ 280 ।

15. बिदाई : इतिहासों में

जब तानसेन की इस प्रकार की मनःस्थिति थी उस समय एक अप्रत्याशित घटना घटी। राजा रामचन्द्र की राजसभा में एक अन्य गायक जैनखाँ था, वह उनकी राजसभा छोड़ कर अकबर के गायकों में संमिलित हो गया। उसने बादशाह अकबर से तानसेन के गायन में निपुणता की प्रशंसा की और यह निवेदन किया कि तानसेन सम्राट की सभा को सुशोभित करने के योग्य है। इस कार्य के लिए अकबर ने अपने एक सेनापति जलालखाँ कुर्ची को तानसेन को लाने के लिए सेना सहित भेजा। फिर क्या हुआ इसका विवरण अकबर के शासकीय इतिहासकार अबुलफजल ने 'अकबरनामा' में प्रस्तुत किया है। उसके द्वारा अकबर के लिए प्रयुक्त लम्बे-चौड़े विशेषणों को छोड़ कर वह विवरण इस प्रकार है¹—

तानसेन उस समय के म्वालियर के कलावंतों में सर्वश्रेष्ठ था। उसकी ख्याति सम्राट के कान तक पहुँची और उन्हें यह सूचना दी गई कि वह अब वैराग्य लेने की सोच रहा है और अभी पन्ना² के राजा रामचन्द्र की सेवा में अपने दिन बिता रहा है। सम्राट ने आदेश दिया कि उसे राजसभा के संगीतकारों में संमिलित किया जाए। इस आज्ञा के लिए बादशाह ने अपने विश्वस्त सेवक जलालखाँ कुर्ची को इस शाही फरमान के साथ राजा के पास भेजा कि वह तानसेन को ले आए। राजा ने शाही फरमान को अंगीकार किया और सम्राट द्वारा राजदूत भेजे जाने के कारण जो संमान किया गया था, उसे भी समझा और उसके साथ प्रसिद्ध हाथियों की समुचित भेंट तथा बहुमूल्य अलंकार बादशाह के लिए भेजे; साथ ही तानसेन को समुचित वाद्य-यंत्रों एवं बहुमूल्य पुरस्कारों के साथ भेज दिया।

यह कथन सरकारी इतिहासकार का है, अशासकीय इतिहासकार मुल्ला बदायूनी ने लिखा है कि राजा रामचन्द्र तानसेन को भेजने के लिए इच्छुक नहीं था, उसे विवश हो कर शाही सेना के भय के कारण भेजना पड़ा।³

16. बिदाई : लोक-इतिहास में

इन दो इतिहासकारों के अतिरिक्त लोक-इतिहासकार ने भी इस मार्मिक घटना के विषय में अपनी कल्पना का उपयोग किया है। इस संबंध में अनुश्रुति नीचे लिखे अनुसार है।

1. पूर्वोक्त।

2. अबुलफजल ने 'पन्ना' भूल से लिख दिया है। रीवा राज्य का गजेटियर लिखने-वाले कैप्टन लुअर्ड ने लिखा है कि फारसी लिपि में 'भट' को 'पन्ना' पढ़ा जा सकता है। इस गजेटियर के हिन्दी अनुबादक जीतनसिंह ने एक पादटिप्पणी दी है जिसमें लिखा है कि 'भट' को पन्ना नहीं पढ़ा जा सकता और कहा है कि संभव है 'भट' प्रदेश में कभी हीरे मिलते हों, इस कारण 'भट' प्रदेश को भी पन्ना लिखा गया है : (रीवा राज्य दर्पण, पृष्ठ 4, पादटिप्पणी।)

3. मुल्ला बदायूनी, पूर्वोक्त, खंड 2, पृष्ठ 345।

इस कथा के अनुसार जब जलालखाँ कुर्ची शाही फरमान और सेना के साथ तानसेन को लेने पहुँचा, तब राजा रामचन्द्र बहुत दुखी हुए और तानसेन के वियोग की आशंका से बालक के समान रो उठे। किसी प्रकार तानसेन ने उन्हें समझाया। जब राजा का मन कुछ स्थिर हुआ, तब उसने तानसेन की विदाई का जलूस निकाला और बहुमूल्य वस्त्र तथा मणि-माणिक्यों से जटित अलंकार भेंट कर तानसेन को एक चौडोल में बैठा कर विदा किया। मार्ग में तानसेन ने पानी पीने के लिए चौडोल रुकवाया और वे उससे उतरे, तब उन्होंने देखा कि स्वयं राजा रामचन्द्र उसके चौडोल की एक बल्ली को कंधा दिए थे; उनके तन पर न वस्त्र था, न पैरों में जूते। यह दृश्य देख कर तानसेन भाव-विह्वल हो कर रोने लगे। राजा ने तानसेन से कहा कि हमारे यहाँ यह रीति है कि जब कोई प्रिय स्वजन मर जाता है, तब उसको कंधा देते हैं; बादशाह ने तुम्हें हमारे लिए मार ही डाला है। कठिनाई से अपना रोना रोक कर तानसेन ने कहा कि आपने मेरे लिए बहुत-कुछ किया है और मेरे कारण आपने अनेक कष्ट भी सहें हैं। मैं आपके इन उपकारों का बदला किसी प्रकार भी नहीं चुका सकता। मैं एक ही वचन देता हूँ कि जिस दाहिने हाथ से आपको जुहार की है, अब उस दाहिने हाथ से मैं दूसरे को जुहार नहीं करूँगा। इस घटना के पश्चात् राजा रामचन्द्र दुखी हृदय से अपनी राजधानी लौट गए और तानसेन ने आगरा का मार्ग अपनाया।

इस कथा में विस्तार के कुछ कथन भले ही वास्तविकता से भिन्न हों, तथापि इसमें एक मधुर सत्य निहित है, जो राजा राम तथा तानसेन के बीच प्रगाढ़ स्नेह को प्रकट करता है।

इस किंवदंती में आगे की जो घटनाएँ बतलाई गई हैं वे यहाँ संबद्ध नहीं हैं।

17. रामचन्द्र की राजसभा में अंतिम गायन

तानसेन का एक ध्रुपद ऐसा प्राप्त हुआ है जो उस समय गाया गया था जब तानसेन ने राजा रामचन्द्र की सभा को छोड़ कर जलालखाँ कुर्ची के साथ आगरा की ओर प्रस्थान किया था¹—

(राग बागेश्री, चौताल)

आज तौ सखी री देखी रामचन्द्र छत्रधारी,

गज की सवारी लिए चले जात बाट हैं।

कित्तै असवार सोहैं, कित्तै सवार जोहैं

कित्तै सोहैं बरकदार अवर कित्तै आनन्द के ठाठ ॥

इस पद में राजा रामचन्द्र के पड़ाव से लौटने का वर्णन है।

1. फ़ात्वाज देलवोआ 'नलिनी' द्वारा प्राप्त।

18. माधव कवि द्वारा अभ्यर्थना

तानसेन के राजा राम की सभा में बिताए गए दिनों का विवरण स्थानीय संस्कृत कवि माधव के 'वीरभानुदयमहाकाव्यम्' के दशम सर्ग के कुछ श्लोकों को उद्धृत कर समाप्त करेंगे¹—

गान्धर्व-विद्यामय-देह-भाजे यस्तानसेन्नाम-कलाविदेऽदात् ।
 रागं प्रतीह प्रति तानमेतत् प्रति ध्रुपत्कोटि शशाङ्क-टङ्कम् ॥26॥
 अष्टौ स यामान् नयति स्म तेन रागादिना तत्समुदीरितेन ।
 वर्षादिकालं गमयन् महीन्द्रः सोऽवागमत्तत्र निमेषमात्रम् ॥27॥
 हाहा-हूहू-तुम्बरु-नारदाद्ये क्वचित्-क्वचित् काचन भाति विद्या ।
 स सर्वभाषा-चतुरः समस्त-विद्या-धरोऽप्यौ विधिना व्यधायि ॥28॥
 भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो न तानसेनैः सदृशो धरण्याम् ।
 तथा प्रसिद्धस्त्रिदिवेऽपि मन्ये नैतादृशः कोप्यनवद्य-विद्यः ॥29॥
 दुर्लङ्घ्यशैलोपरि सिन्धुमध्ये द्वीपान्तरालेऽपि बिले वने च ।
 श्रीराम-चारित्र्य-सुधाभिषिक्तो यस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम् ॥30॥
 तत्रैव तत्रैव वचो विलासा यत्रैव यत्रैव जनाश्चरन्ति ।
 यत्रैव यत्रैव वचांसि नूनं सा तानसेनोक्तिरुदेति तत्र ॥31॥

“भूतिमंत गांधर्व-विद्यामय, तानसेन नामक कलाकार को जो (राजा रामचन्द्र) प्रत्येक राग के लिए और प्रत्येक ध्रुपद के लिए कोटि शशांक-टंका (मुद्रा विशेष) अर्पित किया करते थे तथा उन (तानसेन) के द्वारा प्रयुक्त राग इत्यादि में ही आठों प्रहर उन्हीं के साथ व्यतीत किया करते थे, वे महीन्द्र वर्षा आदि (समस्त ऋतुएँ) वहीं पर (उनके साथ) पल-भर के समान बिता देते थे ।

हाहा, हूहू, तुम्बरु, नारद, आदि में कहीं-कहीं कोई विद्या दिखाई देती है किंतु उन्हें (तानसेन को) तो समस्त भाषाओं में निष्णात और समस्त विद्याओं का निधान ही विधि ने बनाया था ।

तानसेन के समान भूतल पर न कोई हुआ है, न होगा । तथा मेरा अभिमत है कि स्वर्ग में भी इनके समान विद्या में अत्रुट रूप से पारंगत और विख्यात कोई नहीं ।

दुर्लभ पर्वतों पर, समुद्र में, समस्त द्वीप में, कंदराओं में और वन में भी,

श्रीराम-चरितामृत से अभिषिक्त उनके ध्रुपद सब कालों में (अनंत काल तक) जीवित रहेंगे ।

जहाँ-जहाँ जनों का निवास है, वहाँ-वहाँ वाणी के विलास भी हैं और जहाँ-जहाँ वाणी के विलास हैं, (निश्चय ही) वहाँ तानसेन की उक्ति (संगीत) उदीयमान है ।”

माधव कवि ने कुछ अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है । इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि तानसेन बाल-गंधर्व थे । यह ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा रामचन्द्र ने तानसेन का एक ध्रुपद सुन कर एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं । इन्हीं के लिए माधव ने ‘शशांक टंका’ कहा है । यह भी सत्य है कि उस समय राजदरबार से संबंधित सभी व्यक्तियों को लोक भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी तथा अरबी भाषाओं का भी ज्ञान आवश्यक था । तानसेन अपने युग के श्रेष्ठतम कलावंत थे तथा अफगानों और मुगुलों के दरबारों में रहे थे और उन्होंने संगीत-शास्त्र का गहन अध्ययन भी किया था । उन्हें संस्कृत, फारसी तथा कुछ सीमा तक अरबी का ज्ञान उपलब्ध करना आवश्यक था । यह समस्त ज्ञान उनके पदों को पढ़ने से ही ज्ञात होता है ।

जब माधव यह लिखता है कि तानसेन के समान कलाकार न कभी हुआ और न कभी होगा तब वह निश्चय ही अनुचित कथन कर रहा है । स्वयं तानसेन के पदों में बैजू, गोपाललाल तथा बख्शू को अत्यंत आदर के साथ स्मरण किया गया है । भविष्य के विषय में माधव का कथन भारत की भावी पीढ़ियों की प्रतिभा की अवमानना मानी जाएगी । यह सत्य है कि तानसेन अपने समय के मूर्धन्य कलावंत थे ।

जो भी हो, माधव की रचना अत्यंत सुंदर और कवित्वपूर्ण है ।

— आठ —

अकबरी दरबार में

तानसेन राजा रामचन्द्र वषेला की राजसभा से अकबरी दरबार में कब और कैसे आए थे इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसके पहले कि अकबर और तानसेन के परस्पर आश्रयदाता तथा गायक के संबंधों पर विचार किया जाए, अकबर के गुणों और स्वभाव की ओर संक्षिप्त रूप के इंगित करना आवश्यक है। महान विजेता और कुशल प्रशासक के रूप में तथा सब धर्मों के समन्वय से पूर्ण उदार धार्मिक नीति के लिए अकबर विश्व-विख्यात है। अकबर के इन गुणों पर प्रकाश डालने-वाली प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इनके विषय में अनेक समकालीन; परवर्ती तथा आधुनिक युग के ग्रन्थों में बहुत लिखा गया है। यह भी इतिहास-प्रसिद्ध है कि वह विविध कलाओं का समर्थ आश्रयदाता था।

1. कवि-गायक अकबर

अल्प-ज्ञात तथ्य यह है कि वह स्वयं भी कुशल ध्रुपद गायक तथा ध्रुपद के पदों का रचयिता था और यह पद उसने हिंदी में लिखे थे। इन पदों के अतिरिक्त उसके अन्य हिंदी छंद भी प्राप्त हुए हैं। सबसे पहले अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुलफ़ज़ल के कथन से प्रारम्भ करना उचित होगा। उसने लिखा है¹—

“सम्राट की प्रतिभा ने उन्हें हिन्दी तथा फारसी में उत्कृष्ट कविता लिखने के लिए प्रेरित किया था।.....और वह कविताओं की विशेषताओं को परखने की आलोचक की सूक्ष्म दृष्टि रखता था।.....हिन्दी भाषा में भी सम्राट ने उच्च भावनाएँ व्यक्त की थीं जिन्हें अपने प्रकार की श्रेष्ठ रचनाएँ माना जा सकता है।”

अबुलफ़ज़ल ने अकबर द्वारा रचित एक फारसी छंद भी उद्धृत किया है। हिंदी के छंद के एक चरण का भी फारसी में अनुवाद दिया है। उसका मूल रूप क्या होगा यह अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। उसका आशय है : ‘हे अपूर्व सौंदर्यशालिनी, तेरे सौंदर्य का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ?’

2. अकबर की रचनाएँ

अकबर के कुछ हिंदी छंद अनेक पुस्तकों में उपलब्ध हुए हैं। यहाँ हम

1. अबुलफ़ज़ल, ‘अकबरनामा’, भाग 1, पृष्ठ 520।



जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर

जाकी जस है जगत में जगत सराहै जाहि ।
ताकी जीवन सफल है कहत अकबर साहि ॥



बांधवगढ़-पति महाराज रामचन्द्र बघेला

'तानसेन' कहै सुनी साह अकबर,
राजन में राजा राम नंदन-विरहभान ।

शिवसिंह सरोज से प्रारम्भ करते हैं।¹ इसमें दिया गया सबैया नीचे लिखे अनुसार है:—

साह अकब्बर बाल की बाँह अचित गही चलि भीतर भौने,
सुन्दरी द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे को भ्रम पावत गौने।
चौकत-सी सब ओर विलोकत संक सकोच रही मुख भौने,
यों छवि नैन छबीली की छाजत मानौ विछोह परे मृग छौने ॥

इसी छंद को मिश्रबंधु-विनोद में भी उद्धृत किया गया है।

इस सबैया में अलंकार-विधान अत्यंत सुंदर है। नायक द्वारा अपनी बाँह पकड़ लिए जाने पर नायिका भागने का उपाय न देख कर मौन ग्रहण किए हुए इस प्रकार चकित नेत्रों से देखती है मानो हरिण के दो शिशु विछोह में पड़ गए हों।

सरयूप्रसाद अग्रवाल ने काशी नागरी-प्रचारिणी संग्रहालय की किसी हस्त-लिखित प्रति से अकबर का एक सबैया उद्धृत किया है—

सुंदर रूप अनूप तीय भंजन अंग सबै सुचिताई,
कंचन खंभ नगन खरी सब जोवन संग लिये रसनाई।
सीस को अंग करै मोतियन जु लटी कुच तैं लपटाई,
देखि रह्यो बिब साह अकब्बर सिभु कौं पूजन नागिन आई ॥

इन दोनों सबैयाँ से स्पष्ट है कि अकबर भी बख्श द्वारा प्रतिष्ठित शृंगारिक छंद लिखने की परंपरा कुशलता से निबाहे जा रहा था। दूसरा सबैया भैरवी रागिनी के ध्यान का स्मरण दिलाता है।

रामचन्द्र शुक्ल ने भी कृष्ण और उसकी नायिका की प्रेमकेल के वर्णन-युक्त अकबर-रचित एक सुंदर सबैया प्रस्तुत किया है—

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहि,
आहत तैं अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहि।
त्यौं बलि वेनी सुधारि धरी सुभई छवि यों ललना अरु लालहि,
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहि ॥

वास्तव में शुक्ल जी ने बहुत सुंदर सबैया छाँटा है। चौथे चरण में नायिका की छवि के विषय में लिखा गया है कि वह ऐसी ज्ञात हुई मानो कामदेव ने चम्पक-पुष्प-धनुष पर सर्प-रूपी बाण चढ़ाए हों, अर्थात् नायिका के शरीर के रंग की उपमा चम्पक पुष्प के समान कामदेव के धनुष से दी गई है

1. शिवसिंह सँगर, शिवसिंह सरोज, पृष्ठ 1।

और वेणी की उपमा सर्प से दी गई है। यह छंद हिंदी के किसी भी मध्ययुगीन कवि की रचना से टक्कर ले सकता है।

जीवन की सफलता का रहस्य बतलाने वाले, अकबर द्वारा रचित एक दोहे को भी उद्धृत किया गया है¹ —

जाकौ जस है जगत में जगत सराहै जाहि ।

ताकौ जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि ॥

यहाँ मुख्यतः ध्रुपद-गायक तथा पद-रचयिता अकबर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके लिए 'संगीतरागकल्पद्रुम' को देखना होगा। उसमें अकबर द्वारा रचित एक ध्रुपद दिया गया है²—

बदन ढाँप पौढी लीलापट पहेरे, सीस रहो है, प्यारी ।

जब ही घूँघट पर न्यारो करत पिय मानो जीत लजारी ॥

आ रस प्यारी पहेरे पीतम परम विचित्र महारी ।

साह अकब्बर निहोर करत तिय तें, उठ चल हँस बोल हौं बारी ॥

3. अकबर की संगीतज्ञता : अन्य ध्रुपदकारों की दृष्टि में

अकबर की संगीतज्ञता के विषय में अन्य ध्रुपदकारों ने भी अनेक पद लिखे हैं। उन ध्रुपदों में उनके रचयिता अपनी मुद्रा नहीं छोड़ गए हैं। अतएव यह कह सकना कठिन है कि उन्हें किसने लिखा है। निश्चय ही वे अकबर की संगीत-शाला के सदस्य थे, भले ही वे अबुलफ़जल द्वारा दी गई छत्तीसी में परिगणित न हों।

एक ध्रुपदकार ने अकबर के विषय में लिखा है कि उनकी बुद्धि के आगे और किसी की बुद्धि नहीं दिखाई देती। मेरी एक ही जिह्वा है, उससे उनकी स्तुति संभव नहीं। सम्राट निराले ढंग से संगीतरत्नाकर के भेद समझाते हैं। ऐसे शाह अकबर चिरंजीवी रहें³—

(राग खट-चौताला)

मंदिर तुमकों नवल मुबारक होय,

कोटि बरस लौं कीजै राज महाराज ।

नाना प्रकारनि सौं वे जौ मनाई इम्रत रस रंग छायाँ,

काइमदाइन तोलों चंद्रधरन अरु ब्रह्मांड ताज ।

जिनकी मति आगें और की न देखौं अस्तुति के केंस करौं,

एक रसना मेरें संगीतरतनागर के भेद पढ़त न्यारे साज ।

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत-वंस्क्रुति, कवि तानसेन, पृष्ठ 150 ।

2. कृष्णानन्द देव व्यास, संगीतरागकल्पद्रुम, भाग 1, पृष्ठ 375 ।

3. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

साहि अकबर प्यारी चिरंजीव रहौ चरजेवी इंद्रसम,
तोहि देंहों ने बरसत चत्रमास तुम द्वादस भर लायौ नै विनि के
गुनी ग्रंथप निस्तारन तारन विधनां रचि पचि कै समाज ॥

ज्ञात यह होता है कि यह पद सन् 1569 के पश्चात् सीकरी में बने नवीन शाही इबादतखाने में सुनाया गया था। उसी 'मंदिर' की मुबारकवादी देते हुए अकबर की संगीतज्ञता का वर्णन किया गया है।

एक अन्य पद में किसी ध्रुपदकार ने कहा है कि शाह जलालुद्दीन सात अध्यायों अथवा सप्ताध्यायी संगीतरत्नाकर के मर्म का ज्ञान गुणियों को देता है, और वह संगीत के सभी रहस्यों का ज्ञाता है¹—

(राग सुध मलार, चौताला)

तार काल की लै जानत अकबर गुन कौ है री निधान ।
जे गुन रूप प्रकालन ते तुम सब जानत हौ
राग उदै की जा छबि चितई ऐते पर सुरगुरु सुलितांन ॥
रागधाइ सुर धाई औड़व षाड़व,
संपूरन गुनी गंद्रप तिति के करत बिनान ।

सप्तधाइ संगीत कौ साह जलाल लाल री,
समाइ जब वैठि गुनीअनि देत विद्या दांन ॥

एक अन्य पद में तो किसी ध्रुपदकार ने अकबर को संगीत में जगत-गुरु कह दिया है¹—

(रागिनी गोरी, चौताला)

परगट करि विद्या तूहीं भरि पूरन कांम कोटि
जांनी सुचित जुगति बुधि जु भली ।
साहि अकबर जगतगुरु जलालदीन उक्ति जामैं,
बिनान करत राग रंग महांबली ॥

एक अन्य ध्रुपदकार ने अकबर को न केवल ध्रुपद गायन ही, बरन् ताल और नृत्य का भी विशेषज्ञ लिखा है¹—

(राग दरबारी कान्हरा, चौताला)

सुरपत हू कै वाही साहि तिहारे से गुनी गुन पूरौ,
संगीत मत सरस सप्तधाइ के ब्यौरे न्यारे न्यारे करि दिखावत है ।
करतार ताकिटि किटि ताकिट किटि
सुर बोध प म ग रे सा बाजे,

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

धिधिलाग धिलाग धुमकिटि तक थुना तकट थेई थेई ते,
 प्रबंद वद करें संकीरन सप्त राग,
 बिबेध बिबेध करि कै वर साहि तुम ही आवत है ।
 देव गुनी गंद्रप ते सब मोहि रहे सो देखत सुनत,
 तेरी सभा ऐसौ को गुनी जाकौ धीरज न आवत ।
 गावत बजावत गुरनि गुरु जलालदीं महंमद,
 ऐसे जाके चहू दरसन संतोष पावत ॥

इस पद में ध्रुपदकार का 'संगीत मत सरस सप्तधाई' से आशय शाङ्गदेव के संगीतरत्नाकर से है, कुछ शब्द मृदंग की ध्वनि के हैं और 'थेई थेई' नृत्य के बोल हैं ।

एक अन्य ध्रुपदकार ने अकबर को जगत-गुरु के साथ-साथ दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करने की क्षमतायुक्त बतलाया है ।

अन्य ध्रुपदकारों के इस विषय में अधिक पद देना अनावश्यक है । स्वयं तानसेन ने अकबर के संगीत शास्त्र के ज्ञान के विषय में एक पद लिखा है जिससे यह प्रकट होता है कि अकबर इतना मर्मज्ञ था कि उसे रिझाना तानसेन को भी कठिन था¹—

(राग भैरव, एकताल)

गुन समुद्र कलपतरु अकबर करतार हो बजावै
 अकट-विकट-निपट-विकट भेदन ही उपजावै ।
 लोलक लोलनि ताननि भीजि सु आई गनि न आवै
 अरि धरनि थर-थर काँपत व्याल भौंचक नचावै ॥
 सम असीत अनादक भेदनि गुनियनि समुझावै
 गोर अपारनि आगर अदरी-विरहन मन मनावै ।
 साहि जलाल रसाल है सागर कोऊ अंत न पावै
 ऐसौ तो गुरु साहि ताहि तानसेन क्यों रिझावै ॥

ऐसे थे सम्राट अकबर, जिनकी राजसभा में तानसेन पहुँचे थे । उन्हें अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए अपनी पद-रचना-शैली और ध्रुपद गायन की श्रेष्ठता सिद्ध करना थी, और उन्होंने उसे सफलतापूर्वक किया भी । जैसा आगे के विवरण से ज्ञात होगा, तानसेन कवि के रूप में अकबर तो क्या, अपने युग के समस्त पद-रचयिताओं में श्रेष्ठ थे और गायक तथा संगीत-शास्त्री के रूप में

1. फास्वाचा देलबोआ 'कलिली' द्वारा प्रदत्त ।

उन्होंने जो प्रतिमान स्थापित किए हैं, उन्हें आगे के विवरणों से ही जाना जा सकेगा।

4. अकबरी दरबार के संगीतज्ञ

जिस समय तानसेन ने अकबर की संगीत-मंडली में प्रवेश किया उस समय के अकबरी दरबार के संगीतकारों के विषय में अबुलफ़जल ने लिखा है—

“सम्राट संगीत के प्रति बहुत अधिक ध्यान देते थे। उनके दरबार में हिंदू, ईरानी, तूरानी, कश्मीरी, स्त्री और पुरुष गायक थे। समस्त दरबारी गायकों को सात विभागों में बांटा गया था और सप्ताह के प्रत्येक दिन उनमें से एक विभाग दरबार में गायन प्रस्तुत करता था। जब सम्राट आदेश देते थे तब ये गायक विमुग्धकारी रूप में संगीत प्रस्तुत करते थे।”¹

तानसेन के अकबरी दरबार में प्रवेश करने के विषय में अबुलफ़जल ने लिखा है—“इसी वर्ष (1562 ई०) तानसेन सम्राट के समक्ष उपस्थित हुए.....क्योंकि तानसेन विनम्र और सरल स्वभाव के थे, अतएव सम्राट ने उन्हें संगीत विभाग का प्रधान बना दिया।” अबुलफ़जल ने यह भी लिखा है कि तानसेन उस समय के ग्वालियर के कलावंतों में सर्वश्रेष्ठ थे।²

हमारे मत में वास्तविकता यह है कि तानसेन का अकबरी दरबार में प्रवेश भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र की एक ऐतिहासिक घटना है।

5. कुछ किंवदंतियाँ

तानसेन के अकबरी दरबार में प्रवेश के समय की घटना के संबंध में कुछ किंवदंतियाँ भी हैं। वे मनोरंजक अवश्य हैं तथापि समकालीन इतिहासकारों द्वारा प्राप्त तथ्यों के नितांत विपरीत होने के कारण उन्हें यहाँ देना उचित नहीं है। उनके एक नमूने का उल्लेख पर्याप्त है। इसके अनुसार अकबरी दरबार में आने के उपरांत एक वर्ष तक, राजा रामचन्द्र को छोड़ने के शोक के कारण, तानसेन ने गाने से मना कर दिया। अकबर ने अपनी एक युवा पुत्री को उन्हें रिझाने का कार्य सौंपा। वह सफल हुई। तानसेन ने न केवल गायन प्रारंभ किया, उन्होंने मुसलमान बन कर शाहजादी से विवाह भी कर लिया। इस कथन को केवल इस कारण त्याज्य माना जाना चाहिए कि 20 वर्ष के बादशाह के ‘युवा’ पुत्री कहाँ से आ गई? संभव है उसके कोई दूध-पीती बच्ची हो।

6. दरबार में प्रथम गायन

तानसेन अकबर की राजसभा में तब आए थे जब सम्राट मात्र 20 वर्ष

1. अबुलफ़जल, आईन-ए-अकबरी, वैवरिज कृत अनुवाद, पृ० 681।

2. अबुलफ़जल, अकबरनामा, भाग 2, पृ० 279-280।

का युवक था और तानसेन प्रौढ़ावस्था पार कर चुके थे। उनके गायन से सम्राट का प्रभावित होना अनिवार्य था।

दरबार में प्रथम बार उपस्थित हो कर तानसेन ने कौन-सा पद सुनाया था इसका भी विनिश्चयन उसके उपलब्ध पदों से किया जा सकता है। संभव है कि उस समय यह पद गाया हो—

(रागिनी भैरवी, तिताला)

तखत बैठौ महाबली ईश्वर होय अवतार।

देस-देस के सेवा करत हैं, बकसत कंचन-थार ॥

जोई आवत, सोई फल पावत, मन इच्छा पूरन आधार।

‘तानसेन’ कहै साह जलालदीन अकबर

गुनी जनन के काज करन कौं कियौ करतार ॥

इतिहासकार अबुलफ़जल लिखता है कि बादशाह ने यह पद सुन कर तानसेन की आशा की झोली में धन के उपहार उड़ेल दिए, परन्तु एक अन्य इतिहासकार कहता है कि अकबर ने इस अवसर पर दो करोड़ दाम (ताँबे के सिक्के जिनका मूल्य दो लाख रुपये था) उपहार में दिए थे।¹ इकबालनामा जहाँगीरी में उल्लेख है कि इसके पश्चात सम्राट अकबर तानसेन को प्रतिदिन किसी-न-किसी रूप में धन अथवा अन्य वस्तुएँ उपहार में देता था।

यह ‘महाबली’ संबोधन भी विचारणीय है। इसी वर्ष अकबर ने बिहारीमल की राजकुमारी से विवाह किया था। यह राजपूत कुमारी तथा उसके राजपूत संबंधी सम्राट को ‘महाबली’ के नाम से ही संबोधित करते थे। तानसेन ने भी उसी संबोधन का इस पद में प्रयोग किया है। अकबर को ‘ईश्वर होय अवतार’ कहना भी अद्भुत है। इस्लाम में अवतार नहीं माने गए हैं। तानसेन निर्भीक थे, यह तो ज्ञात है; फिर भी उनको अपने हिन्दू विचारों को प्रस्तुत करने का साहस अकबरी दरबार में आए नवीन राजपूत राजाओं के कारण ही हुआ होगा, उन्हीं के कारण अकबर ने उसे सहन कर लिया होगा। यह स्मरणीय है कि उस समय तक अकबर इस्लाम का कट्टर अनुयायी था और उस पर मुल्लाओं की पूरी पकड़ थी।

तानसेन अकबरी दरबार में लगभग 27 वर्ष रहे। यह कहा जा सकता है कि उनका समस्त चौथापन सम्राट की सभा के रत्न के रूप में बीता। जैसा पहले लिखा जा चुका है, सम्राट ने अपना समस्त संगीत विभाग तानसेन को उनके प्रथम गायन के उपरांत ही सौंप दिया था।

1. इकबालनामा जहाँगीरी, अकबरनामा, बैवरिज कृत अनुवाद के पृष्ठ 280 की पाद-टिप्पणी 4 में उद्धृत।

7. अकबर की छत्तीसी

अबुलफ़जल ने अकबरी दरबार के छत्तीस प्रमुख संगीतज्ञों का विवरण दिया है और लिखा है,¹ “इन संगीतज्ञों के वर्गों का विस्तृत विवरण लिखना कठिन होगा, परन्तु मैं प्रधान संगीतज्ञों का उल्लेख करूँगा।”

इसके आगे कुछ नाम दिए गए हैं—

- (1) मियाँ तानसेन, ग्वालियर निवासी, जिसके समान अन्य कोई गायक भारत में पिछले एक हजार वर्ष से नहीं हुआ।
- (2) बाबा रामदास, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (3) सुभानखाँ, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (4) श्रीज्ञानखाँ, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (5) मियाँ चाँद, ग्वालियर निवासी, तानसेन का शिष्य, गायक।
- (6) विचित्रखाँ, ग्वालियर निवासी, सुभानखाँ का भाई, गायक।
- (7) मोहम्मदखाँ ढाड़ी, गायक।
- (8) वीरमण्डलखाँ, ग्वालियर निवासी, सुरमण्डल-वादक।
- (9) बाज बहादुर, मालवा का शासक, जो अद्वितीय गायक है।
- (10) शिहाबखाँ, ग्वालियर निवासी, वीणा-वादक।
- (11) दाऊद ढाड़ी, गायक।
- (12) सरोदखाँ, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (13) मियाँ लाल, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (14) नतारंगखाँ, ग्वालियर निवासी, मियाँ तानसेन का पुत्र, गायक।
- (15) मुल्ला इश्शाक ढाड़ी, गायक।
- (16) उस्ता दोस्त, मशहद निवासी, बाँसुरी-वादक।
- (17) नायक चर्चू, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (18) प्रवीणखाँ, ग्वालियर निवासी, वीणा-वादक।
- (19) सूरदास, ग्वालियर निवासी (बाबा रामदास का पुत्र), गायक।
- (20) चाँदखाँ, ग्वालियर निवासी, गायक।
- (21) रंगसेन, आगरा निवासी, गायक।
- (22) शेख दावन (ढाड़ी) करना बाद्य-वादक।
- (23) रहमतुल्ला, मुल्ला इश्शाक का भाई, गायक।
- (24) मीर सैयद अली, मशहद निवासी, धीचक-वादक।
- (25) उस्ता यूसुफ, हिरात निवासी, तम्बूरा-वादक।
- (26) कासिम, उपनाम कोहबर, उसने एक बाद्य-यंत्र का आविष्कार किया है जो कुबुज और रबाब के बीच का है।

1. अबुलफ़जल, आईने-अकबरी, ब्लौचमैन का अनुवाद, पृष्ठ 680-682।

- (27) ताशवेग, किपचाक निवासी, कुबुज-वादक ।
- (28) सुल्तान हाफिज हुसैन, मशहद निवासी, गायक ।
- (29) बहराम कुली, हिरात निवासी, धीचक-वादक ।
- (30) सुल्तान हाशिम, मशहद निवासी, तम्बूरा-वादक ।
- (31) उस्ता शाहमुहम्मद, सरना-वादक ।
- (32) उस्ता मुहम्मद अमीन, तम्बूरा-वादक ।
- (33) हाफिज ख्वाजा अली, मशहद निवासी, गायक ।
- (34) मीर अब्दुल्ला, कानून वादक ।
- (35) पीरजादा, खुरासान के मीर दवाम का भतीजा, गायक ।
- (36) उस्ता मुहम्मद हुसैन, तम्बूरा-वादक ।

इस छत्तीसी में तानसेन के अतिरिक्त 14 गायक और हैं, जो ग्वालियर के राजा मानसिंह की संगीत की टकसाल के हैं। इन सबके आगे 'ग्वालियर निवासी' लिखा गया है।

इनमें आगरा के एकमात्र गायक 'रंगसेन' को जोड़ना आवश्यक है। वह भी ग्वालियरी टकसाल का सिक्का है।

इन नामों में से संमानसूचक शब्द 'मियाँ' और 'खाँ' हटा कर देखने से वस्तु-स्थिति स्पष्ट हो जाती है। ये दोनों ही शब्द किसी भी जाति के व्यक्ति को 'उपाधि' के रूप में पंद्रहवीं शताब्दी में कश्मीर के सुल्तान, जैनुल-आबेदीन के समय से उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक प्रयोग किए जाते रहे हैं। फिर कुछ 'वीरमण्डल' और 'सरोद' को व्यक्ति-नाम मानना संभव नहीं होगा, उनके व्यक्तिगत नाम कुछ और होंगे; उन वाद्यों के वादन में निपुण होने के कारण उनका यह तखल्लुस या उपनाम हो गया और उनमें जुड़ गया 'खाँ'। तानसेन और तानतरंग के नामकरण का कारण पहले बतलाया जा चुका है, ऐसा ही कोई कारण 'रंगसेन' के नाम का होगा। नायक चर्चू के मूल नाम का पता लगाना संभव नहीं है। 'श्रीज्ञान' तथा 'प्रवीण' व्यक्ति-नाम हैं।

तानसेन के संदर्भ में इन सब 'ग्वालियर-निवासियों' पर विस्तार से विचार करना संभव नहीं है, केवल तानसेन के पुत्र और उनके शिष्यों की खोज आवश्यक है। ऊपर की सूची में तानतरंग को तानसेन का पुत्र कहा गया है। तानसेन के अन्य दो पुत्रों का विवरण आगे दिया गया है। मियाँ चाँद, चाँद तथा उसका भाई सूरज, तानसेन के शिष्य थे। 'रंगसेन' को 'रंगखाँ' भी लिखा गया है, वह भी तानसेन का शिष्य था। एक शिष्य बख्तखाँ भी था।¹

इस प्रकार तानसेन अपने तीन पुत्र तथा पाँच शिष्यों सहित अकबरी दरबार

1. द्विवेदी, मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ 137।

में प्रतिष्ठित थे। पुरुषों में केवल तानतरंग ही छत्तीसी में है, शिष्यों में केवल मियाँ चाँद को उसमें स्थान मिला है।

इन तथ्यों से यह प्रकट होता है कि अकबरी दरबार के संगीत विभाग में तानसेन का बोलबाला था। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि तानसेन की वय उस समय बहुत अधिक थी; नकि तीस वर्ष, जैसा विन्सेंट स्मिथ ने लिखा है और कुछ भारतीय इतिहासकारों ने उसे मान लिया है। इस विषय पर आगे विस्तार से विचार होगा।

8. अकबर की राजसभा के नवरत्न

नौ ग्रहों के अनुसार नौ प्रकार के रत्नों का भारत में प्राचीन काल से विशेष महत्व रहा है। प्रख्यात सम्राटों द्वारा अपनी राजसभा में अपने-अपने गुणों में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को नवरत्न के रूप में गूँथने की प्रथा कम-से-कम दो हजार वर्ष पुरानी है। उज्जयिनी के विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्न प्रख्यात हैं।

सम्राट अकबर की महत्वाकांक्षा भी प्रख्यात है। उसने भी अपने समय के अपनी-अपनी दिशा में श्रेष्ठतम व्यक्तियों को नवरत्नों के रूप में सँजोया था। उनकी राजसभा में ये नवरत्न निम्नलिखित थे:—

(1) राजा बीरबल, (2) राजा मानसिंह कछवाहा, (3) राजा टोडरमल, (4) हकीम हुमाम, (5) मुल्ला दो-प्याजा, (6) मलिकुशरा फँजी, (7) अबुलफजल, (8) अब्दुल रहीम खानखाना।

इस नवरत्न-मणि-माला के नवम, अर्थात् सुमेरु, संगीत-सम्राट तानसेन थे।

9. अकबर और गोपाचल

अकबर के दरबार में पहुँच कर भी तानसेन अपने प्रिय गोपाचल को भूले नहीं थे। वे प्रशंसा करने लगे अकबर की और पहुँच गए गढ़ गोपाचल पर¹—

(राग दरबारी कान्हरा, चौताल)

धनि-धनि धरनी धरें साहि अकबर

जाकी जगत में चली घुआई उदयाचल-अस्ताचल।

धनि-धनि तुअ रसनौ तुम करतार

राज-साज दीयौ है तखत-बखत अटल ॥

नर-नरिंद जाकी सेवा करत जेऊ

भरे ते तजि गए हैं माल।

‘तानसेन’ को प्रभु राजत सदा

दिनमनि मध-मंडिल गढ़ गोपाचल ॥

1. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से।

गगन-मंडल के मध्य जिस प्रकार सूर्य तेजोमय है, वैसा ही है सुशोभित धरती पर तानसेन का 'प्रभु' गढ़ गोपाचल ।

10. मंगल-कामना

तानसेन ने अकबर की मंगल-कामना एक ठेठ बुंदेलखंडी उक्ति से प्रारंभ की है—

(राग मारवा, जलद ताल)

अन्हात जिनि बार खसै, सोहत वर्न बार लों होये तुमको
दोस्त दुसमन पायमाल ।

इतनोई मांगत करता तुम पर जाउ क्रस्न जंजाल ॥

दीरघ आर्वल भूअ लौवै है चक्रवै चकता सबही को प्रतिपाल ।

'तानसेन' असीस देत चिरंजीवी रहौ छत्रपति साहि जलाल ॥

'अन्हात जिनि खसै बार' इन शब्दों का प्रयोग महाकवि सूरदास ने माता यशोदा द्वारा कृष्ण के लिए किया है । तानसेन ने अपने गुरु-बंधु के ये शब्द अकबर के लिए प्रयोग कर दिए और कृष्ण से यह मांगा कि विघाता अकबर को उन जंजालों से दूर रखे जो कृष्ण को भुगतने पड़े थे ।

11. सम्राट का प्रताप

अकबर के जीवन का पर्याप्त भाग युद्धों में बीता था । हुमायूँ द्वारा प्रशासित प्रदेश भी उसे नहीं मिले थे । उसने स्वयं युद्ध-भूमि में जा कर अथवा अपने सेना-पतियों को भेज कर बहुत बड़ा साम्राज्य निर्मित कर लिया था । तानसेन ने अकबर की विजयों के वर्णन में अनेक पद लिखे हैं । उनमें से एक पद में यथार्थ वर्णन दिया गया है—

(राग विहाग, चौताला)

कासी, कास्मीर, कामरू, करनाटक, बूंदी, बुंदेलखंड ।

मालवा, मुल्तान, मेवाड़, खुरासान, बलख, बुखार, गोकुलमंड ॥

बीजापुर, बंग, बदखसान, रूम, स्याम भरत सम दंड ।

कहत 'तानसेन' सुनौ हुमायूँ के नंदन जलालदीन अकबर

जाके डर डरात ब्रह्मंड ॥

इन सब विजयों का विवरण लिखने के लिए अकबर का लगभग पूरा राज-नैतिक इतिहास लिखना होगा । तथापि यह कहना आवश्यक है कि मेवाड़ के राणा प्रताप को अकबर अपने जीवन-काल में कभी अपने अधीन न कर सका और बुंदेल-खंड के महाराज मधुकरशाह जब तक जीवित रहे, मुगुलों से लोहा लेते रहे ।

अकबर के प्रबल प्रताप का वर्णन करते हुए बादशाही सेना की अजेयता के संबंध में भी तानसेन ने लिखा है—

(श्रीराय, तिताला)

ए आयौ, आयौ के बलवंत साह, आयौ छत्रपति अकबर ।
सप्त द्वीप और अष्ट दिसा नर नरेन्द्र, घर-घर थर-थर डर ॥
निसि-दिन कर एक छिन पावै, बरन न पावै लंका नगर ।
जहाँ-तहाँ जीतत फिरत सुनियत है, जलालदीन मुहम्मद
कौ लस्कर ॥

साह हुमायूँ कौ नंदन, चंदन, एक तेग जोधा तकवर ।
'तानसेन' को निहाल कीजै, दीजै कोटिन जर जरी नजर कमर ॥

12. विजेता का स्वागत

अकबर ने अनेक प्रदेशों को जीता था । कुछ युद्धों में उसने स्वयं भाग लिया था और विजयश्री प्राप्त की थी, कुछ में उसने अपने सेनापतियों को भेजा था ।

सबसे महत्वपूर्ण विजय गुजरात की थी । सन् 1587 के अभियान में तानसेन भी अकबर के साथ गुजरात गए थे । तानसेन का प्रमुख ध्येय अपने गुरु बख्श की समाधि के दर्शन करना था । इस संबंध में तानसेन का एक पद भी मिला है जिसमें बख्श की समाधि का उल्लेख है ।

तथापि गुजरात में तानसेन को एक घटना ने मानसिक संताप भी दिया था । जब शाही सेना अहमदाबाद के पास साबरमती के तीर पर पड़ाव डाले हुई थी, तब अकबर को तानसेन के परम श्रद्धेय बँजू की दो पुत्रियों के रूप तथा गायन की निपुणता की सूचना प्राप्त हुई । अकबर ने इन रूपसियों को बुलाया और उनसे गाना सुनाने का आग्रह किया । उन कन्याओं ने विवश हो कर गायन किया । अकबर और तानसेन उसे सुन कर विमुग्ध हो गए ।

अब अकबर की प्रबल इच्छा हुई कि उन किशोरियों को सीकरी राजधानी ले जाया जाए । तानसेन को उन्हें मनाने का काम सौंपा गया । उसके पश्चात् तानसेन को ज्ञात हुआ कि वे महामना बँजू की पुत्रियाँ हैं और उनके नाम भी बँजू ने संगीतपरक रखे थे—तोम और ताना । तोम और ताना ने विपत्ति को समझा और तानसेन के द्वारा अकबर को संदेश भिजवाया कि वे दो दिन पश्चात् आ जाएँगी । जब वह दिन आया तब डोले मुगुल पड़ाव पहुँचे, परंतु उनमें से उतरा कोई नहीं । तानसेन ने जब उन डोलों के पदों उठा कर देखे, तब उनमें दोनों बहनों के शव प्राप्त हुए और कटारों उनके गले में घुसी हुई दिखीं । तानसेन को मानसिक झटके के लिए यह दृश्य भयावह रूप से पर्याप्त था ।

फिर एक और दुर्घटना हुई । अहमदाबाद के नागर ब्राह्मणों को जब बँजू की पुत्रियों द्वारा की गई आत्महत्या का समाचार ज्ञात हुआ तब वे मुगुल सेना पर टूट पड़े । शाही सेना का सामना वे क्या कर सकते थे—सैकड़ों मारे गए ।

तोम और तान की छतरियाँ अभी भी अहमदाबाद के पास बडनगर के के श्मशान में साबरमती के किनारे टूटी-फूटी दशा में पड़ी हैं।

कहा जाता है कि तानसेन ने इस दृश्य से व्याकुल हो कर तराना का गायन प्रारंभ किया जिसमें तोम-तानाना जैसे शब्द होते हैं। यह सब होते हुए भी तानसेन को मन मार कर सम्राट के साथ रहना पड़ा।

इस घटना से अकबर को भी कम अनुताप नहीं हुआ था। इस घटना के बाद ही उसने आत्म-शांति की उपलब्धि के लिए अनेक जियारतें तथा तीर्थ-यात्राएँ की थीं।

जब अकबर सेनापति के समान पोशाक और हथियार पहने दक्षिण की छोटी बर्छी लिए सेना के आगे चल रहा था, अनेक अमीर-उमराव अनेक कोस आगे स्वागत के लिए पहुँचे। कविराज फैजी ने भी उस समय एक बधाई की गजल सुनाई, जिसका आशय है—खुशदिली की प्रातःकालीन वायु फतहपुर से आ रही है, क्योंकि मेरा बादशाह दूर के रास्ते से आ रहा है।

उस समय सीकरी में, जो अब फतहपुर (सीकरी) हो गई, अनेक उत्सव हुए। ऐसे ही एक समारोह में तानसेन ने गाया—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

सब समूह कारि हितू नर-नारी हरषित लै,
चले करन लाड़िले के मंगन की।

सहनाई कर लियें और टंकोरन,
बीन रवाव-नगारेन की, भांभ भनकारन की ॥

वाजत ए धूमधाम, घावत याके अनेक दल,
गजदल पगदल अश्वदल संगन की।

‘तानसेन’ सब नगर नर नारी प्रफुल्लित भए,
गुनीजन गावत छिरकत अतर गुलाब, सुवास आवत सुगंधन की ॥
यह स्वागत-समारोह वास्तव में बहुत भव्य हुआ होगा। ऐसे ही किसी अन्य समारोह में तानसेन का गायन हुआ—

(राग कान्हरा, चौताला)

अकबर आयौ री आली सवन सुनत यौं,
बाजी नौबत, बहु बाजे तान।

असुर-संहारन अपबली, तपन कौं जो मान्यौ,
विधना रच्यौ जैसे इंद्र के समान ॥

कई जंग जोधा जीते आये गिरवर सुमेर,
मन मेरे भाये अपबली तपवान।

कहैं 'मियाँ तानसेन' तेरो राज जौलों गंग-जमुन पवन-पानी,
कल्पवृच्छ, कीजै मेरी छाँह अकबर सुजान ॥

ऐसे अनेक उत्सव हुए होंगे। तानसेन को कल्पवृक्ष-अकबर ने क्या दिया, यह ज्ञात नहीं है; इतिहास कहता है कि प्रतिदिन वह कुछ-न-कुछ तानसेन को देता अवश्य था। गंगा-जमुना के जल-प्रवाह रहने तक अकबर का राज्य तो न रहा, तथापि उसकी कीर्ति अवश्य अमर हो गई।

13. शाहजादा का जन्मोत्सव

तानसेन का एक और पद है। संभावना यह है कि वह शाहजादा सलीम के जन्म के अवसर पर गाया गया था—

(रागिनी गुजरी, चौताला)

एरी आली ! आज सुभ दिन गावहु मंगलचार ।
चौक पुरावौ, मृदंग बजावौ रिझावौ, बघावौ, बाँधौ बंदनवार ॥
गुनी-गंधर्व-अप्सरा-किन्नर, बीन-रवाव बजै करतार ।

धन घरी, धन पल-महूरत, 'तानसेन' प्रभु पर बलिहार ॥

यदि तानसेन के समस्त पद मिल जाते तब उसके सभी आश्रयदाताओं का विस्तृत इतिहास भी ज्ञात हो सकता।

14. एक अति-विशिष्ट अतिथि

अकबर बहुधा अपने नवरत्नों तथा उमरावों के घर जाया करता था। जिनके निवास पर बादशाह जाता था वह घर को खूब सजाता; मखमल, जरबप्रत-कमखाव का पायदान बिछाता; बादशाह की सवारी आने पर सोने-चाँदी के फूल बरसाता; थाल-के-थाल मोती निछावर करता; सवा लाख रुपये नीचे रख कर चबूतरा बनाता, जिसके ऊपर बादशाह के बैठने के लिए गद्दी तयार की जाती; लाल-जवाहर, शाल-दुशाला, मखमल-जरबप्रत, कीमती हथियार, दासियाँ और दास, एक-से-एक अच्छे हाथी-घोड़े आदि लाखों रुपयों की भेंट बादशाह के समक्ष उपस्थित करता। बादशाह के लिए दावतें होतीं। इसी प्रकार मुक्तहस्त से तयारी की जाती। बादशाह एक बार बीरबल के घर भी गए थे, उस समय बीरबल ने यह सब आडंबर नहीं किया था। फिर भी बीरबल की वाग्विदग्धता से बादशाह पूर्ण संतुष्ट हुआ था।

बादशाह अकबर तानसेन के घर भी गए थे। निश्चय ही तानसेन ने भी बीरबल के समान कोई आडंबर नहीं किया होगा, उन्होंने उसे केवल दो-एक पद सुना कर संतुष्ट कर दिया—

(रागिनी मुस्तानी धनाभी, चौताला)

ए आयौ, आयौ मेरे गृह छत्रपति अकबर, मन भायौ करम जगायौ ।

पाछिलौ पुन मेरौ प्रगट भयौ, याते अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष,
 मन चाहौ चारौ फल पायौ ॥
 काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखें,
 पाप तजि धर्मराज अचल कर पढ़ायौ ।
 'तानसेन' कहै यह सुनो छत्रपति अकबर,
 जीवन जनम सुफल कर पायौ ॥

15. सूर्योपासना

यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि अकबर सूर्योपासना करने लगा था और प्रातः-काल उठ कर विधिवत् सूर्य-सहस्रनाम का पाठ करता था । सम्राट के लिए जैन विद्वान भानुचंद्र उपाध्याय ने 'सूर्य-सहस्रनाम' की प्रतिलिपि उत्तारी थी । उसने ही अकबर को इसे कंठस्थ कराया था । सूर्योपासना का यह क्रम अकबर के जीवन के अंत तक चला था; मृत्यु के कुछ दिन पहले जब वह अधिक रुग्ण हो गया तभी यह क्रम रुक सका था ।

तानसेन ने अकबर की तुलना ही सूर्य से कर डाली । इसी कारण तानसेन ने अकबर के दर्शन को भी पवित्र करने-वाला निरूपित किया और कहा कि भानु तथा अकबर, दोनों सहस्र-किरण हैं—

(राग भैरव, तिताला)

इत भानु, उत साह अकबर, दो दरस जो देखैं,
 सोई होत पवित्र, मंद समीरन के बर पावैं, आवैं गुप्त आनंद ।
 वे तिमिर-हरन, ये दुख-भंजन

ताके सोहैं करियत साह दुनी मकरंद ॥
 दो सहस्र-किरण प्रकास कीन्हौ ये बुधि श्रेष्ठ मयाधर जगबंद ।
 'तानसेन' कहाँ लौं अस्तुति करै, काटन हार विकार दुख-द्वंद ॥

एक अन्य पद में तानसेन ने सूर्य से प्रार्थना की है कि अकबर का राज्य चिरस्थायी हो—

(राग भैरव, तिताला)

तिमिर हरन प्रभात कर दिनकर तेजसकर

जनमन दृग-मनि विभाकर ।

सहस्र किरन भसम करन पतंग गुप्त में को

मिहिरबान महा मारतंड मिहर ॥

चंद तोहीं तें अग्नि पानि नाग तोहीं तें तोहीं तें अनेक रंग

तोहीं तें चोख तो ही तें भोग गत तोहीं तें छूटत डर ।

तेरे उगेतें सब जगे चंद्रभानु विभावान सभी सविता. कविता
'तानसेन' यह विनती करत जौलौं तूं नित ही नित रहे

जो तूं सुर तौलौं रहे छत्र धरे साह अकबर ॥

16. नबी के नायब और अल्लाहु-अकबर

हिंदू और मुसलमान, दोनों में ही यह विश्वास प्रबल है कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। वास्तव में पृथ्वी का स्वामी तो परमेश्वर है, राजा उसकी ओर से शासन सँभालता है। तानसेन ने भी अकबर को 'नबी का नायब' कहा है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

चढ़ी चिरंजीव साह अकबर साहनसाह

बादशाह तख्त बैठौ छत्र फिरै निसान ।

दिल्लीपति तुम नबी जी के नायब अति सुंदर सुलतान ।

चारों देस लिये कर जोर कमान,

राजा राव, उमराव सब मानत तेरी आन ।

कहैं 'मियाँ तानसेन' सुनियौ महाजान,

तुम से तुम ही और नाहीं दूजौ गुनीं जनन के राखत मान ॥

नबी से आशय मुहम्मद साहब से है, अर्थात् अकबर को अल्लाह का नायब न कह कर मुहम्मद साहब का नबी कहा गया है। यह पद उस समय लिखा गया ज्ञात होता है, जब अकबर ने दीने-इलाही की स्थापना नहीं की थी और मुल्लाओं के लिए यह कथन कुफ़्र था।

अकबर ने दीने-इलाही का विधिवत् गठन 1682 ई० में किया था। दीने-इलाही को तौहीद इलाही (अद्वैत ब्रह्म) भी कहा जाता था।

दीने-इलाही को मानने-वाले एक-दूसरे को देखने पर नमस्कार के रूप में 'अल्लाहु-अकबर' और उत्तर में 'जल्ले जलालहू' कहते थे। ये दोनों ही वाक्यांश दो अर्थ देने वाले हैं : अकबर अल्लाह है या अल्लाह महान है। इसी प्रकार जल्ले जलाल हू, अल्लाह का प्रताप भी हो सकता है और अकबर का प्रताप भी।

तानसेन ने भी एक पद ऐसा लिखा है, जो दोनों में से किसी भी अर्थ में लिया जा सकता है—

(रागिनी आसावरी, ताल रूपक)

चटक चित्र मित्र हू मिलत अमल,

चित्त चढ़त रूप रंग भरत, जगत मन हरत ।

प्रथम ही आत्मा आदरत पुनि अरि-तन टूक करत,

बड़ी-बड़ी बार परत ॥

रस ढरत लटपटात थरथरात वेहोस भट हैं लरत ।

एक मारत मरत, एकन दरत बिसरत

हेरत रौर दारिद्र इनके दरत ॥

वही ज्ञान जी में धरत परसत संसार नित

धीर मन में यातें भूल न परत ।

‘तानसेन’ कहत अकबर अल्ला सुमरि कै नाम गाए

एक दरसन ही सुरत निरत ॥

इसमें अकबर भी अल्लाह हो सकता है और अल्लाह भी अकबर (महान) माना जा सकता है । समस्त पद ही इतना गोलमोल है कि कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है । न मुल्ला असंतुष्ट हों और न अकबर ।

17. नरपति-तानपति

तानसेन को अपने संगीत के आचार्यत्व पर पूर्ण विश्वास था । उन्हें यह भान था कि वे अपने समय के अकबरी दरबार के सर्वश्रेष्ठ गायक थे । इसी कारण उन्होंने बड़े दंभ से लिखा है कि अकबर यदि नरपति है तब तानसेन तानपति है, दोनों अपने-अपने क्षेत्र में अप्रतिम हैं—

(राग भरव, चीताला)

मुरारे त्रिभुवनपते, इंद्र सुरपते, शेषनाग है फनपते ।

क्षीर उदधि सलिलपते, कौस्तुभमनि रतनपते

दिनकर दीननपते कमलापते ॥

ससि-उडगनपते, हनुमान बलिनपते,

नारदादि भक्तनपते, साजन बीन मृदंगपते ।

चिरजीवौ साह अकबर नरपते, ‘तानसेन’ तानपते ॥

इस पद में तानसेन ने अपने-आपको न केवल श्रेष्ठता में अकबर के समकक्ष माना है वरन् यह भी कहा है कि जिस प्रकार मुरारी त्रिभुवन-पति हैं, शेषनाग नागों के पति हैं, क्षीरसमुद्र सलिल-पति है, कौस्तुभमणि रत्नों का पति है, दिनकर और विष्णु दीनों के पति हैं, नक्षत्रों का पति चंद्रमा है, बलशालियों के पति हनुमान हैं, भक्तों के पति नारद हैं और बाघों के पति (श्रेष्ठतम) बीणा और मृदंग हैं और जिस प्रकार शाह अकबर नरपति है उसी प्रकार तानसेन तानपति है । इसी कारण तानसेन ‘संगीत सम्राट’ कहा जाता है, जैसे अकबर ‘भारत सम्राट’ था ।

बादशाह अकबर को इस प्रकार का दंभपूर्ण पद सुना देना तानसेन के स्वभाव के अनुकूल ही था । अकबर को सुना कर राजा रामचंद्र की प्रशंसा में जो पद तानसेन ने गाए थे वे भी उनकी निर्भीकता के द्योतक हैं । तानसेन निरे चाटुकार ही नहीं थे, उन्हें आत्मसंमान और आत्म-गौरव का भी पूरा भान था ।

किसी आश्रयदाता को संबोधित किए बिना भी तानसेन ने अपने-आपको 'ताननमणि' कहा है—

(सगिनी टोड़ी, चौताला)

सर्वमनि ब्रह्मा ताकौ रच्यौ संसार पुरुषमनि पुरुषोत्तम अवतार ।

वर्नमनि ब्राह्मण नाममनि राम नाम

पुरानमनि भागवत ज्ञानमनि कर विचार ॥

भक्तमनि प्रह्लाद पंछिनमनि गरुड

बननमनि वृन्दावन रसिकमनि मुरार ।

ताननमनि प्रभु 'तानसेन' ज्ञानमनि महादेव

प्रेममनि नारद बालकमनि सनतकुमार ॥

एक अन्य पद में 'ताननमणि' तानसेन ने इस्लाम के प्रतीकों और हिंदू तथा पौराणिक विषयों की अजीब खिचड़ी प्रस्तुत की है; अल्ला, खुदा, नूर, कलमा और अनूठी भाषा के साथ वेद, भागवत, वृन्दावन, नारायण और कल्पवृक्ष को भी मिला दिया है—

(रागिनी मालश्री, ताल सूरफाब्दा)

सर्वमनि अल्ला बडेनमनि खुदाई जोतमनि नूर

थिरतामनि आकास कारनमनि करता भोगनमनि भुक्ति सृष्टिकरन ।

वेदनमनि सामवेद मारन-उचाटन-मनि अथर्वन नादनमनि अनहद

पंचम वेद कलामनि कलमा पुरानमनि भागवत

भाषामनि अरबी बननमनि वृन्दावन ॥

आसनमनि अरस कुरस नरनमनि नारायन वृक्षनमनि कलपवृक्ष

रसिकनमनि रासबिहारी भूषनमनि कौस्तुभमनि ।

सुखमनि संतोष नामनमनि हरिनाम जातमनि ब्राह्मण

धर्ममनि इमान ताननमनि तानसेन

अखिलमनि भगवान ॥

18. उपदेश

यह इतिहास-विश्रुत है कि सम्राट अकबर में उतावली बहुत अधिक थी । एक बार सौ से भी कम सैनिकों के साथ हजारों की संख्या के शत्रु-सैन्य पर वह अचानक दौड़ पड़ा था । इसी प्रकार गुजरात में विद्रोह होते पर बहुत थोड़ी-सी सेना के साथ आशातीत कम समय में झपट पड़ा था । इस प्रकार के कार्यों के प्रति सम्राट को सचेत करना आवश्यक था । तानसेन ने भी इस दिशा में प्रयास किया

था। एक पद में धैर्य का उपदेश देते हुए तानसेन ने लिखा, अर्थात्, गा कर सुनाया था—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

धीरें-धीरें-धीरें मन, धीरें ही सब कछु होय ।

धीरें राज, धीरें काज, धीरें योग, धीरें ध्यान, धीरें सुख-समाज जोय ॥

धीरें तीरथ, धीरें व्रत-संयम, धीरें ही करै सतसंग,

साधुन में बैठ मन को धीरें राखौय ।

‘तानसेन’ कहैं सुनो साह अकबर

ऐती बड़ी बादसाही धीरें ही तें पाई सोय ॥

19. अन्तःपुर संगीत

कहा यह जाता है कि तानसेन को सम्राट ने अंतःपुर में राजमहिषियों और अन्य महिलाओं को गायन सुनाने का कार्य भी सौंपा था। तानसेन के पदों से ऐसा ज्ञात होता है कि ऐसे अवसरों पर बादशाह अकबर भी उपस्थित रहता था। बादशाह को संबोधित ऐसे अनेक पद प्राप्त हुए हैं, जिनमें महिषी के रूप की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। यह पदमहिषी संभवतः शाहजहाँ सलीम की राजपूत माता मरियम मकानी (जोधाबाई) ही थी।

एक पद में इस पदमहिषी और अकबर की जोड़ी की अर्धनारी-नटेश्वर से तुलना की गई है—

(राग भैरव, चौताला)

सोहत कामिनि उत्तम रूप पहिरत सम्हार,

चीर ओप बढ़ाय कुंदन अंग ।

टीके कौ कियौ उदोत तातें तिमिर फटौ, सरन परे पाछें—

सीसफूल जुत असमान, श्रवन कुंडल कवरी अचक कटाक्ष-

आप जोत, बनि रह्यौ दोऊ अनंग ॥

दृग अंजन दिये, खंजन बस करि लिये,

कर दर्पन हार सुख देत सुख पैयै,

अन निरखैं उड़िजात यौ बरनन गुनी गावैं,

मानिक हीरा कपोल, मुक्ता-लर मुक्त-माल,

भुज विसाल, कर कमल, बाजूबंद फुंदन,

लटकि-लटकि अलि युग संग ।

काम-किरन उपज्यौ नवल विचित्र,

कंचुकी मधु अतंक अधर सुन्दर त्रिवली,

तेरे वाट रनन भनन ठनन अमृत नाभि,
 और नलिन लीला रस लेत अनजान,
 'तानसेन' के प्रभु साह अकबर बन रहे,
 जैसे महादेव-पारवती-अरधंग ॥

इसी प्रकार बख्शू ने भी मानसिंह की प्रिया के सौंदर्य का वर्णन किया था। उस समाज में कवियों-गायकों द्वारा अपनी प्रिया के रूप-वर्णन को अच्छा माना जाता था। उसके कारण किसी ईर्ष्या का अनुभव नहीं होता था। संभवतः यह प्रथा कालिदास ने कुमारसंभव में प्रारंभ की थी, जब जगत-माता पार्वती के शृंगार का उसने वर्णन किया था। तानसेन द्वारा दोनों को 'अनंग' कहना तथा साम्राज्ञी के नयन, कपोल, आदि का वर्णन कर उसे 'काम-किरण' कहना अनुचित नहीं माना गया होगा।

एक अन्य पद में शंकर और उनकी जटाओं में बसी गंगा को उपमान बनाया गया है—

(रागिनी पूर्वी, तिताला)

तेरो आली रूप, पिय के मन को खिलौनों
 निसिदिन लिये रहत संग।

कबहूँ बागौ बनाय, कबहूँ वीरौ खवाय,
 कबहूँ निरख रीझि दिन-दिन बढ़त तरंग ॥

तू ही तन, तू ही मन, तू ही कर रहो पिय मन अरधंग।
 'तानसेन' प्रभु प्रवीन के चित्त चढ़ी ऐसैं जैसें ईस सीस वसत गंग ॥

शिशु जिस प्रकार खिलौने को छाती से चिपकाए रहता है वैसे ही प्रिय अपनी प्रिया को दिन-रात साथ रखता है। यह उपमा बड़ी संभोहक है। दो पदों में 'जोरी चिरंजीवी रहो' की कामना की गई है, और दंपति की परस्पर प्रीति का स्वकीया के रूप में मधुर वर्णन किया गया है—

(रागिनी भैरवी गणेश, ताल नव)

परस्पर दंपति मिल करत सिंगार
 एक अँगौछा लै पौछत मुख, एक सुधारत पेंच पाग।

सब निसि जागे, प्रेम-रूप रस-मद छाके
 तातैं झुकि-झुकि गरैं लाग-लाग ॥

लै दरपन आपुस में निरखत प्यारी,
 प्यारी लै बीन बजावत, गावत राग।

'तानसेन' प्रभु दोनों चिरंजीव रहौ,
 देत दरस भक्तन कौं धन-धन-धन भाग ॥

तथा

(रागिनी खंवावती, चौताला)

एरी तू अंग-अंग रंगराती अति ही सयानी री तू,
पिय मन मानी री तू ।

सोलह कला समानी, बोलत अमृत बानी,
तेरौ मुख देखैं चंद-जोति हू लजानी री तू ॥
कटि केहरि, कदली जंघा, नासिका पर कीर वारौं,
श्रीफल उरोजन की छवि आनी री तू ।

‘तानसेन’ कहै प्रभु दोऊ चिरंजीव रहौ,
तेरौ नेह रहै जोलों गंग-जमुन पानी री तू ॥

एक अन्य पद में अन्तःपुर की किसी रूपसी के सौंदर्य का अद्भुत संमोहक वर्णन किया गया है¹—

(राग भैरव, एकताल)

अंजन रेख ताटक निकट सोहत
मानौ नील-कंज नाल सहित रवि जुगल केलि कीनी ।
अलकावलि बीच मुकताहल
मानौ तनी तनी समान सींव लीक दीनी ॥
कुच चकवा कटि हारावलि बनि रही,
दिन होय तहाँ ते निसि मिलि दुख छीनी ।
ऐसौ सुन्दरि तेरे आबास अकबर साहि बस कीनी ॥

इस पद को पढ़ कर हमें महाकवि सूरदास के एक पद का अनायास स्मरण हो आता है²—

(राग नट)

खंजन नैन सुरैंग रसमाते ।
अतिसय चारु बिमल, चंचल ये, पल-पिंजरा न समाते ॥
बसे कहूँ सोइ बात सखी, कहि रहे इहाँ किहि नातें ?
सोइ संज्ञा देखति औरासी, बिकल उदास कला तैं ॥
चलि चलि जात निकट सवननि के सकि ताटक फँदाते ।
‘सूरदास’ अंजन गुन अटके, नतर कबै उड़ि जाते ॥

महाकवि सूर से तानसेन के पद की तुलना करना उचित नहीं होगा ।
तानसेन का पद ‘रूप रसमाते खंजन नैन’ के मनमोहक कार्यकलापों तक सीमित

1. फ्रांस्वाज देलबोआ ‘नलिनी’ द्वारा प्राप्त ।

2. सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 1102, पद 3285 ।

है। तानसेन ने कुछ अन्य अंगों के सौंदर्य के विषय में भी उपमाओं द्वारा वर्णन किया है।

अंजन की रेखा का ताटक ('झूमका'—किसी लटकन के आधार पर लटकता हुआ कानों का आभूषण) ऐसा ज्ञात होता है मानो दो रवियों से मृणाल सहित नीले पंकज केलि कर रहे हैं। इसमें 'नीलकंज नाल' ताटक की लटकन के लिए प्रयुक्त हुआ है।

दूसरे चरण में अलकावलि के बीच में मोतियों की लड़ियाँ ऐसी दिखाई गई हैं मानो बंधन कस कर बाँध कर माँग में लकीर खींच दी है। (यह तनी सोने या चाँदी की हो सकती है, रेशम या साधारण डोरे की नहीं; राजमहिषियों के उपयोग के लिए सोना या चाँदी ही उपयुक्त हो सकती थी।) कुच चकवा-चकवी के समान हैं, कटि में हार शोभा दे रहा है। यह हारावलि उस रात की सीमा के समान है जिसके हटाए जाने पर प्रभात हो जाता है और चकवा-चकवी का दुख समाप्त हो जाता है।

ऐसी थी यह सुंदरी जो अकबर के अंतःपुर की शोभा बढ़ा रही थी। यह स्पष्ट है कि सूर के खंजन-नैन उस कृष्ण-भक्ति-पूरित परम भक्त के नयन हैं जिसे अंध कवि कहा जाता है।

यद्यपि तानसेन के इस विषय में अनेक पद मिले हैं तथापि उन सब को देने से प्रसंग बहुत बढ़ जाएगा।

20. विविध उत्सव

तानसेन अकबरी दरबार में 27 वर्ष रहे थे। इतने लंबे समय की तानसेन-विषयक घटनाओं पर मुगुलों के दरबारी इतिहास-लेखक अल्लामा अबुलफ़ज़ल लगभग मौन धारण किए रहे, उनके द्वारा केवल तानसेन के अकबरी दरबार में आने का वर्ष 1562 तथा उनकी मृत्यु का दिन 26 अप्रैल 1589 दिए गए हैं। तानसेन के इन दो काल-बिंदुओं की गतिविधियों की झाँकी उनके द्वारा विरचित पदों से तथा कुछ अन्य स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत की जा सकती है। तानसेन के पदों से यह ज्ञात होता है कि वे उनमें से कुछ विभिन्न उत्सवों तथा अवसरों के लिए रचे गए थे।

दशहरा

राजा-महाराजाओं के लिए दशहरा बहुत बड़ा उत्सव होता है। इस दिन वे सेना सहित विजय-यात्रा पर निकलते थे। ऐसा अवसर कभी अकबरी दरबार में भी आया था। अकबर ने अनेक विजयें प्राप्त की थीं। यह संभव नहीं है कि निश्चित रूप से कहा जा सके कि नीचे उद्धृत पद किस विजय के उपलक्ष्य में

1. सूर-सागर, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 1102, पद 2585।

लिखा गया था। संभावना यह है कि सन् 1573 में गुजरात-विजय पूरी कर जब अकबर राजधानी लौटा, उस समय तानसेन ने यह पद सुनाया हो—

(रागिनी मुस्तानी धनाश्री, चौताला)

आनंद भयौ आज, आयौ विजय कर, घर-घर मंगलचार।

अनेक गज तुरंग साजे, नौबत नगारे बाजे गज-तुरंग साजे सवार ॥

तत बितत घन सिखर नाना विघ्न बाजत, सुरपति के द्वार।

ब्रह्मा वेद पढ़े, नारद मुनि गावे, राजा रामचन्द्र जी के आगार ॥

‘तानसेन’ कहैं, सुनौ साह अकबर, दसहरा सुफल भयौ तिथि बार ॥

यहाँ ‘राजा रामचन्द्र’ दाशरथि राम हैं, न कि बबेला राम। फिर भी तानसेन कुछ ऐसे द्वि-अर्थी प्रयोग करने में चूकते नहीं हैं।

ईद

मुसलमानों का प्रमुख त्यौहार ईद होता है। अकबर के समय से ईद हिंदू और मुसलमान, सभी मिल कर मनाते थे, और जहाँ राजनीति ने आपसी वैमनस्य नहीं फैलाया है, वहाँ आज भी सभी धर्म के लोग ईद-मिलन में संमिलित होते हैं। ऐसे ही किसी ईद के अवसर पर तानसेन ने भी ईद-मुबारक कहा—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

ईद मुबारक होबै जुग-जुग नित-निति, तुम कौं महरबान।

सकल विद्या गुन-निधान अति ही आनंद करौ,

देत गुनीन कौं आदर सनमान ॥

जुग-जुग जीवौ कोटि बरस लौं, देवौ करौ नित दान।

‘तानसेन’ कहै सुनौ साह अकबर,

चहुँ चक राज करौ मरदान महा मरदान ॥

तानसेन ने सम्राट अकबर को एक अन्य पद ईद-मुबारक का सुनाया था। बैरमखाँ ने किशोर अकबर को हेमू के गले पर तलवार रखवा कर गाजी बनाया था, तानसेन ने उसे अपने इस पद में हाजी बना दिया¹—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

सुभ दिन सुभ घरी सुभ महरति

सुभ नखत बखत बली तुम जु,

मुबारक होइ ईदि सौ-सै जुग भरि।

1. काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संगीत-शास्त्र विभाग में सुदक्षित रागमाला की प्रति, पृष्ठ 266, पत्रक 64-बी, क्रमांक 728; फ्रांस्वाज् देलबोवा ‘नलिनी’ द्वारा प्राप्त।

चाहनि गाइनि गावत अधिक बजावत
 नितंक नितं करत एक आसीरवाद देत
 चिर चरंजी जोहौ कलपतर ॥
 फुनि सब सुख दीनों अनेग-
 भातिनि बौहौ तुरंग वर ।
 वांनी तिहारी जे हरि चरंजीव रहौ
 नबाब गैरतिखा मुर्तजा अली सेर खुदा परवर
 औरनि के ईदि तुम्हारें होइ हज्ज अकबर ॥

खुमारी

मौलाना मुहम्मद हुसैन आजाद ने 'दरबारे-अकबरी' में लिखा है¹—

“प्रकृति के दरबार से अकबर अपने साथ बहुत-से गुण लाया था। उनमें से एक गुण यह भी था कि उसकी तबियत कविता के लिए बहुत ही उपयुक्त थी, इसलिए उसकी जुबान से कुछ शेर भी निकल आया करते थे। उनमें से (फारसी के) एक शेर का आशय यह है—

“मद्य-विक्रेताओं की बीथी में जा कर मैंने धन दे कर मद्य का प्याला खरीदा। उसके खुमार से अब तक सिर भारी है। मैंने धन दे कर सिर का दर्द मोल लिया।”

यह आध्यात्मिक खुमार अकबर को जिस समय उपलब्ध हुआ था, उसी समय तानसेन ने इस खुमारी को अभिव्यक्ति दी—

(रागिनी आसावरी, तिताला)

ए दारू पिलाउ कलाली,

‘तानसेन’ कौं खुमारी भई है अत बिहाली ॥

दुहाई साह जलाल की प्याला भरि-भरि पिवाउ,

हो लाल दुलाली ॥

तानसेन स्वयं कभी प्याले पीते हों यह संभावना नहीं है; यह तो सूफियाना खुमारी है जिसे अकबर और तानसेन, दोनों ने ही सूफी संतों से प्राप्त किया था।

खुमारी, प्रेम का नशा उत्पन्न करने-वाले भारतीय आसब का कविराज फैजी ने भी उल्लेख किया है जिसका आशय है—

“यह प्रेम का नशा मैं ज्यादा रखता हूँ क्योंकि मेरा प्याला हिंद की शक्कर का है।” वास्तव में फैजी को भारत से बहुत अधिक प्रेम था। यह उनकी अन्य रचनाओं से भी प्रकट है।

1. रामचन्द्र वर्मा, अकबरी दरबार, भाग 1, पृष्ठ 199।

21. राजा राम को अंतिम श्रद्धांजलि

राजा रामचन्द्र वधेला तथा अकबर के संबंधों का विवेचन करते समय यह लिखा जा चुका है कि 1569 ई० में राजा रामचन्द्र ने कालंजर का गढ़ अकबर को दे दिया था और इलाहबाद के क्षेत्र की जागीर प्राप्त की थी। अब आगे की घटनाओं का विवेचन करने के पूर्व राजा रामचन्द्र के पिता वीरभानु और सम्राट अकबर के पिता बादशाह हुमायूँ के संबंधों पर कुछ प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

इसका प्रारंभ उस किंवदंती से करना उचित होगा जो 1907 ई० में रीवा में प्रचलित थी तथा जिसे कैप्टन लुआर्ड ने रीवा राज्य के गजेटीयर में दिया है। इस दंतकथा के अनुसार : “जब कन्नौज के युद्ध में शेरशाह से पराजित हो कर हुमायूँ बादशाह पश्चिम की ओर भागा, तब अपनी बीवी हमीदाबानू को वह महाराज वीरभानु की संरक्षा में बांधवगढ़ छोड़ गया। जिस समय हमीदाबानू बांधवगढ़ में शरण-भिखारिणी बनी काल-यापन कर रही थी, उसी समय और वहीं पर उसके गर्भ से सुप्रसिद्ध अकबर का जन्म हुआ था।”

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि किंवदंतियों में भी सत्य के कुछ कण होते हैं, किंतु उन्हें पूर्णतः सत्य मान लेना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता।

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि जब हुमायूँ बादशाह युद्ध में पराजित हो कर भाग रहे थे तथा मीर फरीद गोर उनका पीछा कर रहा था, तब गोर को राजा वीरभानु ने पराजित कर भगा दिया था। राजा ने बादशाह की चार-पाँच दिन की भूखी सेना को भोजन और मदिरा उपलब्ध कराई थी तथा जिन सैनिकों के घोड़े मर गए थे, उन्हें घोड़े दिए थे।¹

तात्पर्य यह है कि राजा रामचन्द्र के पिता वीरभानु ने सम्राट अकबर के पिता हुमायूँ की बड़े बुरे समय में सहायता की थी।

अब सम्राट अकबर और महाराज रामचन्द्र वधेला के संबंधों पर विचार किया जाए। मुगुलों के मन्सबदार अथवा जागीदार के रूप में सम्राट की अधीनता स्वीकार करने के अनेक औपचारिक परिणाम होते थे। उनमें से एक यह था कि अधीनस्थ राजा को सम्राट के दरबार में उसे आदर प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित होना होता था। राजा रामचन्द्र ने यह करने से मना कर दिया और अपने स्थान पर अपने राजकुमार वीरभद्र को फतेहपुर सीकरी भेज दिया। सम्राट अकबर इससे संतुष्ट नहीं हुए और जब वे शाहाबाद में थे, उन्होंने सेना की एक टुकड़ी को बांधवगढ़ पर आक्रमण करने के लिए कहा। युवराज वीरभद्र भी साथ थे। उन्होंने अन्य दरबारियों द्वारा प्रभाव डलवा कर अकबर को इस बात पर राजी कर लिया

1. गुजबदन बेगम, हुमायूँनामा, ब्रजरत्नदास-कृत हिंदी अनुवाद, पृष्ठ 65।

कि राजा को लेने के लिए सुप्रतिष्ठित ऐसे सरदारों की भेजा जाए जो राजा राम से परिचित हों। सम्राट ने इस काम के लिए राजा बीरबल तथा जईनखाँ कोका को बांधवगढ़ भेजा। उनके समझाने पर राजा रामचन्द्र, सम्राट से मिलने फतेहपुर सीकरी सन् 1582 ई० में पहुँचे। इस समय तक वे अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। बादशाह ने उनको पर्याप्त समादर प्रदान किया।¹

अबुलफ़जल ने जितनी सूचना दी है, उसके आगे सूचना तानसेन का एक पद देता है²—

सूरन-मनि जती-मन राजाधिराज.

तुअ विधना सदा रछिपाल ।

कौन जोधा जंग जोरै जु रन पर

को कह्यौ भीमबली बाल ॥

साहि साजंत संग्राम पर गाजल

धरन भारत दल साहि जलाल ।

इतै राजा राम दल भनत मियाँ

‘तानसेन’ जैसे जुगल नेजा ढाल ॥

इस पद से यह स्पष्ट है कि तानसेन ने भी अपने ढँग से सम्राट अकबर को समझाया था कि वे राजा रामचन्द्र के विरुद्ध सेना भेजने का विचार त्याग दें। इस पद का आशय यह है कि जलालुद्दीन अकबरशाह शूर-वीरों में मणि है, तथापि उसका हृदय यति के समान दयालु है; उस राजाधिराज की विधाता सदा रक्षा करते हैं। संसार में ऐसा कौन योद्धा है जो इस महाबली से युद्ध में बाजी ले सकता है। जब शाह संग्राम की तैयारी करते हैं तब समस्त पृथ्वी पर मानो वज्रपात हो जाता है (गाज गिरती है)।

इतना कहने के उपरांत तानसेन ने कहा कि सम्राट को उचित यही है कि राजा रामचन्द्र की सेना से टकराव नहीं किया जाए। उनकी आपके पराक्रम के सामने कोई गिनती नहीं है, इसलिए सम्राट राजा के साथ नेजा और ढाल जैसा परस्पर संबंध स्थापित करें; अर्थात् सम्राट का नेजा साम्राज्य की वृद्धि करेगा और राजा रामचन्द्र ढाल बन कर उस साम्राज्य की सीमाओं की रक्षा करेंगे।

संभवतः इसी अवसर पर तानसेन ने यह पद भी गाया था³—

1. अबुलफ़जल, आईने-अकबरी, पृष्ठ 446।

2. काशी हिंदू विश्वविद्यालय. वाराणसी के संगीत शास्त्र विभाग की ‘रागमाला’ की प्रतिलिपि, पृष्ठ 384, नस्ती 2, पत्रक 84-ए, क्रमांक 1038; फ़ास्वाज देवबोया ‘नलिनी’ द्वारा प्राप्त।

3. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से।

(रागिनी ईमनी-विराजति)

राजा राम निरंजन देस निरंजन

मनि मतौ ग्यान गुन मंत्र भरै ।

जैसे जो विद्यागुनी जीअ सुख सुलितान धर्म-पंथ पाई धरै ॥

सरन गए ते अटल करै भरै ।

कहैं मियाँ 'तानसेन' ऐसी सर कोऊ नहि

तिहारी सरवर करै ॥

इस पद का आशय भी लगभग ऊपर के पद जैसा ही है । राजा रामचन्द्र निराकार निरंजन के भक्त हैं, ऐसा ही उनका प्रदेश है । उस राजा के हृदय में ऐसा विश्वास है कि सुल्तान (अकबर) जैसे विद्या-गुणी के धर्म-पंथ का अवलंबन करने में सुरक्षा है, उसकी शरण में रहने में ही कुशल है । हे सम्राट, ऐसा कौन है जो आपकी बराबरी कर सके ?

प्रत्यक्ष है कि बीरबल तथा जईनखाँ कोका को भेजने में तानसेन की इस युक्ति ने अकबर से स्वीकृति प्राप्त कराने में सहायता प्रदान की होगी ।

जब राजा रामचन्द्र फतेहपुर सीकरी में सम्राट अकबर के दरबार में पहुँचे, तब सम्राट ने अनेक संगीत-सभाओं का भी आयोजन किया था । उनमें तानसेन ने भी गाया—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

साके कौं विक्रम, दैत्र कौं बलि-करन, वेद सम जाहि ज्ञान ।

बल कौं भीम, पैज कौं परशुराम,

बाचा कौं जुधिष्ठिर, तेज प्रताप कौं भान ॥

इंद्र सम राज कौं, मूरति कौं कामदेव, प्रभा कौं मेरु समान ।

'तानसेन' कहै सुनौ साह अकबर,

राजन में राजा राम नंदन-विरहभान ॥

इसे तानसेन की निर्भीकता ही कहा जाएगा कि उन्होंने भरे-दरबार में अकबर को यह स्मरण दिलाया कि राजा रामचन्द्र के पिता वीरभानु ने सम्राट के पिता हुमायूँ का बड़े आड़े समय में साथ दिया था । इस तथ्य के सहारे तानसेन ने राजा रामचन्द्र बघेला की महती यश-गाथा सुना दी जिसमें रामचन्द्र को विक्रम, बलि, कर्ण, भीम, परशुराम, युधिष्ठिर तथा इंद्र आदि के समकक्ष रख दिया । यह भी स्मरण दिला दिया कि उस राजा के तेज का प्रताप सूर्य के समान है, वह कामदेव जैसा सुंदर है, उसकी प्रभा सुमेरु पर्वत के समान है और अनेक राजाओं में वह अलग अथवा सर्वश्रेष्ठ राजा है ।

तानसेन की निर्भीकता के साथ इस पद से यह भी स्पष्ट होता है कि तानसेन का राजा रामचन्द्र के प्रति अगाध स्नेह था।

इन तीनों पदों को आपस में मिलाने से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जब तानसेन को सम्राट को किसी बात के लिए राजी करना होता था तब वे अपनी सरकारी पदवी 'मियाँ' का प्रयोग करते थे, और जब निर्भीकता से कोई बात कहनी होती थी तब 'मियाँ' गायब हो जाता था। अकबर भी अब वय में बड़ा हो गया था, और ऐसा नहीं कि वह यह-सब न समझ सका हो। इससे वृद्ध तानसेन के शाही दरबार में प्रभाव का भी आभास मिलता है।

इसके आगे फिर इतिहास से मार्गदर्शन लेना होगा। इतिहास कहता है कि राजा रामचन्द्र ने अत्यंत बहुमूल्य मणि-माणिक्य सम्राट को भेंट में दिए और सम्राट ने उन्हें 101 बहुमूल्य अश्व भेंट में प्रदान किए। फतेहपुर सीकरी से बांधवगढ़ पहुंचते ही राजा रामचन्द्र का 1583 ई० में देहांत हो गया। तात्पर्य यह है कि ऊपर लिखे पद द्वारा तानसेन ने अपने प्रिय राजा रामचन्द्र को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित की थी, जो वास्तव में बहुत भव्य और गौरवशाली है।

22. बीरबल

अकबर के नवरत्नों में बीरबल और अब्दुल रहीम खानखाना से तानसेन का बहुत स्नेह था।

कालपी के एक ब्रह्मभट्ट परिवार में महेशदास नामक एक बालक ने जन्म लिया। बड़े होने पर उसने अपना वंशगत व्यवसाय अपनाया और स्थान-स्थान पर अपनी कविताएँ सुनाते हुए फिरने लगा। फिर किसी रामचन्द्र भट्ट के पास कवित्त सुनाने की नौकरी की। किसी प्रकार सन् 1556 में महेशदास की बादशाह अकबर से भेंट हुई। बादशाह अकबर के राज्य का यह पहला वर्ष था और उसकी वय केवल 14-15 वर्ष की थी। महेशदास बात करने में अत्यंत कुशल और प्रत्युत्पन्न-मति था। बादशाह उसकी बातचीत से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने महेशदास को पहले कविराज की उपाधि दी, फिर राजा बीरबल की।

बीरबल यद्यपि ब्रह्मभट्ट थे, तथापि वे ब्राह्मण कहा जाना पसंद करते थे। धीरे-धीरे बीरबल बादशाह के सुहृद बन गए तथा दरबार के नवरत्नों में उन्हें प्रथम स्थान दिया गया। बादशाह ने बीरबल को काँगड़ा की जागीर भी दी थी, यद्यपि वह विशुद्ध राजनीतिक कारणों से दी गई थी। काँगड़ा के ब्राह्मण उपद्रव मचा रहे थे इस कारण वहाँ की जागीर बीरबल को दी गई थी और यह आवश्यक हो गया था कि वे ब्रह्मभट्ट के स्थान पर अपने को ब्राह्मण प्रसिद्ध करते।

बीरबल स्वयं श्रेष्ठ कवि और गायक थे। अकबर के दरबार में आने के पहले उनका व्यवसाय ही लोगों को छंद सुना कर प्रसन्न करना था। बीरबल 'ब्रह्म' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। उनके लिखे हुए अनेक छंद मिले हैं।

महाकवि केशवदास और बीरबल

बीरबल का संबंध अपने युग के अनेक व्यक्तियों से रहा है। वर्तमान संदर्भ में बीरबल और केशवदास का पारस्परिक संबंध जान लेना पर्याप्त है। बीरबल बहुत दानी थे। एक बार बीरबल, ओड़छा के इन्द्रजीत और महाकवि केशवदास, तीनों मकर संक्रांति के समय तीर्थराज प्रयाग गए थे। वहाँ त्रिवेणी के स्नान के समय इन्द्रजीत तथा बीरबल ने केशवदास से कुछ माँगने को कहा। केशव ने 'कविप्रिया' में लिखा है—

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल के दास ।

भाषा-कवि भो मंदमति तिहि कुल केसवदास ॥

इंद्रजीत तासों कह्यो माँगन माँझ प्रयाग ।

माँग्यो सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग ॥

यों ही कह्यो जु बीरबर माँगि जु मन में होइ ।

माँग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोइ ॥

बीरबल से माँगा गया यह वरदान केशव के बहुत काम आया ।

प्रवीणराय और बीरबल

कहा यह जाता है कि सम्राट अकबर ने प्रवीणराय के सौंदर्य, कवित्व तथा संगीत की ख्याति सुन कर तत्कालीन ओड़छा के राजा रामशाह को प्रवीणराय को आगरा भेजने का आदेश दिया। प्रवीणराय रामशाह के छोटे भाई इंद्रजीत की अवरुद्धा थी और केशवदास की परम प्रिय शिष्या थी; महाकवि केशव ने अपनी 'कविप्रिया' उसी को समर्पित की थी।

इंद्रजीत प्रवीणराय को आगरा भेजने के लिए राजी न हुए। परिणामतः अकबर ने रामशाह को आदेश भेजा कि वह प्रवीणराय को भेज दे और एक कोड़ का अर्थदंड भी आरोपित कर दिया। प्रवीणराय ने इंद्रजीत से प्रश्न किया—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें निज श्वासन सौं सिगरी मति गोई ।

देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिए न लजौं लजि है सब कोई ॥

स्वारथ और परमारथ की गथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई ।

जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अह मोर पतिव्रत भंग न होई ॥

अर्थात्, पात्र अपने आश्रयदाता के प्रति उसी प्रकार समर्पित होती थी जैसे कोई भी पतिव्रता स्त्री हो सकती थी।

यह छंद सुन कर इंद्रजीत ने क्या कहा, यह ज्ञात नहीं है। तथापि इंद्रजीत और केशवदास ने परामर्श किया। केशव की सलाह पर प्रवीणराय और केशवदास आगरा गए। आगरा में बीरबल ने अपने प्रभाव से एक करोड़ अर्थदंड क्षमा

करवा दिया। इस कार्य में टोडरमल टंडन बाधक हुए, तथापि बीरबल के सामने उनकी चली नहीं।

‘निजमत सिद्धांत’ में लिखा है कि तानसेन भी ओड़छा गए थे और दीपक राग गाने के कारण अस्वस्थ हुआ उनका शरीर किसी स्त्री ने मेघ राग सुना कर स्वस्थ कर दिया था; उन्होंने उससे दीपक राग सीखा।

तानसेन ओड़छा राम राजा के दर्शन करने गए हों यह संभाव्य है— ‘राम राजा’ को मधुकरशाह की रानी गणेशकुंवरि ने अयोध्या से ला कर अपने महल में ही स्थापित कर लिया था।¹ यह उस समय की बहुत बड़ी घटना मानी गई थी। यह भी संभव है कि तानसेन को इंद्रजीत ने ओड़छा बुलाया हो क्योंकि वह स्वयं ध्रुपद-रचयिता और ध्रुपद-गायन तथा ध्रुपद-नृत्य में कुशल था। ‘निजमत सिद्धांत’ के अन्य कथन विशुद्ध काल्पनिक हैं। दीपक राग का शास्त्रीय ध्यान यह है कि जब मध्य रात्रि को नायक नायिका के साथ प्रणय में लीन होना चाहता है तब दीपक को बुझा देता है।

इस बात में कुछ तथ्य हो सकता है कि तानसेन ने भी महाकवि केशवदास के कार्य में सहयोग दिया हो।

दानी बीरबल

इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर अब पुनः केशवदास तथा बीरबल के आपसी संबंधों के विषय पर विचार प्रारंभ किया जाए।

खूबचंद नामक किसी कवि ने एक छंद लिखा है, जिसका संबंधित चरण नीचे लिखे अनुसार है—

‘बीरवर दै षट कोटि केशव कवित्तन पै’

कहा नहीं जा सकता कि उनके किस कवित्त पर राजा बीरबल ने केशव को धन दिया होगा। खूबचंद की धनराशि निश्चय ही अतिशयोक्ति है। संभावना यह है कि केशव का सर्वथा निम्नलिखित होगा—

नाक रसातल भूधर सिंधु नदी नद लोक रचे दिसि चारी,
केसव देव-अदेव रचे नर देव रचे रचना न निबारी ॥
रचि के नृपनाथ बली बलबीर भयो कृत-कृत्य वड़ौ व्रतधारी।
दै करतारपनौ कर ताहि दई करतार दुहै कर तारी ॥

बीरबल की मृत्यु के समय केशवदास बहुत दुखी हुए थे। उन्होंने उस समय लिखा था—

1. राजा मधुकरशाह की रानी कुंवरि गनेस।
अवधपुरी तैं ओड़छै, लाई अवधनरेस ॥
2. पूरा छंद खानखाना के संबंध में दिया गया है।

टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयौ ।

मोरे हित वरवीर विना टुकु दीननि रोयौ ॥

निश्चय ही केशव, टोडरमल के व्यवहार से बहुत रुष्ट थे ।

प्रवीणराय की मुक्ति

प्रवीणराय ने अपनी रक्षा अपनी वाग्विदग्धता से की थी । उसने भरे-दरबार में अकबर को एक मामिक दोहा गा कर सुनाया—

बिनती राय प्रवीन की सुनियौ साह सुजान ।

भूठी पातर भखत हैं वारी, वायस, स्वान ॥

इस दोहे में 'पातर' में श्लेष है—पात्र, अथवा नर्तकी या गायिका अथवा भोजन करने की पत्तों से बनी पत्तल । आशय यह हुआ कि प्रवीणराय ने बड़ी चतुराई से सम्राट अकबर को नाई-वारी, कौआ, और कुत्ते के समकक्ष रख दिया । अकबर के हृदय में किस प्रकार की भावनाएँ उद्बलित हुईं, यह न केशवदास ने लिखा है न अबुलफ़जल ने—अकबर ने प्रवीणराय को ओढ़छा लौट जाने दिया ।

बीरबल के साथ देवी-पूजन

तानसेन ने, तांत्रिक होने के कारण, दुर्गा की स्तुति में अनेक पद लिखे हैं । ज्ञात यह होता है कि तानसेन बीरबल की धौलागढ़ (हिमपति) की देवी की पूजा में सम्मिलित हुए । उस अवसर पर तानसेन ने एक पद गाया—

(गगिनी मुस्तानी भीमपलासी, चौताला)

जै-जै कर पूजौ धौलागढ़ की रानी नैं ।

पान सुपारी घजा नारियल पहलैं भेंट भवानी नैं ॥

तेल फुलेल अरगजा अंबर लै चढ़ाओ वाक्वानी नैं ।

तानसेन यह प्रसाद माँगत दीजै बुध और बानी नैं ॥

ब्रह्मा वेद पढ़ें तेरे द्वारे, शंकर ध्यान समानी नैं ।

बीरबल वंश ब्राह्मण-कुल-तारन 'तानसेन' वरदानी नैं ॥

एक विद्वान ने इस पद का उपयोग यह सिद्ध करने के लिए किया है कि तानसेन ब्राह्मण थे ।¹ पद में संशोधन कर 'बीरबल' के स्थान पर 'बीरबली' कर दिया । तानसेन ब्राह्मण तो थे, परंतु इस पद के ब्राह्मण शब्द का संबंध उनसे नहीं है । इस पद से केवल यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण शब्द का संबंध बीरबल से है । ब्रह्मभट्ट बीरबल की तुष्टि के लिए तानसेन ने उन्हें 'ब्राह्मण-कुल-तारन' कहा है ।

1. प्रभुदयाल भीतल, संगीत सम्राट तानसेन—जीवनी और रचनाएँ, पृष्ठ 9 ।

23. खानखाना और तानसेन

अब्दुल रहीम खानखाना का जीवन-वृत्त असाधारण है। वे करायलू तुर्कमानों के वहारलू कबीले के थे। रहीम के पिता बैरमखाँ थे। इनके विवाह-संबंध तैमूरिया वंश से थे। बैरमखाँ ने हुमायूँ की सेवा में रह कर उसके राज्य की बहुत सेवा की। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् बैरमखाँ अकबर के अभिभावक बने। उन्होंने हुमायूँ का खोया हुआ साम्राज्य वापस दिलाने में बहुत सहयोग दिया तथा पानीपत के निर्णायक युद्ध द्वारा अकबर को भारत के सम्राट के रूप में प्रस्थापित किया।

दुर्भाग्य से कुछ कारणों से अकबर बैरमखाँ से क्रुद्ध हो गया और उनके सामने यह विकल्प रखा कि या तो वे कोई जागीर ले कर राजधानी से दूर चले जाएँ या हज़ को चले जाएँ। बैरम ने हज़ जाना ही स्वीकार किया। वे जब भारत में ही थे, तब किसी पठान ने उनकी हत्या कर दी या करवा दी गई। उस समय रहीम केवल चार वर्ष के थे। अकबर ने रहीम को अपने संरक्षण में ले लिया और पुत्रवत् उनका पालन किया। जब वे 27 वर्ष के थे, तब अकबर ने उन्हें गुजरात का विद्रोह दबाने के लिए भेजा, क्योंकि अन्य सेनापति सफल नहीं हुए थे। रहीम इस कार्य में पूर्णतः सफल रहे और अकबर ने उन्हें 'खानखाना' की पदवी प्रदान की। खानखाना अकबर के जीवन-काल में उन्नति करते ही गए।

रहीम के दुर्दिन

सम्राट अकबर की मृत्यु के पश्चात् जब रहीम 50 वर्ष के हुए, तब उन पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े। सन् 1604 में उनके दामाद का देहांत हो गया। फिर एक-एक करके उनके पुत्र चल-बसे। भौतिक रूप से उनकी घोर विपत्ति उनके पुत्र शाहनवाज़ की शाहजादी का खुर्रम (शाहजहाँ) से विवाह होने से प्रारंभ हुई। इसके कारण उन्हें जहाँगीर की प्रिय बेगम नूरजहाँ के पडयंत्र का शिकार होना पड़ा और वे नितांत दरिद्र हो गए।

दानी रहीम

अपने अच्छे दिनों में रहीम बड़े दानी थे। खूबचंद कवि ने एक छंद लिखा है—

मान दस लाख दियौ दोहा हरिनाथ के पै

हरिनाथ कोटि दै कलंक कवि कैहै को।

बीरबर दै षट कोटि केशव कवित्तन पै

शिवराज हाथी दियौ भूषन ते पैहै को ॥

छप्पै पै छत्तीस लाख गंगे खानखाना दिये

याते दीन ह्वै दूनौ दान ईदर में ऐहै को।

राजा श्री गंभीरसिंह छंद खूबचंद कै पै
विदा में दगा दर्ई न दीन कोउ पैहै को ॥

खूबचंद गंभीरसिंह से जल-भुन गया था। अतः उसने धनराशियाँ अतिरंजित लिखी हैं।

केशव के किस कवित्त पर रहीम ने उन्हें प्रोत्साहित किया था इस बात का अनुमान कठिन है, तथापि ज्ञात यह होता है कि 'जहाँगीर जस-चंद्रिका' में लिखा गया कवित्त होगा—

साहिजू¹ की साहिबी कौ रच्छक अनंत गति,
कीनों एक भगवंत हनुवंत वीर सौ।
जाको जसु 'केसोदास' भूतल के आसपास
सोहत छबीलौ छीर सागर के छीर सौ ॥
अमित उदार अति पावन विचारि चारु
जहाँ तहाँ आदरियौ गंगाजू के नीर सौ।
खलनि के घालिबे कौ, खलक के पालिबे कौ
खानखाना एक रामचन्द्रजू के तीर सौ ॥

राजा रामचन्द्र बघेला और रहीम

बांधवगढ़-पति राजा रामचन्द्र से खानखाना के परिचय का प्रमाण उस समय का मिलता है जब रहीम स्वयं दीन दशा में थे। उसी समय कोई याचक उनके पास जा-पहुँचा। रहीम ने एक दोहा लिख कर राजा रामचन्द्र के पास याचक को भेज दिया—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेश।
जापर बिपदा परत है सो आवत इहि देस ॥

यहाँ 'अवध-नरेश' राजा रामचन्द्र के लिए है। राजा ने याचक को पर्याप्त धन दिया। तानसेन के, इस अवध-नरेश की प्रशंसा दाशरथि राम के समान करते हुए, पद मिले हैं। इस कवित्त से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय चित्रकूट बांधवगढ़ की राज्य-सीमा में था।

'ब्रजभाषा' नाम के जनक

जब रहीम 'खानखाना' नहीं बने थे और केवल 'मिर्जाखाँ' थे उस समय उन्होंने पृथ्वीराज की डिंगल रचना 'क्रिसन-रुक्मिणी-री-वेलि' का अनुवाद करने का आदेश किसी गोपाल लाहौरी को दे दिया। मिर्जाखाँ ने अकबरी दरबार में प्रचलित

‘ग्वालियरी’ के स्थान पर उस अनुवाद की भाषा को ‘ब्रज’ नाम दिया। गोपाल लाहौरी ने लिखा है—

मरु भाषा निरजलि तजी करि ब्रज भाषा चोज ।
अब गोपाल यातें लहै सरस अनूपम मौज ॥
कवि गोपाल यह ग्रंथ रचि लायौ मिरजा पास ।
‘रसविलास’ दै नाउ उनि कवि की पूरी आस ॥

गोपाल लाहौरी का यह अनुवाद कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा, अतएव कुछ वर्ष बाद जयकीर्ति ने वेलि की अन्य टीका की, और उसमें लिखा—

ग्वालेरी भाषा गुपिल मंद ग्रथ मित भाव ।

जयकीर्ति को मिर्जाखाँ के आदेश का पालन करने की विवशता नहीं थी, अतएव उसने गोपाल लाहौरी की भाषा का नकली नाम ‘ब्रज’ के स्थान पर असली ‘ग्वालियरी’ कर दिया। तात्पर्य यह है कि ‘ब्रजभाषा’ नाम के जन्मदाता खानखाना ही हैं, अन्य कोई नहीं।

तानसेन का खानखाना के अंतःपुर में गायन

खानखाना का तानसेन से सौहार्द था। यह सौहार्द इतना निकट का था कि तानसेन खानखाना के अंतःपुर में भी जा कर राजमहिषियों को ध्रुपद सुनाया करते थे। उनके दो पद ऐसे मिले हैं जिनकी विषय-वस्तु कुछ विचित्र है, उनमें से पहला निम्नलिखित है—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

हिंदूनी कवहूं जनन कहौ रे, तुरका संग तुरकानी भयेली ।
अनुपम चाल चलत मंतग-गति मानौं पग परत पवेली ॥
ज्यों जल में प्रतिबिंब देखियत, चंद-किरन तैसी जेहरबेली ।
तैं रस बस कियौ ‘तानसेन’ प्रभु, खानखाना पिय पाक अकेली ॥

यह पात्र वास्तव में अद्भुत है, हिंदुओं में हिंदुआनी बन जाती है और तुकों के साथ तुरकानी हो जाती है; फिर एकमात्र (अकेली) ‘पाक’ है। उसने खानखाना को भी बश में कर रखा है।

इसी पात्र के वर्णन के लिए दूसरा पद गाया गया था—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

बाजत नीकैं घुंघरियां, ठुमकत चाल सहेली ।
अनुपम चाल चलत मंतग-गति, मानौं पग परत पवेली ॥

ज्यों जल में प्रतिबिंब देखियत, चंद्र-किरण तैसी जेहरवेली ।

तैं रस बस कियौ 'तानसेन' प्रभु, खानखाना पिय पाक अकेली ॥

कहा जाता है कि खानखाना की सेना का एक सैनिक अपने विवाह के लिए छुट्टी पर गया। विवाह के उपरांत वह अपनी नवीन दुलहिन में इतना आसक्त हो गया कि छुट्टी बीतने के बाद भी बहुत महीनों तक वह सेना में लौटा नहीं। जब लौटने का स्मरण हुआ, तब देर से लौटने के दंड से भयभीत हो गया। उसकी पत्नी को खानखाना के काव्य-प्रेमी होने की ख्याति ज्ञात थी। उसने अपने पति को एक छंद लिख कर उसे खानखाना को देने के लिए कहा—

प्रीत नेह कौ विरवा चले लगाय ।

सींचन की सुधि लीजौ, मुरझि न जाय ॥

कहा जाता है कि खानखाना इस बरवै छंद को पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुए और उस सैनिक को क्षमा कर दिया। उन्होंने स्वयं अनेक बरवै छंदों की रचना की।

जब से हमारा परिचय तानसेन ने खानखाना की इस 'पाक अकेली' से कराया है, हमें यह अनुमान होने लगा है कि कहानी कुछ और ही थी। जब खानखाना स्वयं किसी युद्ध पर जाने लगे, तब इसी 'हिंदू-तुरक नाना वेष-धारिणी नवेली' 'पाक अकेली' ने खानखाना को यह बरवै लिख कर दिया होगा। फिर खानखाना ने अवधी में अनेक बरवै छंद लिखे। इन छंदों ने बाबा तुलसीदास को भी बरवै रामायण लिखने के लिए प्रेरित किया। मूल में जो 'जेहर वेली' के रूप में फैली, वह राम की 'नेह नवेली' बन गई।

24. माधवसिंह

पुंडरीक विट्ठल ने अपनी कृति 'राग-मंजरी' में लिखा है कि माधवसिंह राजा मानसिंह कछवाहा के छोटे भाई थे तथा अकबर ने उन्हें मानगढ़ परगना जागीर में दिया था। वे साहित्य-संगीत के प्रेमी थे, साथ ही नृत्य तथा नाट्य में भी रुचि रखते थे। उन्होंने आगरा में 'माधव-भवन' नामक एक हवेली भी बनवाई थी। इस हवेली में तानसेन भी बहुधा संगीत-गोष्ठियों में भाग लेने जाते थे।

तानसेन का एक पद माधवसिंह के माधव-भवन के विषय में प्राप्त हुआ है। इस पद के स्थायी और अंतरा में माधव-भवन का अत्यंत सुंदर वर्णन किया गया है—

(राग भैरव, चीताला)

सघन वन छायाँ, द्रुम बेली माधौ-भवन,

अति प्रकास बरन-बरन पुष्प रंग लायौ ।

कोकिल-खंजन-कीर-कपोत अति आनंद कारि

चहूँ ओर भर बरसायौ ॥

सप्त सुरन, तीन ग्राम, इकईस मूर्छना,
 उक्ति-जुगति, लाग-डाट कर दिखायी ।
 कहै भिया 'तानसेन' सुनौ साह अकबर
 प्रथम राग भैरव गायौ ॥

तानसेन ने माधवसिंह के माधव-भवन को मनोरम प्राकृतिक परिवेश में स्थित निरूपित किया है। संभवतः वे उस भवन में वर्षा-विहार के समय पहुँचे होंगे।

भैरव राग और सप्त स्वर

ज्ञात होता है कि तानसेन को भैरव राग बहुत प्रिय था। एक अन्य पद में उन्होंने माधव की मुरली की तान के माध्यम से प्रातर्ग्य भैरव राग को प्रस्तुत किया है। उसमें सातों स्वरों के नाम दिए गए हैं। इस पद में देशी और मार्गी, दोनों प्रकार के गायनों का भी उल्लेख है तथा संगीत-शास्त्र के अन्य पारिभाषिक शब्द भी दिए हैं—

(राग भैरव, चौताला)

भोर ही भैरव राग अलाप्यौ, हो प्यारे ! वंसी में तान ।
 षरज-रिषम-गांधार-मध्यम-पंचम-धैवत-निषाद सप्त सुर गान ॥
 आरोही-अवरोही-अस्थायी-संचारी, ताल, काल और मान ।
 उरप-तिरप, लाग-डाट, देसी-मारग
 'तानसेन' कहै सुनौ साह अकबर, यह विधि मुरली में कीने गान ॥
 भैरव तथा उसकी पत्तियाँ

तानसेन ने कृष्ण की मुरली के माध्यम से भैरव राग और उसकी रागिनियों के नाम गिनाए हैं, साथ ही ऊपर पद के समान सप्त स्वर, तीन ग्राम आदि का भी उल्लेख किया है—

भोर भयें भैरव गावत भर मुरली में, श्री बृन्दावन मधि बनवारी ।
 सप्त-स्वर, तीन ग्राम, इकईस मूर्छना,
 लाग-डाट, उरप-तिरप धारी ॥

मधुमाधवी, भैरवी, बंगाली, बरारी, सेंधवी ये भैरव की संग नारा ।
 'तानसेन' के प्रभु तानन-मानन, मोहि लीनीं ब्रज नारी ॥

25. पुण्डरीक विट्ठल

इस संदर्भ में पुण्डरीक विट्ठल का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। यह संगीतज्ञ खानदेश के अधिपति बुरहानखाँ फारूकी के आश्रय में रहता था। 1562 ई० में अकबर ने खानदेश को करद राज्य बना लिया। उसी वर्ष पुण्डरीक विट्ठल मानसिंह कछवाहा के आश्रय में आ गए। उस वर्ष मानसिंह राजा नहीं बने थे,

केवल कुंअर थे। इसी वर्ष तानसेन भी अकबरी दरबार में सम्मिलित हुए थे। इस प्रकार तानसेन और पुंडरीक विट्ठल समकालीन थे।

26. तानसेन की संतानें

गीतगोविंदकार जयदेव ने अपने विषय में लिखा है 'पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती'। यह इस कारण लिखा था कि पद्मावती ने गीतगोविंद को लोक-प्रिय बनाने में अपने पति की बहुत सहायता की थी। वह अत्यंत रूपवती, सुकंठ तथा प्रवीण नर्तकी भी थी। तानसेन की पत्नी कोई घर-गृहस्थी देखने-वाली महिला थी जो संभवतः कुछ भजन गाने तक सीमित थी अथवा चक्की पीसने के समय ग्राम्यगीत गाती होगी। तानसेन अपनी माता का नाम दे कर संतुष्ट हो गए। उन्होंने अपनी पत्नी का नाम देना उचित नहीं समझा। तानसेन ही क्यों, हिंदी के अनेक प्रख्यात कवियों की पत्नियों के नाम ज्ञात नहीं हैं। कुछ ने तो अपने माता-पिता का नाम भी नहीं छोड़ा है। तानसेन तथा अन्य कवि या गायक सन-संवत् देने में अत्यंत कृपण रहे हैं।

तानसेन द्वारा अपनी पत्नी का नाम न देने के कारण उसकी बहुत फजीहत हुई। उसकी एक पत्नी के रूप में किसी मुस्लिम रमणी की कल्पना करने-वाले विद्वानों की बहुत बड़ी शृंखला है और उसके समर्थन में अनेक दंतकथाएँ गढ़ी गई हैं। उनमें कुछ पर पहले विचार किया जा चुका है। इसका आधार यह माना गया कि उनके दो पुत्र मुसलमान थे और एक हिंदू था।

सरस्वती

तानसेन की सरस्वती नामक एक पुत्री की भी कल्पना की गई है। इस विषय में हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं क्योंकि हमें उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिल सका है। इस कारण हम एक प्रसिद्ध संगीत-शास्त्री के कथन को उद्धृत कर इस विवाद के विषय में अपनी ओर से कुछ नहीं कहेंगे—

“महापुरुषों के वंश से अपना काल्पनिक संबंध स्थापित करने का रोग संगीत-जीवियों में प्रायः रहा है, कुछ तंत्रीवादकों ने स्वयं को तानसेन से संबद्ध सिद्ध करने के लिए (उन्नीसवीं शती ई० में) तानसेन की एक कल्पित पुत्री की कल्पना कर डाली और स्वयं को उनकी संतान कहने लगे। तानसेन की उस काल्पनिक पुत्री सरस्वती का विवाह किसी मिसरीसिंह से कराने के पश्चात् उस कल्पना-प्रसूत मिसरीखाँ का मुसलमान नाम नबातखाँ रख दिया, क्योंकि फ़ारसी में 'नबात' मिसरी को कहते हैं। 'सदारंग' को इस नबातखाँ की संतति-परंपरा में रख दिया और इस कृत्य से 'सदारंग' की सारी संतानें सेनिया बन गई।

1. सुलोचना यजुर्वेदी तथा कैलाशचन्द्र बृहस्पति, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृष्ठ 132।

“तानसेन के किसी दामाद की चर्चा किसी इतिहासकार ने नहीं की। लाल-खाँ विलासखाँ के दामाद थे।

“मिसरीखाँ जन्मजात ढारी और विलासखाँ का शिष्य था। यह औरंगजेब के युग में हुआ। इस निर्दोष मिसरीखाँ को ही मिसरीसिंह या नबातखाँ बना कर तानसेन का दामाद घोषित कर दिया गया।”

इस प्रसंग को यहीं छोड़ कर अब तानसेन के उपलब्ध अथवा ज्ञात पुत्रों की खोज करना परिणामकारी हो सकता है। उसका सबसे बड़ा पुत्र तानतरंग था, यह अबुलफ़जल की आईने-ए-अकबरी से सुप्रतिष्ठित है। वह अकबर के छत्तीस प्रमुख कलाकारों में संभिलित था। तानतरंग के विषय में पहले भी लिखा जा चुका है,¹ उसके विषय में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। कुछ पुत्रों की खोज फकीरुल्ला द्वारा किए गए ‘मानकुतूहल’ के फारसी अनुवाद ‘रागदर्पण’ से की जा सकती है।

इसका विवेचन करने के लिए फकीरुल्ला की कृति की प्राप्त प्रतियों को देखना पड़ेगा।

पहली रामपुर की रजा पुस्तकालय की प्रति है। इसी का अनुवाद हमने ‘मानसिंह और मानकुतूहल’ नाम से प्रस्तुत किया है।

दूसरी प्रति ‘जामिया मिल्लिया’ दिल्ली की हिजरी 1131 की है। इसकी प्रतिलिपि मुहम्मद फ़ाजिलखाँ ग्वालियरी ने उतारी थी और उस पर शाह आलम की मुहर है।

तीसरी प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग ने अपने 1981 के मासिक में प्रकाशित की है। इसका प्रतिलिपि-काल 1196 हिजरी का है और यह तेहरान विश्वविद्यालय की प्रति से उतारी गई है।

चौथी प्रति अलीगढ़ के प्रोफेसर शाहेब सरमदी के पास है जो स्वयं फकीरुल्ला की लिखी हुई है और उसके ऊपर उसके हस्ताक्षर और मुहर भी है।

विवाद-ग्रस्त उद्धरण नीचे लिखे अनुसार है²—“संगीत-रसिकों को ज्ञात होना चाहिए कि ‘राग सागर’ स्वर्गवासी सुल्तान (अकबर) के समय रचा गया है, उसमें बहुत-से राग ‘मानकुतूहल’ के विपरीत लिखे गए हैं। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि ‘मानकुतूहल’ और ‘राग सागर’ के काल में बहुत अंतर है। उस समय नायक (गायनाचार्य) थे, परंतु अकबर के काल में कोई भी गायक संगीत-शास्त्र के सिद्धांतों में राजा मान के काल के गायकों को नहीं पाता। दूसरे, सम्राट अकबर के समय में बहुधा अताई व्यक्ति थे, जिन्हें गायन का व्यावहारिक ज्ञान तो था, परंतु

1. पीछे पृष्ठ 20 देखें।

2. द्विवेदी, मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ 129-130।

ने गायन के सिद्धांत से अपरिचित थे । मियाँ तानसेन, सुभानखाँ फतहपुरी, चाँदखाँ और सूरजखाँ जो दोनों भाई थे, मियाँ चंद जो तानसेन के शिष्य थे, तानतरंगखाँ और विलासखाँ जो तानसेन के पुत्र थे, रामदास, मुड़िया ढाड़ी, मदनखाँ, मुल्ला इशहाकखाँ ढाड़ी (इनके कई शिष्य थे इसलिए इन्हें मुल्ला कहते हैं), खिजरखाँ, इनके भाई नवाबखाँ, हसनखाँ ततवनी जो रईस थे (ततवन अफगानिस्तान में एक स्थान का नाम है, इस स्थान पर गुसुफजई पठानों ने विद्रोह किया था, जिसको राजा वीरबल ने शांत किया था), आदि सभी अताई की श्रेणी में आते हैं । बाजबहादुर जो मालये का नवाब था, नायक चर्चू, नायक भगवान, सूरतसेन जो मियाँ तानसेन के लड़के थे, लाला और देवी (जो दोनों ब्राह्मण भाई थे) और आकिलखाँ जो बादखाँ का लड़का था, ये किसी-न-किसी मात्रा में संगीत के सिद्धांतों से परिचित थे; परंतु फिर भी नायक भत्तू (बैजू), नायक पांडे और बख्शू की भाँति संगीत-शास्त्र के आचार्य नहीं थे.....," आदि-आदि ।

राग-दर्पण की उपर्युक्त चौथी प्रति का अँगरेजी अनुवाद प्रो० सरमदी ने किया है । हमारे प्रश्न करने पर उन्होंने यह सूचना दी है कि तानसेन के केवल एक पुत्र विलासखाँ का नाम बार-बार मिलता है । हमीरसेन तथा उसका पुत्र सुवलसेन भिन्न संदर्भ में मिलते हैं । तानसेन और उसका पुत्र विलासखाँ, दोनों को कलावंत की श्रेणी में रखा है । हमीरसेन 80 वर्ष की आयु तक रहा तथापि उसे कहीं तानसेन का पुत्र नहीं कहा गया ।

प्रो० सरमदी का लिखना है कि तानसेन को कहीं भी 'रागदर्पण' के किसी भाग में अताई नहीं कहा गया है ।

हमारे मत में, विलासखाँ का बार-बार उल्लेख इस कारण किया गया है कि वह जहाँगीर के दरबार का सर्वश्रेष्ठ गायक था और उसके समय में मुसलमान हो गया था ।

इस प्रकार तानसेन के दो पुत्रों की सुनिश्चित जानकारी मिलती है ।

तीसरे पुत्र की खोज कहीं अन्यत्र समकालीन स्रोत से करना पड़ेगी, वह है जगन्नाथ कविराय का एक पद । वह निम्नलिखित है¹ :—

(राग कान्हूरा, धीमाताल)

सर्व कला संपूरन, मति अपार विस्तार मति

नाद कौ नायक 'बैजू' 'गोपाल' ।

ता पाछें 'बक्सू' बिहेंसि बस कीन्हौ, 'महमू' महिमंडल में

उदोत चहुँ चक भरी, डिढ़ विद्या निधान,

सरस धरु 'करन' डिढ़ताल ॥

1. अग्रकाशित 'रागमाला' से ।

‘भगवंत’ सुर भरन, ‘रामदास’ जसु पायौ,
 ‘तानसेन’ जगतगुरु कहायौ, ‘घोंघी’ बानी रसाल ।
 ‘सूरति’ ‘विलास’ ‘हरिदास डागुर’ जगन्नाथ कविराय,
 तिनके पग परसिवे कौं स्याम राम रंग लाल ॥

इस पद में घोंघी के पश्चात और ‘हरिदास डागुर’ के पहले ‘सूरतसेन’ और ‘विलास’ के नाम दिए गए हैं। यहाँ जगन्नाथ कविराय का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। फकीरुल्ला ने जगन्नाथ कविराय के विषय में लिखा है¹—

“तानसेन के बाद इसके समान कोई भी गीत रचने-वाला नहीं हुआ। ये धर्म के आडंबर से परे थे। एक ध्रुपद की रचना कर, मियाँ तानसेन को सुनाई; तानसेन ने उसे बहुत पसंद किया और कहा—यदि आगु ने इनका साथ दिया तो मेरे बाद गीत-रचना में इन्हीं का स्थान होगा। सौ वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हुआ।”

शाहजहाँ के शाही इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी ने ‘पादशाहनामा’ में लिखा है—

“दीर्घजीवी जगन्नाथ शाहजहाँ के शाही दरबार के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और गायक हो गए। पहले उन्हें शाहजहाँ ने कविराय की उपाधि दी और आगे चल कर उन्हें महाकविराय बना दिया। उनके ध्रुपदों से प्रसन्न हो कर शाहजहाँ ने सन् 1634 ई० में इन्हें सोने से तुलवाया था। वह समस्त स्वर्ण तथा साढ़े चार हजार मुद्राएँ भी उसे पुरस्कार में दी गई थीं। शाहजहाँ उसे समय-समय पर पुरस्कृत करता ही रहता था।”

निश्चय ही ऊपर लिखा पद जगन्नाथ कविराय ने तानसेन को दिखाया होगा। इसमें पहली विचित्रता तो यह है कि तानसेन के बड़े पुत्र तानतरंग का उल्लेख नहीं है। दूसरी विचित्रता यह है कि यद्यपि विलास बड़ा भाई था फिर भी उसका नाम सूरतसेन के पश्चात दिया गया है। पहले कथन का कारण यह हो सकता है कि संभवतः तानतरंग ने अकबरी दरबार में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के कारण अपने यशस्वी पिता के प्रति अवज्ञा की भावना उत्पन्न कर ली हो। दूसरे कथन का कारण यह हो सकता है कि सूरतसेन विलास से संगीत में अधिक श्रेष्ठ माना गया हो। यह जो भी हो, तानसेन के इन तीनों पुत्रों का संक्षिप्त परिचय उपलब्ध है।

तानतरंग

तानतरंग का एक पद जो उसने विक्रमादित्य तोमर की पटरानी के विषय में लिखा था वह पहले दिया जा चुका है।

1. द्विवेदी, मानसिंह और मानकृतज्ञ, पृष्ठ 135।

तानतरंग ने अपने पिता के समान आदिदेव महादेव की स्तुति में भी अनेक पद लिखे हैं। उनमें से एक पद यहाँ दिया जा रहा है।

(रागिनी टोड़ी, सूरफाव्ता)

संभु हर रे, गंगाधर रे, कामित जन-मन चिंतामनि
कल्पवृक्ष कामधेनु, काम संपूरन कर रे ॥

कर त्रिसूल त्रिलोचन रे, मात्रा अति अंग ब्याल
बार्षंबर अंबर रे।

नीलकंठ, भस्मभूषन, फनि गुनि गलें मुँडमाल मंडित
खड्वांग खप्पर रे ॥

चन्द्र-किरण भुव कुंडल-मंडित श्रवन,
अखंड उर पन्नग गन रे।

तांडव शिव राजत मुखमंडन भंड-भंड
भंडासुर 'तानतरंग' रे ॥

शंकर के जितने लक्षणों की परिकल्पना प्राप्त होती है, वे प्रायः सब इस पद में मिलते हैं। तांडव के समय उनका मुखमंडल 'भंड भंड भंडासुर' जैसा हो जाता है। यह शक्ति-पूजकों का प्रिय प्रयोग है।

कृष्ण और गोपियों के विषय में तानतरंग के कुछ अत्यंत रससिक्त पद मिलते हैं; बानगी के लिए यहाँ एक ही देना पर्याप्त है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

अब ही डारि दै रे इँडुरिया
कन्हैया मेरे पचरंग पाट की।

हा-हा खात, तेरे पैयाँ परति हौं,
यह लालच मोहि मथुरा नगर हाट की ॥

मेरे संग की दूर निकर गई
हौं कीन्हीं यहि घाट की।

'तानतरंग' प्रभु भगरौ ठान्यौ
हँसत लुगाईं बाट की ॥

इस पद के शब्द 'इँडुरिया', 'हा-हा खात', 'लुगाईं', आदि द्रष्टव्य हैं। सिर पर दधि की मटकिया रखने की इँडुरी भी पाँच रंग की डोरियों से बनाई गई है। इस पद का संभावित आशय यह है—

“मैंने अपने पंचरंगी डोरियों से 'इँडुरी' (सिर पर मटकी रखने के लिए कपड़े की बनाई गई गोलाकार सहारा देने का साधन) बनाई है। कन्हैया उसे छोड़

दे। मैं सिर पर उस पर रख कर दधि की मटकी मथुरा ले जा रही हूँ। मैं तेरी हा-हा खाती हूँ; मुझे मथुरा की हाट में जाने का लालच है (जिससे जल्दी दही बेच कर घर लौट जाऊँ)। मेरी साथिनें दूर निकल गई हैं, मुझे इसी (गोकुल) के घाट पर तूने रोक रखा है। तूने मुझसे 'झगड़ा' क्यों मचा रखा है, मार्ग में चलती हुई स्त्रियाँ मुझ पर हँस रही हैं।"

वास्तव में यह पद अठूठा है; और अकबर के श्रेष्ठतम पद-रचयिताओं के अनुरूप है।

बुंदेलखंडी आभूषणों के नामों-युक्त एक अन्य पद को उद्धृत न करना हमारे लिए संभव नहीं है—

(रागिनी टोड़ी, चीताला)

चुनरी प्यारी पचरंग पहिरें सु पनियाँ गगरिया भरें

आवति हैं सु दोऊ हाथ चैंथी धरें।

गोरे भुजन में गाढ़े बरा, पुनि हाथन में स्याम चुरी,

हथेरी नखन मेंहदी सौं गहिरौई रंग करें ॥

स्वांसन बेसर-मोती हालत, मुख प्रस्वेद, नैना भौहें चढ़ायें,

कानन वारी, गरें मोतिन-लर, कुच उत्तंग, नितंब भारी,

कटि छीनी चलत लफि-लफि परत उर बेनी,

पट भीजे री सु बहुत फुलेल भरें।

जेहरि-जोति सूरज सौ हो उपरि, पाँव महावर,

नखन जोति अरु गुदनां गुदाएँ,

'तानतरंग' के प्रभु विनती करत हौं,

सो हँस बोलत हरें-हरें ॥

तानतरंग का एक पद पंजाबी-मिश्रित भाषा में प्राप्त हुआ है। ज्ञात होता है कि कभी अकबर के साथ तानतरंग लाहौर गया होगा और वहाँ होली के अवसर पर यह पद सुनाया होगा—

(रागिनी मुल्तानी, ताल धमार)

सामल दा होरी खेलन नु माडा आवन दा।

बंसी दी तान बजावन दा, साडा मन ललचावन दा ॥

चोबा चंदन, अगर कुमकुमा, अबीर गुलाल उड़ावन दा।

'तानतरंग' प्रभु रस भरि छिरकत, रहस-रहस गरे लावन दा ॥

तानतरंग ने एक पद कृष्ण की दानलीला पर भी लिखा है¹—

1. अप्रकाशित 'रागामाला' से।

(रागिनी गौर, चौताला)

सूधेई मांगि लै हो दान ।

हम पर-जाति की, रह्यो न नातो,

मन मिली बातें काहे कौं बघारत राखौजू अपनी ग्यान ॥

ऐसी छलबल की बतियाँ काहे कौं करत हौ जू,

ऐसी न देखी-सुनी कहूं कान ।

‘तानतरंग’ प्रभु अपने ही गों की करत

मानत न काहू की आन ॥

यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तानतरंग के पदों में बुंदेलखंड में प्रयुक्त शब्दों का बाहुल्य है ।

यह विषय अतिशय खेद का है कि गोपाचल की छाया में जन्मी उसकी महान संतान का जीवन-परिचय पूरा खोजा न जा सका । उसके पद भी केवल छह ही प्राप्त हुए हैं । निश्चय ही यह संख्या बहुत अधिक होगी । अकबर की छत्तीसी में स्थान प्राप्त तानतरंग के पद इतने कम नहीं हो सकते । तथापि यह सुनिश्चित है कि वह ग्वालियर की रज से प्रसूत महानतम विभूतियों में से एक था ।

ज्ञात यह होता है कि तानतरंग ने अपने दीर्घजीवी पिता के जीवन-काल में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी थी । जहाँगीर के राज्यकाल में उसका उल्लेख नहीं मिलता ।

विलास

विलास का जन्म ग्वालियर में हुआ था, यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है, उसे स्वयं तानसेन ने ही संगीत की शिक्षा दी थी ।

यद्यपि विलास को अकबर के श्रेष्ठ छत्तीस कलाकारों में स्थान नहीं दिया गया है फिर भी वह अकबर की संगीत-शाला का आदर-प्राप्त गायक था ।

पिता की छत्रछाया हटते ही, उदारमना सम्राट अकबर की मृत्यु के पश्चात्, जहाँगीर के राज्य-काल में वह मुसलमान हो गया । यह धर्म-परिवर्तन आस्था अथवा विश्वास के कारण नहीं हुआ था, वरन् संगीतज्ञ के रूप में सुविधा प्राप्त करने के लिए हुआ था । निश्चय ही जहाँगीर, अकबर की अपेक्षा, हिंदू धर्म के प्रति अनुदार था और वह हिंदुओं के अवतारों की खिल्ली उड़ाया करता था ।

जो भी हुआ हो, विलास जहाँगीर के प्रमुख गायकों में स्थान पा गया और वह आगे सदा के लिए विलासखाँ कहा जाने लगा ।

जहाँगीर के समय में विलासखाँ, लालखाँ नामक कलावंत पर बहुत प्रसन्न हो गया और उससे अपनी पुत्री का विवाह कर दिया । इस लालखाँ को जहाँगीर ने ‘गुन समुंदरखाँ’ की उपाधि दी थी ।

विलासखाँ के जितने भी ध्रुपद प्राप्त हुए हैं (जो केवल छह हैं) उन पदों में से एक की भी विषय-वस्तु इस्लाम-परक नहीं है।

तानसेन को अपना गुरु बतलाते हुए विलास ने लिखा है—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

कौन भरम भूल्यौ रे मन अज्ञानी,

सीखत न राग-रंग-तान अक्षर सुद्ध बानी ।

और स्वार्थ सौं जनम गंवायौ,

विद्या बात अधिक सयानी ॥

जे साधु गुनी भये, तिनकों न गुन की मति ठानी ।

‘विलास’ के प्रभु कौजू भलौ चाहत,

तौ मिलाऔ तानसेन गुरु-ज्ञानी ॥

“यदि संगीत-विद्या का ज्ञान प्राप्त करना हो तब हे अज्ञानी मन, स्वार्थ में जन्म मत गँवा; इस मार्ग पर चल और यदि संगीत के क्षेत्र में भला चाहता है तो महान ज्ञानी गुरु के समान तानसेन के चरणों में बैठ ।”

संगीतकारों की आराध्या सरस्वती की बंदना करते हुए विलास ने लिखा है—

(राग भैरव, चौताला)

जँ सारदा भवानी भारती विद्या,

नाम वेद जस गावै ।

वानी वाक् इड़ा देवी, सरस्वती मन भावै ॥

मंगला ज्ञान रूपा वर्नमालिनी,

बीना-पुस्तक धारिनी, जो तोहि ध्यावै ॥

कहै ‘विलास’ त्रय ताप मिटै,

निर्बोध बोध होवै, बांछित फल पावै ॥

अपने लिए केवल हरिनाम का आधार बतलाते हुए विलासखाँ ने लिखा है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

मेरें तौ हरि नाम कौ आधार, जिन रचौ संसार,

काम-क्रोध-लोभ महा जंजार ।

जिन रच्यौ अरस-कुरस जिमी-आसमान,

निरंजन निराकार साँचौ, क्यों न सेवौ परबरदिगार ॥

काहे कौं हूजै गुनहगार, काहे कौं लीजै एतौ भार,

सोई रसवाद क्यों न तजियै, जाको नाम रोजगार ।

‘विलास’ के प्रभु सौं पाक-साफ रहियँ तैयार,

जनम जीव नहीं बारंबार ॥

इस पद में विलास ने पूर्ण वैराग्य भाव प्रस्तुत किया है। वह रोजगार छोड़ने की भी बात करता है तथा निरंजन निराकार की सेवा करने का उपदेश देता है। फारसी के शब्दों का प्रयोग मुगल दरबार का प्रभाव है।

विलास की रचनाओं के पदों में से केवल एक पद ‘बनवारी की बिरहनी’ के विषय में दे कर हम यह प्रसंग समाप्त करेंगे—

(रागिनी टोड़ी, चैताला)

हमारी सुरत बिसारी बनवारी हो,

सरबस दै-दै हारी, तौ हू न भये सुपनैं अपने मुरारी।

वे मोहन मधुकर समान अनगन बेलि चित लावन धावत,

मो बिरहन बिरह ब्यापत, मनमथ धीर धरें न धारी ॥

ऐसे निठुर निरदई के बस भई

जोई-जोई कही, सोई सही बिरह बावरी।

‘विलास’ के प्रभु कौं हौं न पत्याऊँ,

जनम छाड़ौं जु रहौं न्यारी ॥

इन पदों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि सम्राट अकबर के बाद कट्टर मुस्लिम बादशाहों के शासन-काल में संगीतकारों ने नाम-मात्र को इस्लाम ग्रहण कर लिया था तथापि वे हृदय से हिंदू रहे। विलासखाँ के पद इस तथ्य के अकाट्य प्रमाण हैं। आधुनिक ध्रुपद-गायकों में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है।

यह संभव है कि विलास के और पद प्राप्त होने पर इस विषय पर अधिक प्रकाश पड़ सके। अपने लंबे जीवन में उसने बहुत अधिक पद लिखे होंगे।

विलासखाँ के एक वंशज बंगाल पहुँचे थे। विष्णुपुर के राजा रघुनार्थसिंह (द्वितीय) तानसेन के पुत्र विलासखाँ के वंशज बहादुरखाँ को अपने पास ले आए थे। बहादुरखाँ के साथ प्रसिद्ध मृदंगवादक पीरबख्श भी आए थे।¹ विलासखाँ के जहाँगीर को संबोधित पद बंगाल में ही मिल सकेंगे।

विलासखाँ के वंशज विष्णुपुर पहुँचने का परिणाम यह हुआ कि वहाँ तानसेन के भी श्रेष्ठ पद पहुँच गए। निश्चय ही राजा रघुनार्थसिंह अत्यंत सुसंस्कृत व्यक्ति ज्ञात होते हैं। इस कारण विष्णुपुर में तानसेन के तुलनात्मक रूप में अत्यंत उच्च कोटि के पद प्राप्त हुए हैं।

1. मदनलाल व्यास, बंगाल की ध्रुपद परंपरा (रमेशचन्द्र बट्टोपाध्याय के ग्रंथ ‘विष्णुपुर’ से प्राप्त), ध्रुपद सम्राट श्री चंदन जी स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ 126।

सूरतसेन

तानसेन का तीसरा पुत्र सूरतसेन था, इसका जन्म भी ग्वालियर में हुआ था; क्योंकि तानसेन जब राजा रामचन्द्र की राजसभा में पहुँचे थे तब उनकी वय इतनी नहीं थी कि उनके कोई संतान उत्पन्न हो सकती, कम-से-कम उनकी धर्म-पत्नी की वय उस समय संतानोत्पत्ति के योग्य नहीं रही होगी।

सूरतसेन को भी संगीत की शिक्षा उनके यशस्वी पिता ने ही दी थी। यद्यपि वह स्वयं की गणना अकबर के छत्तीस सर्वश्रेष्ठ गायकों में नहीं करा सका तथापि उसे अकबर का संरक्षण प्राप्त था।

सूरतसेन के जीवन की घटनाओं का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता, केवल यह कहा जाता है कि वह मुसलमान नहीं हुआ। इसका आशय यह है कि उसका शरीरान्त अकबर के राज्य-काल में ही हो गया था, अन्यथा जहाँगीर ने राज्य-काल में वह मुसलमान बन जाता। सूरतसेन के पद बहुत कम संख्या में प्राप्त हो सके हैं। अन्य की खोज करना आवश्यक है।

अकबर ने जब जोधाबाई (मरियम मकानी) से (सन् 1562 में) विवाह किया, तब हिंदू धर्म को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक कार्य किए थे। तानसेन के अकबरी दरबार में प्रवेश के दूसरे वर्ष ही 1563 ई० में हिंदुओं की तीर्थयात्राओं पर लगाया जाने वाला कर बंद करने का आदेश दे दिया। अगले वर्ष हिंदुओं पर लगाया जाने वाला जज़िया भी बंद कर दिया। संभवतः हीरविजय सूरि के प्रभाव से सप्ताह में कुछ दिनों के लिए पशु-वध बंद करा दिया और हिंदुओं की भावना का समादर करते हुए गोवध का निषेध कर दिया। इससे विमुग्ध हो कर सूरतसेन ने अकबर की मंगल-कामना में एक पद सुनाया¹—

(राग ईमनी-विराजरी)

राजलीला रहो जग पर विस्वभर करै धर्म।

जे भूले ते कहैं परचाही तू आयु जगबंदन साहि अकबर
परम पुरिष परसोत्तम पाराकर्म ॥

पुनि जीव-जंत तंत्र-मंत्र गानि रछिया क्रपाल हो दयाल
औतार लीऔ सब सिस्ट पूरन ब्रह्म।

जे ग्यानी भक्त गुन गावैं प्रभु 'सूरति' कौं,

अस्ट सिधि-रिधि नव-निधि ततछिन जगाईये कर्म ॥

इस पद के स्थायी, अंतरा और आभोग में अकबर की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा की गई है। संचारी अर्थात् तीसरे चरण के कुछ शब्द-समूह विचार योग्य हैं।

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

2. प्रभुदयाल मीतल, संगीत सम्राट तानसेन—जीवनी और रचनाएँ, पृष्ठ 208।

अकबर ने 'जीव-जंतु' तथा 'गानि' अर्थात् गऊओं की, कृपालु हो कर, रक्षा का आदेश दिया था। 'तंत्र-मंत्र' की रक्षा करने से आशय यह ज्ञात होता है कि तंत्र-मंत्र के साधकों की भी रक्षा की गई थी।

सूरतसेन के दो पद 'ध्रुपद-स्वर-लिपि' में भी प्राप्त हुए हैं।¹ उन दोनों का देना यहाँ विशेष रूप से आवश्यक है। एक पद में 'आदि नाद प्रणव, अर्थात् ॐकार के सान्निध्य में रहने की याचना करते हुए सूरतसेन ने लिखा है—
(रागिनी भूपाली, चीताला)

आदि नाद प्रणव रूप संपूरन दीजियै तुअ प्रसाद,
ब्रह्मा-विष्णु-महेस त्रिविध गुन-निधान ।

आदि भूत अविनासी अनंत अगम अपार,
अति आनंद अपूर्व भांति निरंजन ॥

सकल रूप कारन, सकल दुख निवारन,
भव-बंधन तारन सुर-नर-मुनि बंदन ।

चतुर्वेद रटत हैं यह बानी तुम्हरी नाम,
'सूरतसेन' मानी देहु कृपा भिक्षा मांगी,
सदा रहूँ पास जन-जन ॥

एक अन्य पद में ध्रुपद-विद्या को कठिन बतलाते हुए सूरतसेन लिखते हैं—
(रागिनी कुमाय, तिताला)

षरज सुर साधै, सोई गुनी जो सुद्ध मुद्रा सुद्ध बानी
सुद्ध राग अंग गावै ।

द्रुत-मध्य-बिलंबित करि दिखावै,
आरोहन-अवरोहन लाग-डाट सो बतावै ॥

करत कंठ प्रकास उक्ति-युक्त-अनुप्रास,
तब बढत घटत साँस गुरन तैं भेद पावै ।

कहै मियाँ 'सूरतसेन' सुनियै सब गुनी जन,
ध्रुपद-विद्या कठिन, एक जनम नहि आवै ॥

इन दोनों पदों की विशेषता यह है जब सूरतसेन ॐकार की आराधना करते हैं तब वह केवल 'सूरतसेन' रहते हैं, और जब संगीत का ज्ञान बघारते हैं, तब 'मियाँ सूरतसेन' हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि 'मियाँ' उस समय केवल आदरास्पद शब्द माना जाता था।

कला वंश-परंपरागत चलती रही है। महान गायक और श्रेष्ठ कवि तानसेन के तीनों पुत्रों को ये गुण दाय में प्राप्त हुए थे।

1. प्रभुदयाल मीतल, संगीत श्रमण तानसेन, पृष्ठ 208 ।

27. जन्म-वर्ष

इतना लिखने के उपरांत तानसेन के जन्म-वर्ष की खोज कुछ अटपटी मानी जा सकती है, तथापि उस पर अनेक कारणों से विचार करना आवश्यक है।

तानसेन के जन्म-वर्ष का विवेचन करने-वाले विद्वानों के अनेक वर्ग हैं।

एक वर्ग उन विद्वानों का है, जिन्हें तानसेन के पद पर्याप्त संख्या में या विलकुल प्राप्त नहीं थे, और उन्होंने केवल अनुमान के आधार जन्म-वर्ष विनिश्चित किया है।

दूसरा वर्ग विन्सेण्ट स्मिथ और उनके अनुयायियों का है, जो तानसेन की किसी छवि के आधार पर तानसेन के जन्म के समय की परिकल्पना करते हैं।

तीसरा वर्ग उनका है, जिन्हें तानसेन द्वारा विरचित महाराज मानसिंह तोमर (1486-1516 ई०) को संबोधित पद ज्ञात है।

एक और वर्ग है, जिसके एक-मात्र प्रतिनिधि सरयूप्रसाद अग्रवाल हैं। उन्हें तानसेन द्वारा मानसिंह तोमर के उल्लेख-युक्त पद तो प्राप्त हुआ था, तथापि वे उसे मानसिंह कछवाहा से संबंधित कर बैठे।

छवि-वाली जमात पर अगले परिच्छेद में विचार किया जाएगा। यहाँ पहले वर्ग के अभिमतों का विवेचन किया जाए।

हिंदी साहित्य के इतिहास के विद्वान लेखकों ने तानसेन को कवि के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं समझा। उन्होंने तानसेन का नाम केवल गायक के रूप में जाना या सुना था और उसे अकबर के इतिहास-लेखकों के लिए छोड़ दिया था। केवल शिवसिंह सेंगर और मिश्रबंधु इसके अपवाद हैं।

शिवसिंह सेंगर ने तानसेन का जन्म-संवत् 1588 (1531 ई०) लिखा है।¹ यह संवत् कैसे प्राप्त किया गया, इसका कोई आधार नहीं दिया गया है। मिश्र-बंधुओं ने शिवसिंह सेंगर का अनुकरण किया है।² ग्रियर्सन ने अपनी अंगरेजी पुस्तक 'मॉडर्न बरनाकूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' में भी शिवसिंह सरोज के तथ्य ज्यों-के-त्यों रख दिए। सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने तानसेन के जन्म-वर्ष का अनुमान 1520 ई० किया है।³ यह स्मरणीय है कि तानसेन के मानसिंह तोमर संबंधी पद की जानकारी बंगाल में नहीं थी, सुनीति बाबू को भी नहीं। बंगाल में तानसेन के वे पद प्राप्त हुए हैं जो तानसेन के पुत्र विलासखाँ के वंशज वहाँ ले गए थे।⁴

1. शिवसिंह सेंगर, शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ 429।

2. मिश्रबंधु, मिश्रबंधु विनोद, भाग 1, पृष्ठ 282।

3. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 147।

4. पीछे पृष्ठ 88 देखें।

एक काजी मेराज धौलपुरी ने उर्दू 'आजकल' में एक लेख लिखा है। उसका एक उद्धरण कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने अपने शोध-प्रबंध में दिया है¹—

“हमारे खानदान में सीनः वसीनः अक्रवाल (आनुवंशिक उक्तियों) और बुजुर्गों से मखतूतात (कागद-पत्रों) की विना (आधार) पर तानसेन की विलादत (जन्म) का साल 931 हि० (सन् 1524) माना जाता है।”

कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने ठीक ही लिखा है—“अत्यंत मनोरंजक बात यह है कि विक्रमाजीत (अर्थात् विक्रमादित्य तोमर) द्वारा तानसेन को उपाधि देने की बात काजी साहब तहरीर फरमाते हैं.....विक्रमाजीत की मृत्यु के समय (सन् 1526 ई०) में तानसेन की आयु केवल दो वर्ष होना चाहिए....” आदि-आदि।

तात्पर्य यह है कि काजी साहब के कागज-पत्र और वंशानुगत उक्तियाँ सभी कोरी गप्पें हैं, उनका तानसेन के पदों से कुछ संबंध होना भी ज्ञात नहीं होता।

यहाँ किसी दिलीपचन्द्र वेदी का उल्लेख भी मनोरंजक है। राहुल सांस्कृत्यायन ने उन्हें ‘भारतीय संगीत के मर्मज्ञ’ कहा है।² हो सकते हैं; तथापि तानसेन के विषय में राहुल जी ने वेदी जी के कथन को आधार मान कर अनेक अनर्गल तथ्य उद्धृत किए हैं। वेदी के अनुसार तानसेन का जन्म 1512 ई० में हुआ। साथ ही वेदी ने यह भी लिखा है कि तानसेन ब्रह्मभट्ट थे और लाहौर छोड़ कर दिल्ली आ गए थे, तानसेन के ताऊ बाबा रामदास थे, गौस का पहला नाम अमरदास था—आदि-आदि। इन कथनों पर टिप्पणी करना समय नष्ट करना है।

यह स्मरणीय है कि कोई भी लेखक अपनी कृति की केन्द्रीय विषय-वस्तु पर अधिक श्रम करता है। आनुषंगिक विषयों पर अधिक ध्यान न दे कर कुछ इधर-उधर के तथ्य ले कर उसे किसी प्रकार पूरा कर देता है। महार्पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन प्राचीन भारतीय संस्कृति के महान शोधक थे। उनके ग्रंथों की सूची उनके बहु-आयामी अध्ययन की प्रतीक है। ‘अकबर’ पुस्तक की मूल सामग्री अत्यंत शोधपूर्ण है। तथापि तानसेन केवल आनुषंगिक रूप से आए हैं। इस कारण इस महान् विद्वान् ने दिलीपचन्द्र वेदी की किसी कृति का सहारा लिया।

वस्तुतः आनुषंगिक विषयों पर लिखने-वालों को इस दुर्दशा का सामना करना ही पड़ता है। स्मिथ का ‘अकबर द ग्रेट मुगुल’ भी इसी प्रकार का उदाहरण है।

कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने अपने एक ग्रंथ में लिखा है,³ “तानसेन का जन्म 1500 ई० के आसपास मानसिंह तोमर के राज्य-काल में हुआ था”। उसी पुस्तक

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 190।

2. राहुल सांस्कृत्यायन, अकबर, पृष्ठ 36।

3. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि, पृष्ठ 53।

में आगे लिखा है—“तानसेन का जन्म-वर्ष 1492-93 ई० है”¹ अपनी एक अन्य पुस्तक में भी पूर्वोक्त विद्वान ने तानसेन का जन्म-वर्ष ‘प्रायः सन् 1491’ बतलाया है।² एक अन्य ग्रंथ में अनुमानित वर्ष ‘1494 ई० अथवा उसके पूर्व’ कहा है।³ एक अन्य ग्रंथ में यह सन् 1453 दिया है।⁴

वास्तव में इन सभी अनुमानों का ध्रुव यह तथ्य है कि तानसेन किस वय में पदों की रचना कर उन्हें कुशलतापूर्वक गाने में निपुण हो गए थे।

दूसरे विद्वान जिन्हें तानसेन के मानसिंह-संबंधी पद का ज्ञान है, वे हैं प्रभुदयाल मीतल। इन्होंने अपनी पुस्तक ‘संगीत सम्राट तानसेन’ में लिखा है⁵—“उनका (तानसेन का) जन्म-संवत् 1550 के पूर्व का हो सकता है, बाद का नहीं।” संवत् 1550 (1550—57=1493) सन् 1493 बैठता है।

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने सन् 1955 में प्रकाशित ‘संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ’ में राजा मानसिंह से संबंधित तानसेन का पद दिया है। तानसेन के जन्म-वर्ष के विषय में अपना स्वयं का कोई मत नहीं दिया है। इस पुस्तक के पृष्ठ 152 पर शिवसिंह सेंगर से सहमत होते हुए तानसेन का जन्म-संवत् 1588 ठहराया है (अर्थात् 1588-57—1531 ई०)। हम पहले लिख चुके हैं कि शिवसिंह सेंगर ने अपने कथन का कोई आधार नहीं दिया है। इन्हीं विद्वान लेखक की दूसरी कृति ‘कवि तानसेन और उनका काव्य’ में अनेक विचित्रताएँ हैं। संबद्ध पद में ‘राजा मान’ के स्थान पर ‘राजा राम’ हो गया। मुखपृष्ठ पर तानसेन की प्रामाणिक छवि दी गई है और भीतर किसी दड़ियल मुगुल अमीर के चित्र के नीचे ‘तानसेन’ लिख दिया है। तानसेन के जन्म-वर्ष के विषय में उन्हें राजा रामचन्द्र का सम-सामयिक बतलाया है। इस विद्वान के कथनों को गंभीरता से लेना व्यर्थ है।

तानसेन का जन्म-वर्ष उसके द्वारा मानसिंह को संबोधित पद के आधार पर विनिश्चित करना होगा। वह पद ऊपर उद्धृत किया गया है।⁶ उसका निर्माण बँधी-बँधाई उक्तियों के रूप में हुआ है। ‘चरंजीव रहौ जौलों ध्रुव-मेरु-तारौ’ जैसे कथन किसी भी साधारण दरबारी कवि के छंदों में मिल जाएँगे। अन्य कथन भी इसी प्रकार के हैं।

इसी कारण हमने तानसेन का जन्म-वर्ष 1500 ई० माना है, उसके पूर्व मानने में तानसेन के प्रथम पद में प्रौढ कवित्व का अभाव न होता। तानसेन के

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 283।

2. लेखक पूर्वोक्त, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 189।

3. लेखक पूर्वोक्त, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 104।

4. लेखक पूर्वोक्त, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृष्ठ 123।

5. प्रभुदयाल मीतल, संगीत सम्राट तानसेन—जीवनी और रचनाएँ, पृष्ठ 6।

6. पीछे पृष्ठ 8 देखें।

कवित्व का क्रमिक विकास हुआ था। मानसिंह-संबंधी पद से चलते-चलते तानसेन कवित्व के उस उच्च शिखर पर पहुँच गए थे, जहाँ उन्होंने 'उषा' से संबंधित पद लिखा था।¹

28. कंठ-विकार

तानसेन के इतने लम्बे आगरा-निवास के विषय में उनके वर्ष-प्रति-वर्ष के क्रिया-कलापों का विवरण नहीं मिलता। अबुलफजल ने केवल उनके दरबार में प्रवेश का वर्ष दिया है, तथापि तिथि या मास नहीं दिया है। दूसरा उल्लेख मृत्यु के विषय में किया है और इस प्रसंग में तिथि, मास तथा वर्ष, सभी दिए हैं। इन दो घटनाओं के बीच तानसेन-विषयक अधिक जानकारी नहीं दी है। अकबर के व्यस्त राजनीतिक जीवन की घटनाओं की तुलना में उसकी सांस्कृतिक या मनोरंजनात्मक दिनचर्या लिखने के लिए इतिहासकार कम समय निकालते रहे हैं।

मुल्ला बदायूनी ने तानसेन-विषयक कुछ तथ्य दिए हैं। अकबरी दरबार में रहते समय तानसेन-विषयक एक तथ्य उसने लिखा है, जिसके अनुसार सन् 1575 ई० में तानसेन के कंठ की ध्वनि जंगली जानवर के समान हो गई थी।² कथा यह बतलाई गई है : फंजी और अबुलफजल के पिता शेख मुबारक अपने चौथेपन में अकबर बादशाह के विश्वसनीय हो गए थे। शेख को कव्वाली-गायन का अच्छा ज्ञान था। एक बार बादशाह की इस विषय में शेख से बातचीत हुई। बादशाह ने कहा कि इस विषय में जो साधन और सामग्री हमने एकत्र किए हैं, वे हम तुमको दिखलाएँगे। इसके अनुसार बादशाह द्वारा तानसेन तथा अन्य कलावंत शेख के पास भेजे गए और उनसे कहा गया कि शेख के घर जा कर वे अपना संगीत-संबंधी पांडित्य और कौशल दिखाएँ। शेख पहले अन्य कलावंतों के गायन सुनते रहे और फिर तानसेन से कहा कि हमने सुना है कि तुम भी कुछ गाते हो। तानसेन ने अपना गायन सुनाया। उसे सुन कर शेख ने कहा कि यह तो जानवरों के समान भायें-भायें हैं।

शेख मुबारक अत्यंत वृद्ध थे और कव्वाली गायन सुनने के अभ्यस्त थे। ध्रुपद-गायकी से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था; उन्होंने यदि ध्रुपद की आलापकारी को जानवरों के समान भायें-भायें कह दिया, तब कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे ही अवसरों के लिए संस्कृत के किसी कवि ने लिखा है कि विधाता मेरे भाग्य में और जो चाहे लिख दे परंतु अरसिक को काव्य सुनाना—'मालिख, मालिख, मालिख'।

सन् 1575 ई० के उपरांत तानसेन अकबरी दरबार में 15 वर्ष और रहे। यह संभव नहीं था कि उस दरबार के भारतीय, ईरानी, तूरानी, कश्मीरी संगीतज्ञों का मुखिया स्वयं मौन हो जाता। राजा-महाराजा कभी इतने दयालु नहीं रहे कि

1. यह पद 'कवि तानसेन' परिच्छेद में 'प्रकृति वर्णन' के प्रसंग में आगे दिया गया है।

2. बदायूनी, मुत्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड 2, पृष्ठ 273।

वे किसी कार्य के लिए अनुपयुक्त हो गए किसी व्यक्ति को काम पर लगाए रहें और भरण-पोषण करते रहें। ऐसे अनुपयुक्त व्यक्तियों को दूध की मक्खी के समान निकाल फेंका जाता रहा है।

तथापि, वृद्धावस्था में कंठ-विकार वय-जन्य सामान्य व्याधि है; फिर भी अनुभवी तानसेन ने एक उपाय निकाल लिया था। अजमखाँ का कथन है¹: “जब उसे अकेले गाने का आदेश दिया जाता था तब भी वह सदा सपर्दाइयों (स्वर-प्रदायक, साथ-साथ सुर लगाने-वालों) के साथ गाता था।”

29. संगीत-सूर्य का अवसान

अबुलफ़जल ने लिखा है कि तानसेन की मृत्यु 26 अप्रैल 1589 को हुई थी। बादशाह ने यह आदेश दिया कि समस्त गायक तथा वादक विवाहोत्सव जैसा मधुर गीत गाते हुए तानसेन का अंतिम संस्कार करें। इस प्रकार का सम्मान पहुँचे हुए संतों को ही दिया जाता था, तानसेन भी उनसे किसी प्रकार कम न थे। शेख सलीम चिश्ती की शव-यात्रा के साथ अनेक कव्वाल कव्वाली गाते हुए गए थे। तानसेन कव्वाली के गायक नहीं थे, अतएव उनकी शव-यात्रा में सभी गायक-वादक गए थे और वे मधुर गीत गा रहे थे।

तानसेन के मरने पर अबुलफ़जल ने लिखा है कि उस युग का आनंद धूमिल हो गया तथा सम्राट अकबर ने कहा था²—“तानसेन की मृत्यु ने मधुर तान को मौन कर दिया, ऐसा ज्ञात होता है कि पिछले एक हजार वर्ष में ऐसे बहुत थोड़े कलावंत होंगे जो तानसेन की तान के माधुर्य और उसकी कला की समता कर सकें।”

उसी समय अकबर ने दो छंद कहे थे—

दीन जान सब दीन, एक दुरायौ दुसह दुख ।

सो अब हमकौं दीन, कछु नहि राख्यौ बीरवर ॥

× × ×

पीथल सूँ मजलिस गई, तानसेन सूँ राग ।

हँसिबौ-रमिबौ-बोलिबौ गयौ बीरवर साथ ॥

बीरबल की मृत्यु पर सम्राट ने दो दिन भोजन नहीं किया। वास्तव में उसकी वेदना अत्यंत विषम थी।

पीथल (पृथ्वीराज राठौर) तथा बीरबल की मृत्यु तानसेन की मृत्यु के पहले हुई थी। अकबर के हृदय का अनुताप कोई भुक्त-भोगी ही समझ सकता है।

1. प्रेमलता शर्मा द्वारा लिप्यंतरित तथा संपादित ‘सहसरस’ में अजमखाँ की फारसी में लिखी भूमिका का हिंदी अनुवाद, पृष्ठ 12 ।

2. अबुलफ़जल, अकबरनामा, भाग 3, पृष्ठ 816 (अंगरेजी अनुवाद)।

उसने अपने नव-रत्नों को बड़े प्रयास से सँजोया था। अत्यंत विशाल साम्राज्य स्थापित करने के उपरांत उस महावली को वृद्धावस्था में अपने आत्मीय साथियों से बिछुड़ना पड़ा। इन तीनों की मृत्यु के उपरांत केवल अबुलफ़ज़ल ही उसे सांत्वना देने के लिये शेष बचा था। दुर्भाग्य से उसे भी उसके प्रिय पुत्र सलीम 'शेखू बाबा' ने मरवा डाला। यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि शेख की सन् 1602 में हत्या हो जाने के उपरांत बादशाह अत्यंत निष्क्रिय हो गया था। प्रकृति की माया विचित्र है। जब मित्रों और स्वजनों की सर्वाधिक आवश्यकता होती है तभी वे एक-एक कर छोड़ कर चले जाते हैं। लम्बी आयु का यह सबसे क्रूर दुष्परिणाम है।

महान सिद्ध व्यक्तियों को आगामी घटनाओं का आभास हो जाता है। तानसेन को भी अपने आसन्न अंतकाल का आभास हो गया था। 89-90 वर्ष की वय में मृत्यु के पूर्व कुछ-न-कुछ रोग सताता ही है। तानसेन यद्यपि सिद्ध साधक थे, तथापि वे प्रकृति के अनिवार्य नियमों में बाधा न डाल सकते थे, न डालना चाहते थे।

निर्वेद

मृत्यु के पूर्व सबसे पहली स्थिति यह आती है कि संसार की किसी वस्तु में भी मन नहीं लगता और एक प्रकार का निर्वेद का भाव हृदय पर छा जाता है। ऐसे समय पर तानसेन ने गाया—

(रागिनी मुलतानी धनाश्री, चीताला)

ए ईश्वर ! मो हिय को जानत,

गति जो बीतति, बिना देखें तुव दरस ।

एक निमिष जु पै नाँहिन निरखत मैं,

साँस अकुलात, कछु न सुहात, मन-नैन दोऊ जात तरस ॥

भव-भंजन, मन-रंजन, काटत, दुख द्वंद,

ऐसौ जग मैं व्यापि रह्यौ सरस ।

तुही आदि, तुही अंत, तारन तरन,

'तानसेन' तुही अरस-परस ॥

महायात्रा की ओर

जब तानसेन बीमार हो कर शय्या पकड़ गए तब लोग उनके स्वास्थ्य-समाचार पूछने आने लगे। आजीवन गांधर्व-विद्या का साधक उस समय भी गा उठा—

(राग मुलतानी धनाश्री, चीताला)

तेरी गति-और गति मोपे बरनी ना जात नारायन निरंजन,

निराकार परमेश्वर सप्तदीप शिवशंकर ।

शिवशंकर अवतार कौं लेवत हरत भरत बित,

देखत तेरी विडंबना सब ही, सकल स्त्री-पुरुष, नारी-नर ॥

तू ही जल-थल, तू ही पसु-पंछी, तुही पवन-पानी

तुही झरती-अंबर, तुही चंद्र, तू ही सूरज, बसौ जो जल-घर ।

‘तानसेन’ के प्रान उड़त हैं, जानत हैं सब घर-घर ॥

आगरा के घर-घर के लोग जान गए कि उनके नगर के महान गायक का अन्त समय आ गया, वे उनके स्वास्थ्य-समाचार जानने के लिए आने लगे तथा संभवतः उनके जीवन की मंगल-कामना भी करने लगे । और तानसेन आगतों को अपनी आस्था और विश्वास के स्वर सुनाने लगे ।

प्रभु से प्रेम-वारि की याचना

कुछ समय पश्चात्, घंटे हो सकते हैं, दिन भी, कुछ पता नहीं है, तानसेन के प्राण प्रभु के समक्ष रो उठे¹—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

प्रान मेरौ ही रोवत है विरह प्रान-वल्लभ निसिदिन,

हे हरि शरनागत दीन, दीन कौ काहे न मिलौ ।

ढूँढि हिय न पावै निधि या विधि तेरी हृदं नाथ,

दीनानाथ कौन गति कीन मेरे अपराधन के फल ॥

सूँन प्रान सूँन मन सूँन हृदयासन,

अंधियारौ भयौ विश्व-संसार हे नाथ ।

‘तानसेन’ बिनती करत आओ हिउँ जगन्नाथ

मरु-भूमि प्रेम-वारि वरसि प्रान कीजै सीतल ॥

मृत्यु के समय मानव को अपराध-बोध सताता है । इसी भावना से अभिभूत हो कर तानसेन का हृदय मरु-भूमि के समान हो गया, जिसमें उसके प्राण-मन और प्रभु के बिराजने का हृदयासन भी सूना हो गया और परम साधक कवि-गायक जगन्नाथ से प्रेम-धन की वर्षा कर उसके हृदय-रूपी मरुस्थल को शीतल करने की प्रार्थना करने लगा ।

गोलोक-बिहारी के आश्रय में

यह स्थिति अधिक दिन न चल सकी । विधाता ने उन्हें संसार का प्रपंच त्यागने का प्रबल आमंत्रण भेजा । अंतिम बार फिर अलौलिक रूप से उस अंतकाल में तानसेन का स्वर फूट पड़ा²—

(रागिनी भैरवी, चौताला)

अंतकाल कृपा करौ, हिया पर हरि ठाढ़्यौ,

कमल नैन कमलापति मुरली अधर ललित

मधुर बंकिम भौं बिहारी ।

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, तानसेन, पृष्ठ 160 ।

2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 159 ।

बदन-खीन, इंद्रिय-हीन, पाप सुमिरि-सुमिरि अस्थिर प्राण,
निराशा प्रबल, बिस्व अंधियार, गेह छोड़ प्राण जात हरि ॥

विषम आपद सुख-संपत्त-धन-जन-दारा

बांधव-बन्धु-सुत सब कौं छोड़ि चलि हौं ।

एक करम अब संग रहिहै,

पतित-पावन प्रभु-जनार्दन, पतित-दीन 'तानसेन',

विश्व-मोहन, पारगामी, प्राण-आश्रय दीजै, गोलोक-बिहारी ॥

तानसेन की यह अंतिम प्रभु-वंदना किसी परम सिद्ध साधक द्वारा ही की जा सकती है। अंत काल आ गया है, उस समय उस साधक के हृदय में उसे केवल प्रभु ही खड़े दिखाई दे रहे हैं। उनकी मनोहारी झांकी भी उनके मानस-पटल पर अंकित हो गई; वे प्रभु वारिज-नयन हैं, तुलसी के राजीव-लोचन कमलापति विष्णु तनू को कृष्ण रूप धारण कर अधरों पर वेणु धारण कर उसे ललित-मधुर स्वर में बजा रहे हैं, बंकिम-भ्रू हैं उन बाँके बिहारी की।

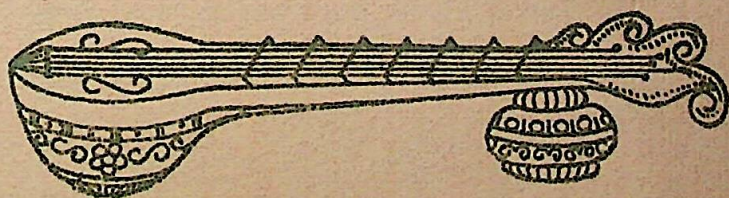
तानसेन ने फिर अपनी ओर निहारा और सोचा : "समस्त इंद्रियाँ क्षीण हो गईं और समस्त शरीर कृष हो गया।" जब अंतस की ओर उनका ध्यान गया तब तानसेन की आत्मा पुकार उठी— "अपने पापों का स्मरण कर मेरे प्राण अस्थिर हो रहे हैं, परिणाम का स्मरण कर भवितव्य के प्रति घोर निराशा हो रही है, संसार में अंधकार-ही-अंधकार दिखाई दे रहा है। हे प्रभु अब मेरे प्राण यह देह-रूपी निवास छोड़ कर जा रहे हैं, संसार में अंधकार-ही-अंधकार दिखाई दे रहा है। ऐ प्रभु, अब मेरे प्राण इस देह-रूपी निवास को छोड़ कर जा रहे हैं, मैं तो विषम विपत्ति के कारण सुख-संपत्ति, धन, प्रियजन, बंधु-बांधव-पुत्र-कलत्र, सब-कुछ छोड़ कर (तुम्हारे पास) आ रहा हूँ, अब मेरे साथ पूर्व कर्म ही आएँगे। हे पतित-पावन प्रभु जनार्दन, तानसेन भले ही पतित हो, तुम तो गोलोक में विहार करने वाले हो, मेरे प्राणों को भी (अपने चरणों में) स्थान देने की दया करो। (अन्यथा आपके पतित-पावन विरुद्ध का क्या होगा ?)"

ऐसी प्रार्थना आसन्न-मृत्यु के समय कौन कर सकता है ? किस प्रकार का व्यक्ति कर सकता है ? कितनी दीर्घ साधना से सम्पन्न महात्मा कर सकता है ? अंत समय मुख से राम नाम निकले इसके लिए भारत के बहुसंख्यक साधक साधना करते हैं। प्रभु ने तानसेन की आर्त पुकार सुन ली और उन्हें अपने श्रीचरणों में चिर-शांति प्रदान की।

फिर क्या हुआ ? बंधु-बांधव, सुत-कलत्र आदि ने क्या किया ? यहाँ इस प्रसंग के संबंध में केवल यही कहा जा सकता है कि ग्वालियर की गोद का अमूल्य रत्न खो गया, 'ग्वालियर की तान' निस्वर हो गई; भारत के संगीत-सूर्य का अवसान हो गया।

तावत्सर्व

व्यक्तित्व





—नी— राजाश्रय

1. बाजिदअली शाह

अवध के नवाब बाजिदअली शाह ने तानसेन के राजाश्रय के विषय में लिखा है¹—

“मियाँ तानसेन ने इसे जरिया-आमदनी बता कर (यानी बना कर) अकबर के सामने हिर्स (लोभ या लालच) का हाथ फैलाया। तानसेन की इस हरकत से गाने-बजाने का असर मिट्टी के बराबर हो गया।”

नवाब बाजिदअली शाह को अवध के अत्यंत समृद्ध प्रदेश की अपार संपत्ति अपने पुरखों से दाय में मिली थी। इस उद्धरण से हमें फ्रांस की एक सम्राज्ञी की कथा स्मरण हो आती है। फ्रांस में एक बार घोर अकाल पड़ा और जनता को रोटी मिलना कठिन हो गया। जनता महल के चारों ओर रोटी के लिए चिल्लाने-चीखने लगी। अपने सुसज्जित शयन-कक्ष की खिड़की से झाँकते हुए सम्राज्ञी ने पूछा कि ये लोग क्यों चिल्ला रहे हैं? सेविका ने कहा कि इन्हें रोटियाँ नहीं मिल रहीं। सम्राज्ञी ने कहा कि इन लोगों से कहो कि यदि रोटी नहीं मिलती, तब केक या बिस्कुट क्यों नहीं खाते ?

यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि बाजिदअली शाह ने संगीत और नृत्य को अपनी कुत्सित वासना की तृप्ति का साधना बनाया था और अगणित युवतियों को, उनकी स्वेच्छा अथवा विवशता से, अपनी इन्दर-सभा (इन्द्र-सभा) में सम्मिलित कर लिया था; उसके दरबार में भी अनेक वेतन-भोगी संगीतज्ञ थे। उसने अवध की नवाबी को भी चौपट कर दिया। वेगम जीनतमहल के निरंतर परामर्श की उपेक्षा कर उसने सैन्य-शक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। अँगरेजों ने इसका पूरा लाभ उठाया। उन्होंने अवध का प्रदेश हड़प लिया। वह पुंसत्वहीन कायर नवाब कुछ नहीं कर सका। अँगरेजों के पैर भारत में सुदृढ़ता से जम गए।

ऐसा बाजिदअली कुछ भी बकवास कर सकता है। उसने तानसेन के पद भी पढ़े या सुने नहीं होंगे; वह तो कबूली, ठुमरी, दादरा, नकटा आदि का प्रेमी था। समकालीन लेखक मुहम्मद करम इमाम ने उस युग के संगीत के विषय में लिखा है²—“हिंदी की गजल, ठुमरी, दादरा, नकटा ही सुना जाता है। रही ठुमरी, वह

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 204 की पाद-टिप्पणी में उद्धृत।

2. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 81 पर उद्धृत।

थी निरर्थक। खेद है कि रईसों की तबियत ऐसी हो गई। वस पहरों बेहूदगी की मार है, उस पर शैतान की फटकार! अफसोस मनुष्य लुप्त हो गया, ईश्वरी सृष्टि गधों के अधीन हो गई.....।”

तानसेन के पद तुलनात्मक रूप में राज-स्तुति में बहुत अल्प संख्या में (कुल 44) मिले हैं। उसके अधिसंख्यक पद अगाध भक्तिपूर्ण, उच्च श्रेणी के कवित्वयुक्त तथा वैराग्य-भावना से परिपूरित हैं।

वाजिदअली शाह ने यह भी नहीं सोचा कि तानसेन यदि राजाओं के दरबार में न रहते तो खाते क्या और बाल-बच्चे कैसे पालते? क्या वे सबको शैल-सुता के समान अपर्णा बना देते। वाजिदअली शाह को भी फ्रांस की सम्राज्ञी के समान यह कहना चाहिए था कि तानसेन को स्वयं तथा अपने तथा वीवी-बच्चों को मुर्गमुसल्लम, कीमा, कबाब या बिरयानी खिलाने चाहिए थे; या हवा खा कर गुजारा करना चाहिए था। वास्तविकता तो यह है कि विलासी साधन-संपन्न वाजिदअली को यह सोचने का समय ही नहीं था कि लोगों को रोटी-रोजी के लिए कुछ-न-कुछ करना पड़ता है। इस तथ्य का अनुमान केवल वे भुक्त-भोगी ही कर सकते हैं जो गरीबी में पले-बढ़े हों।

अत्यंत ग्लानि की बात यह है कि वाजिदअली के कथन से स्वरैख्य करते हुए ‘बृहस्पति’ कैलाशचन्द्र ने लिख मारा: “हम तो तानसेन की विवशता को इसका प्रधान कारण समझते हैं, धीरे-धीरे उनकी अन्तरात्मा घुट कर रह गई होगी।”

एक स्थान पर तो उन्होंने लिख दिया है कि तानसेन ने यह भी कहा था कि “अकबर मुझ पर मेहरबान हैं, मैंने तभी उसके चरण छुए हैं।” इसके प्रमाण में कैलाशचन्द्र बृहस्पति ने जिस पद को उद्धृत किया है उसका संबंधित अंश इस प्रकार है—

विचित्र धन दीदार पायनि परि संसार जुहार।

अपनी असमर्थनीय स्थापना का समर्थन करने के लिए अर्थ का अनर्थ करने में ये पंडितराज प्रवीण थे। यह हम कदापि नहीं मान सकते कि उन्हें ‘पायनि परि संसार जुहार’ का अर्थ नहीं मालूम था। तानसेन यह कह रहा था कि संसार के सब लोग अकबर के पैरों में पड़ कर उसे जुहार अर्थात् नमन करते थे। अकबर के प्रताप से भी उपर्युक्त विद्वान् पूर्णतः परिचित थे। तानसेन चरण छूते अवश्य थे; तथापि अपने आराध्य, माता-पिता और गुरु के अतिरिक्त उस आत्माभिमानी महापुरुष ने किसी मानव के चरण छुए हों, यह हमें ज्ञात नहीं है।

कैलाशचन्द्र अपने किसी मत पर सदा जमे नहीं रहते। उनकी विकासशील प्रज्ञा उनके अभिमतों को बदलती रहती है। अपने शोध-प्रबंध में उन्होंने तानसेन की ‘अन्तरात्मा को घुट कर’ समाप्त करा दिया। कुछ वर्ष उपरांत सन् 1976 के

कुछ पूर्व लिखा¹—“ऐसी स्थिति में यह कहा जाना ठीक नहीं कि तानसेन लोभ-वश अकबरी दरबार में आए थे।”

तथास्तु ! इस कथन से हम अक्षरशः पूर्णतः सविनय सहमत हैं। तथापि संगीत-शास्त्र के बेचारे वे शिक्षार्थी क्या करें जिनके द्वारा ये कथन श्रद्धापूर्वक पढ़े गए होंगे, यह मार्ग-निर्देशन करने के लिए हम समर्थ नहीं हैं।

तानसेन ने अपने-आपको शिवार्पण करते हुए एक पद लिखा है, उसका संबंधित अंश नीचे लिखे अनुसार है²—

‘तानसेन’ अति अनूप, शंकर को निरख रूप,
बारों कई क्रोड भूप चरनन में वाके ॥

जो भक्ति-भाव में अभिभूत हो कर शंकर के चरणों में करोड़ों राजाओं को निछावर कर सकता है उस तानसेन की अगाध श्रद्धा के विषय में जितना लिखा जाए, थोड़ा है। इसमें तानसेन की अंतरात्मा घुटी हुई दिखाई नहीं देती, वह केवल अपने आराध्य के प्रति घुटी या मिली है। इसके अतिरिक्त महादेव, महाकाली, राम, राधा और कृष्ण के विषय में उनके पद द्रष्टव्य हैं। वे आगे दिए गए हैं।

2. सुनीति बाबू का अभिमत

तानसेन के विविध राजसभाओं में रहने का उनकी गरिमा पर क्या प्रभाव पड़ा अथवा उन राजसभाओं की श्रीवृद्धि हुई, इसे हम महान भाषाविद् विद्वान तथा भारतीय संस्कृति के उद्गाता सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय (जिन्हें विद्वान प्रेम से सुनीति बाबू कहते हैं) की अननुकरणीय शैली में प्रस्तुत करना उचित समझते हैं³—

“तानसेन राजसभाओं के कवि थे; जिन श्रेष्ठ तथा महिमामय राजाओं के बीच रहे, संसार के इतिहास में वे अन्यतम थे; वे अकबर के भी श्रेष्ठ (उपयुक्त) सभासद और गायक थे। किंतु उनके काव्य की विषय-वस्तु देश के जनसाधारण की अनुभूति से बाहर (वाह्य) नहीं थी—राजसभाओं में रह कर भी उन्होंने जो रचनाएँ की थीं वे पंडित और अभिजात-वर्ग, एवं वणिक तथा योद्धा, एवं इसी प्रकार दीन, झोपड़ियों के निवासी, गृहस्थ, शिल्पी, कृषक तथा सभी के मर्म को स्पर्श करती हैं।

1. सुलोचना यजुर्वेदी तथा कैलाशचन्द्र बृहस्पति, खुसरो, तानसेन तथा अग्न कलाकार, पृष्ठ 130।
2. यह पूरा पद अन्यत्र ‘शिव-शिवा-भक्त तानसेन’ परिच्छेद में दिया गया है।
3. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 155। (बंगाली से अनुवाद की मूल-चूक के लिए क्षमा-याचना सहित। बंगला भाषा के शब्द, व्याकरण और कुछ प्रयोग हिंदी से भिन्न होते हैं। कुछ मूल शब्द कोष्ठक में दे दिए गए हैं।)

‘आविर् अकृत प्रियाणि’ ।

जो बातें सबको प्रिय हैं, जिन्हें हम प्रेम करते हैं, वे सब बातें उन्होंने सब के समक्ष नवीन रूप में प्रस्तुत की हैं; उन्होंने काव्य और संगीत (के रसिकों) पर आलोकपात कर उन्हें प्रकाश-पूरित किया है। तानसेन की कविता में भारतीयता (जातीयता) के रूप की प्रतीति होती है।”

आगे सुनीति बाबू लिखते हैं¹—

“तानसेन के ‘विनय’ अथवा प्रार्थनात्मक पद सरल, अकपट विश्वास और प्रीति में अतुलनीय हैं। उसके धर्म-विषयक पदों में हमें एक तात्त्विक मर्मज्ञ तथा भक्त-प्राण होने का परिचय मिलता है। अपने देश की संस्कृति के प्रधानतम विषयों से वह सुपरिचित दिखाई देते हैं, एवं उनके श्रद्धावान तथा आस्थाशील यथार्थ ब्राह्मण होने का परिचय भी तानसेन के पदों में मिलता है। शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, देवी, सरस्वती प्रभृति महान् और विराट कल्पना में अंतर्निहित गंभीर चिंतन, ज्ञान और उपलब्धि एवं सौंदर्य-बोध का कोई भी पक्ष उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है। वेद, उपनिषद से ले कर महाभारत, पुराण एवं तंत्र और मध्ययुग के साधु तथा संतगण का भवित-भाव—इन समस्त के बीच में जो ज्ञान, जो सत्यदृष्टि, जो प्राण एवं जो रस-सृष्टि है, तानसेन उन सबके ही उत्तराधिकारी हैं। देखा यह गया है कि तानसेन के ध्रुपद-गान सुनने से श्रोता के मन में प्रार्थना और आत्म-निवेदन का दिव्य भाव जाग्रत होता है।”

3. तानसेन के स्तुत्य

सोलहवीं शताब्दी के हिंदी कवियों को स्पष्टतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले विभाग में तुलसी और सूर आते हैं। तुलसी के समस्त काव्य का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसमें केवल राम और उनकी मंडली (भरत, लक्ष्मण, सीता, हनुमान), शिव, पार्वती तथा कुछ अन्य देवी-देवताओं, शवरी तथा केवट जैसे भक्तों का ही उल्लेख मिलता है। सूर ने कृष्ण-चरित्र के अतिरिक्त केवल अपने गुरु बल्लभाचार्य का ही नाम लिया है। इनका काव्य अदृष्ट लाभ के लिए होता था। स्वामी हरिदास के पदों में कुंजविहारी और राधा तथा गोपियों के अतिरिक्त किसी का उल्लेख तक नहीं है। एक कवि रहीम भी थे जिन्होंने सम्राट अकबर का भी नाम नहीं लिया है। अपनी विपन्न अवस्था में भी केवल राजा रामचन्द्र बघेला का ही ‘अवध नरेश’ के रूप में उल्लेख किया है;² वह भी अपने लिए कुछ याचना करने के लिए नहीं। राणा अमरसिंह से भी उन्होंने कुछ मांगा नहीं, उसे सात्वना ही दी थी।

दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि नरहरि महापात्र हैं। जो भी राजा, सामंत या

1. पूर्वोक्त पृष्ठ 156।

2. पीछे पृ० 76 देखें।

राजकुमार उन्हें मिल सके, सबकी प्रशंसा में एक-दो छंद सुना दिए और अर्थ-लाभ लिया। गंग भी पीछे नहीं रहे। उनके द्वारा तो हुमायूँ, शेरशाह, अकबर और न-जाने किस-किस की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ लिखी गईं। महाकवि केशव ने इंद्रजीत और राय प्रवीण की अतिरंजित प्रशंसा में छंद लिखे ही; राजा वीरबल, राणा अमरसिंह आदि की प्रशंसा में भी अति कर दी और रहीम, उनके पुत्र तथा जहाँगीर और उसके अधिकांश सरदारों की, जिनमें श्यामसिंह तोमर भी हैं, चाटुकारिता करते रहे। उन सबसे उन्हें कुछ-न-कुछ पाने की आशा थी। वीरसिंहदेव और उसके कुछ दरबारियों की प्रशंसा करके वे केवल निर्वासन तथा तिरस्कार पा सके। जब कुछ लोगों पर हट्ट हुए तब उनकी भर्त्सना करने से भी नहीं चूके। राजा टोडरमल को तो उन्होंने उनके मरने के पश्चात् भी कोसा। इस प्रकार से पतिराम सुनार को भी वे अमर कर गए। जब प्ररलोक का स्मरण आया तब रामचन्द्रचन्द्रिका लिखने बैठे और उसमें 'सनाढ्य जाति गुणाढ्य है' जैसे कथन करने लगे। वीरसिंहदेव बुंदेला को भी सनाढ्य-वृत्ति हरने के लिए अनिष्ट की कामना करते रहे। तात्पर्य यह है कि वे राग-द्वेष से सदा पीड़ित रहे।

तानसेन ने मध्यम मार्ग अपनाया। उन्होंने केवल मानसिंह तोमर, राजा रामचन्द्र बघेला और अकबर को स्तुत्य बनाया। किसी अन्य व्यक्ति का नाम भी उन्होंने नहीं लिया। वीरबल तथा रहीम के विषय में उन्होंने क्या लिखा है यह पहले कहा जा चुका है।¹ सूफियों में उनकी श्रद्धा, कुछ सीमा तक, शेख सलीम चिश्ती पर थी; तथापि उनके विषय में प्राप्त पद मात्र औपचारिक हैं। अल्ला, नबी, पीर-पैगंबरोँ से संबंधित पदों में कवित्व के दूर तक दर्शन नहीं होते। कुछ पद तो ऐसे हैं जो मुसलमानों की दृष्टि में कुफ्र थे, यह पहले भी लिखा जा चुका है। उनकी सर्वाधिक श्रद्धा भगवान् कृष्ण पर थी। शिव तथा काली के कुछ पद श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे तांत्रिक थे। सूर्य के वे भक्त थे, क्योंकि उन पर सूर्य-सहस्रनाम का प्रभाव था। राम की स्तुति में उनके बहुत थोड़े पद मिले हैं, तथापि वे अगाध श्रद्धा से परिपूरित हैं। गणेश और सरस्वती-विषयक पद मात्र परंपरागत हैं। संगीत के सिद्धांतों के प्रतिपादन में उन्होंने अनेक पदों की रचना की है। युग के प्रवाह के अधीन उन्होंने नारी के रूप का वर्णन किया है और नायिका भेद भी लिखा है। उनके सर्वश्रेष्ठ पद प्रकृति-वर्णन के हैं। इन सबको राज-स्तुति नहीं कहा जा सकता। अधिकांश तो अदृष्ट फल-प्राप्ति के ही साधन हैं।

राजा रामचन्द्र बघेला तथा अकबर के समक्ष उन्होंने कितने निर्भीकता के पद लिखे हैं, वे पहले दिए जा चुके हैं।

ऐसे कवि-गायक को राजाश्रित चाटुकार नहीं कहा जा सकता।

1. पीछे पृ० 74 तथा 77 देखें।

4. दरबार में गायन की रीति

बीजापुर के सुलतान इब्राहीम आदिल शाह (1580-1627 ई०) ने ध्रुपद-गायन तानसेन के शिष्य बख्तखाँ से सीखा था। सुलतान तानसेन के विषय में जानने के लिए बहुत उत्सुक रहता था। अकबर ने असदबेग¹ को सुलतान के दरबार में राजदूत के रूप में भेजा।

दरबार में आदिलशाह ने उससे बात करने के स्थान पर अपने-आपको संगीत सुनने में व्यस्त रखा। बीच-बीच में वह असदबेग के प्रश्नों का उत्तर हाँ-ना में देता रहता था। सुलतान ने असदबेग से राजनीति के विषय में कोई प्रश्न न पूछ कर यह पूछा कि तानसेन अकबरी दरबार में किस स्थिति में गाते हैं?

असदबेग ने उत्तर दिया कि जब दरबार में औपचारिक रूप से गाना होता है तब तानसेन खड़े होकर गाते हैं, अन्यथा प्रत्येक उत्सव में अथवा रात्रि में वे बैठ कर ही गाते हैं।²

तानसेन को दरबार की औपचारिकता निभाना अनिवार्य था। अकबर का शाही दरबार उस समय के सभी राजाओं तथा सम्राटों की राजसभा की तुलना में अत्यधिक भव्य था और उसमें समकालीन सम्राटों के राजदूत उपस्थित होते थे, जिनमें इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ (प्रथम) का राजदूत भी सम्मिलित है।

इस प्रकार, औपचारिक दरबार में तानसेन खड़े हो कर गाते थे तब यह नहीं मानना चाहिए कि उनकी प्रतिष्ठा में कोई कमी थी अथवा उनकी अंतरात्मा घुट कर रह गई थी। ऐसे दरबारों में सम्राट अकबर के नवरत्नों के सभी व्यक्तियों को खड़ा रहना पड़ता था, उनमें बैठने का अधिकार केवल कुछ विशेष व्यक्तियों और शाहजादों को था।

5. पदों का अंतर्संक्षिप्त

इस प्रसंग में इस बात पर भी विचार कर लेना आवश्यक है कि तानसेन ने दो हजार से अधिक पदों की रचना की थी। इनमें से केवल लगभग 400

1. असदबेग अकबर का बहुत विश्वासपात्र था और कूटनीतिज्ञ भी था। जब बीरसिंह दुंदेला ने अबुलफजल की हत्या कर दी तब अकबर ने उसे पकड़ने के लिए विशाल सेना भेजी जिसका नेतृत्व त्रिपुरदास (फारसी के पतरदास) रायरायन को दिया गया, साथ ही श्यामसिंह तोमर भी अपनी सेना के साथ भेजे गए। जब बीरसिंह को एरछ के गढ़ में घेर लिया गया, तब श्यामसिंह से मिल कर रात को बीरसिंह भाग निकले। त्रिपुरदास रात को गहरी नींद सोता था, अतएव बीरसिंह उसी के शिविर में हो कर भागे। किस की भूल से बीरसिंह भागा था, इसकी जाँच के लिए अकबर ने असदबेग को नियत किया। वह दोनों में से किसी को ठुठ नहीं करना चाहता था। अतः अनेक मास पश्चात् उसने बादशाह से कहा कि गलती हो सकती है, बदनियती किसी की नहीं थी। (ग़ालियर के तोमर, पृष्ठ 257।)

2. नसीर अहमद द्वारा संपादित 'किताबे नौरस', प्रस्तावना, पृष्ठ 49।

पद हमें अध्ययन के लिए उपलब्ध हो सके हैं। जो नवीन पद प्राप्त होने की आशा है वे किसी राजा-महाराजा को संबोधित नहीं होंगे। अब तक प्राप्त पदों में केवल दो पद मानसिंह को संबोधित हैं, उसमें से भी एक में स्तुत्य का परिवर्तन कर दिया गया है। विक्रमादित्य, इसलामशाह तथा आदिलशाह से संबधित पदों में तानसेन के नाम-युक्त कोई पद नहीं हैं। दौलतखाँ उजियाला के नाम से जो एक पद प्राप्त हुआ है वह अपने-आप में अनूठा है, वह स्तुति न हो कर एक प्रेमी जीव का मान-मनावन है। महाराज रामचन्द्र बघेला की राजसभा में वे सात वर्ष रहे तथापि उनकी प्रशंसा में केवल 11 पद मिले हैं। सम्राट अकबर के दरबार में तानसेन लगभग 27 वर्ष रहे। सम्राट की प्रशंसा में केवल 24 पद प्राप्त हुए हैं।

शेष सभी पदों में अधिकांश उनके आराध्यों को समर्पित हैं; कुछ संगीत-शास्त्र के विवेचन-युक्त हैं, कुछ प्रकृति के सौंदर्य से संबधित हैं। नारी-रूप के वर्णन-युक्त भी कुछ पद प्राप्त हुए हैं। ऐसी दशा में तानसेन पर राजाश्रय का कितना प्रभाव पड़ा, यह सहज अनुमान किया जा सकता है।

अंत में हम इस प्रसंग को केवल यह कह कर समाप्त करेंगे कि तानसेन विभिन्न राजसभाओं में रहे अवश्य, जिनमें से कुछ कल्पित कर्दम-मय भी थीं, फिर भी वे निष्कलुष अपूर्व सुरभि-युक्त प्रफुल्ल पद्मवत् बने रहे।

तानसेन की छवि

किसी व्यक्ति के स्वभाव और व्यक्तित्व का आभास उसकी मुखाकृति देख कर लगाया जा सकता है। सुकरात के समान उसके कुछ अपवाद भी होते हैं, परंतु अपवाद तो अपवाद ही हैं।¹

तानसेन के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसकी प्रामाणिक छवि की खोज आवश्यक है।

तानसेन की जितनी छवियाँ (पोर्ट्रेट्स) अथवा प्रतिकृतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनके आधार पर तानसेन के अकबरी दरबार में प्रवेश के विषय में अनेक विरोधाभास-युक्त कथन किए गए हैं। इसके प्रमुख प्रवर्तक हैं भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान विन्सेण्ट स्मिथ। स्मिथ ने प्राचीन भारत का इतिहास-ग्रंथ 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया' लिख कर बहुत बड़ा कार्य किया था, यद्यपि उसमें कहीं-कहीं भारतीयों को अँगरेजों की सार्वभौम सत्ता की अनिवार्यता का पाठ पढ़ाने का कुत्सित प्रयास भी किया गया है; फिर भी ग्यारहवीं शताब्दी तक का भारत का इतिहास सुव्यवस्थित रूप से लिखने का प्रथम प्रयास स्तुत्य था। वास्तविकता तो यह है कि भारत के अतीत की खोज का कार्य मुख्यतः अँगरेजों ने अथवा अन्य योरोपीय विद्वानों ने ही किया है। उन्होंने अथक प्रयास न किया होता तब अशोक के लेख अपाठ्य ही रहते।

स्मिथ ने अकबर के विषय में बहुत अच्छा ग्रंथ लिखा है। तथापि उस ग्रंथ में स्मिथ ने तानसेन के विषय में भी लिख मारा। तानसेन-विषयक उनके अनेक कथन अनर्गल और मिथ्या हैं। इसका प्रधान कारण उनके द्वारा तानसेन के पदों के अध्ययन का पूर्ण अभाव था।

इस विद्वान ने तानसेन की किसी छवि के आधार पर यह लिख दिया कि उनके अकबरी दरबार में प्रवेश के समय उनकी वय 30 वर्ष की थी।² एक अन्य पुस्तक में विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है³—“फलक नौ में प्रसिद्ध पद-रचयिता और गायक तानसेन की अकबर के दरबार में आने के समय की छवि है—यह घटना

1. सुकरात (सोक्रेटीज) से किसी ने कहा कि तुम्हारी मुखाकृति से ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारा चरित्र अच्छा नहीं होना चाहिए। सुकरात ने कहा कि आपका कथन विलकुल ठीक है, मैंने कठोर साधना कर अपने स्वभाव को बदला है।
2. विन्सेण्ट स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगुल, पृष्ठ 822।
3. विन्सेण्ट स्मिथ, इंडियन पोर्ट्रेट्स अंडर द मुगुल, पृष्ठ 56-57।

सन् 1562 में हुई थी....वे गायकों के एक छोटे-से समूह के साथ सम्राट के नीचे चित्र के बाईं ओर खड़े दिखाई देते हैं ।" यहाँ वय का निर्धारण नहीं है ।

स्मिथ के अनुसार तानसेन का जन्म अक्रवरी दरबार के प्रवेश-वर्ष (1562—30=1532) 1532 ई० में हुआ था । इन 32 वर्ष में तानसेन 7 वर्ष बांधवगढ़ में भी रह लिए, 25 वर्ष की वय में वे राजा रामचन्द्र बवेला के आश्रय में पहुँचे, सन् 1544 से 1556 ई० तक 12 वर्ष ग्वालियर में सूर-सुलतानों के दरबारों में रहे, अर्थात् 13 वर्ष की वय में वे सूर-सुलतानों के दरबारी गायक बने । लगभग 10 वर्ष मानसिंह तोमर तथा विक्रमादित्य की राजसभाओं में रहे, अर्थात् जन्म के एक वर्ष पहले । इस प्रकार तानसेन की छवि के आधार पर स्मिथ की या अन्य किसी की स्थापना तर्क-संगत नहीं है ।

इस संदर्भ में मोतीचन्द्र और कार्ल खण्डालवाला द्वारा संपादित 'ललितकला' के सन् 1955-56 के अंक में प्रकाशित एक संपादकीय टिप्पणी उपयोगी है । उसके इतिहास-विषयक उल्लेखों पर ध्यान देना अनिष्टकारी हो सकता है । केवल तानसेन की छवियों का वर्णन ही अत्यंत उपयोगी है ।

मोतीचन्द्र या खण्डालवाला की इस टिप्पणी में तानसेन की निम्नलिखित छवियों का उल्लेख और कुछ वर्णन दिया गया है—

1. राष्ट्रीय संग्रहालय

राष्ट्रीय संग्रहालय में समकालीन छवि—इसे समकालीन बतलाया गया है और इसके बनाने का समय सन् 1585 तथा 1590 ई० के बीच कहा गया है ।¹

तानसेन आर्थिक रूप से अत्यन्त समृद्ध तथा संतुष्ट व्यक्ति थे । जो छवि दी जा रही है वह 60-62 वर्ष के व्यक्ति की होना संभव है । वैसे भी हाथ की बनी छवि यांत्रिक छाया-चित्र नहीं होती, उसके आधार पर वय निर्धारित करना युक्ति-युक्त नहीं है । यह सब इस कारण लिखना पड़ा कि इस टिप्पणी के लेखक, दोनों में से कोई भी हों, स्मिथ से भी आगे बढ़ गए और उन्हें इस छवि में भी तानसेन की वय लगभग 25 वर्ष दिखाई दी । ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 20-25 वर्ष की वय के आधार पर तानसेन की ज्ञात जीवनी के साथ तारतम्य बैठाना असंभव है । तब तो राजा मानसिंह तोमर की राजसभा में वे जन्म के छह वर्ष पूर्व पहुँचे होंगे !

2. प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय

तानसेन की एक छवि प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई, में है । वह सत्रहवीं शताब्दी की बतलाई गई है । उसके मुख की समता हमें राष्ट्रीय संग्रहालय की छवि से कम मिलती दिखाई देती है, तथापि मोतीचन्द्र जी का दावा

1. यह छवि इस पुस्तक में दी गई है ।

है कि वह तानसेन की ही छवि है। हो सकता है; मोतीचन्द्र इस विषय के विशेषज्ञ थे।

3. म्युनिसिपल संग्रहालय, इलाहबाद

तानसेन की एक छवि इलाहबाद के म्युनिसिपल संग्रहालय में है। वह राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, की प्रतिकृति ज्ञात होती है। इसके अंकन का समय सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध कहा गया है।

इसके उपरांत अकबर, तानसेन और स्वामी हरिदास की संयुक्त छवि का उल्लेख है। यह वही है जो इस पुस्तक में भी दी जा रही है। उसका वर्णन उपयोगी नहीं होगा। तथापि यह कहना आवश्यक है कि अठारहवीं शताब्दी में बने किशनगढ़ शैली के चित्र के आधार पर अकबर और तानसेन की वय निश्चित करना ठीक नहीं है। तीनों की छवियाँ अवश्य वास्तविक दिखाई देती हैं।

4. अप्रामाणिक छवियाँ

फिर कुछ अशुद्ध रूप से पहचानी गई छवियों का उल्लेख है। विन्सेण्ट स्मिथ द्वारा प्रकाशित जिस छवि का वर्णन दिया गया है, उसके विपरीत यह छवि एक भिक्षुक फकीर किशोर की है जिसके सामने भिक्षा-पात्र है और वह बाएँ हाथ में दुफनी लकड़ी लिए है।

फिर तानसेन की दो छवियाँ पर्सी ब्राउन द्वारा अशुद्ध रूप से पहचानी गई हैं।

सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने भी कुछ छवियों का उल्लेख किया है, तथापि वे कहाँ हैं यह नहीं बतलाया। अकबर, तानसेन और स्वामी हरिदास की संयुक्त छवियाँ अनेक बनाई गई थीं। उनमें से एक का वर्णन सुनीति बाबू ने भी किया है। वे कहाँ खोजी जाएँ यह ज्ञात नहीं।

5. कलकत्ता संग्रहालय

विक्टोरिया मेमोरियल संग्रहालय, कलकत्ता - क्रमांक 196, 198, 1204 में अकबर के तीन चित्र, 1065 में जोधाबाई के साथ अकबर, 195 क्रमांक-वाले चित्र में अकबर के नवरत्नों के चित्र हैं।

6. प्रामाणिक छवि के आधार पर व्यक्तित्व की खोज

अब समकालीन छवि (प्रोट्रेट), अर्थात् वह छवि जो इस पुस्तक में दी गई है, उसके अनुसार तानसेन के व्यक्तित्व पर विचार किया जा सकता है। उसकी 'अटपटी' पगिया के नीचे कितना प्रतिभाशाली तथा संवेदनशील मस्तिष्क और मन छिपा है इसका अनुमान तो उसके स्वर-विहीन उपलब्ध पदों में प्राप्त संगीत-शास्त्र के गंभीर ज्ञान तथा उत्कृष्ट कवित्व, प्रकृति-वर्णन, सौंदर्य-वर्णन और आराध्य के प्रति अगाध श्रद्धा से ही जाना जा सकता है। इस छवि में तानसेन का रंग कुछ साँवला है, उसकी मूँछें पतली और नीचे की ओर झुकी हुई हैं। इस छवि में

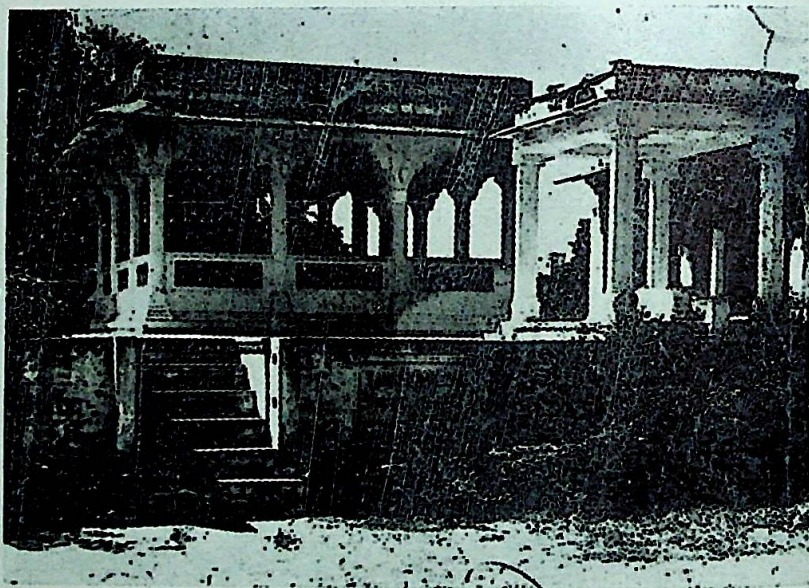


विन्सेंट स्मिथ का तानसेन



पर्सि ब्राउन के तानसेन

छायाचित्र : ऋतुराज-आशुतोष द्विवेदी



संगीत-सम्राट तानसेन का तथाकथित मकबरा (ग्वालियर)

(पृष्ठ 140)

तानसेन की मुख-मुद्रा महान चितक के समान विचार-मग्न और स्वप्निल-सी दिखाई देती है। हाथ तथा उँगलियाँ कलाकारों के समान कोमल हैं, उनसे संवेदन-शीलता प्रकट होती है। दिखाई यह देता है कि वह गायन करते समय कुछ आगे को झुके हुए स्वयं ताली बजा रहे हैं।¹ इस छवि में जामा पैरों तक गया है। इस प्रकार का जामा अकबर के समय में नहीं पहना जाता था। ज्ञात यह होता है कि तानसेन ने इस प्रकार का जामा पहनना मानसिंह तोमर के समय से ही प्रारंभ कर दिया था और फिर उसे कभी बदला नहीं। कमरबंद में कटार और छुरी दिखाई देती है। दरबारी पोशाक में कम-से-कम इतने शस्त्र रखना अनिवार्य था।

-
1. वेद-पाठ में हाथ से स्वर-विधि (ऊपर-नीचे तथा आड़े हाथ संचालन कर) दिखाना अनिवार्य था। ध्रुपद-गायन के समय हाथों से ताली बजाना उसी परंपरा से चला आया है। कुछ गायक अपने एक हाथ को जीव पर भार कर काल का मापन करते हैं। परन्तु ऐसे गायक आधुनिक हैं।

—ग्यारह— तीर्थ-यात्राएँ

तानसेन देवी-देवताओं के परम भक्त थे। वे निश्चय ही इनसे संबंधित तीर्थ-यात्राओं पर गए होंगे। वे बहुधा कुछ स्थलों पर स्वयं अकेले जाते थे, और कुछ स्थलों पर अकबर के साथ भी जाते थे।

अन्य देवी-देवताओं की अपेक्षा उनके सर्वाधिक एवं अत्यंत मार्मिक पद कृष्ण-भक्ति के ही प्राप्त होते हैं, उन्होंने ब्रज की अनेक यात्राएँ की थीं।

पन्द्रहवीं शताब्दी में कृष्ण-भक्ति की जो मंजुल धारा ग्वालियर में निसृत हुई थी, सोलहवीं शताब्दी में वह विशाल महानद की अनेक शाखाओं के रूप में ब्रज में दिखाई देती है। इनमें सर्वाधिक प्रभावशाली वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग था। तानसेन के संदर्भ में दूसरा संप्रदाय स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय था। इन्हीं दो संप्रदायों से तानसेन का संबंध कहा जाता है।

ब्रज की इन यात्राओं के जो विवरण प्राप्त होते हैं, वे कुछ मिथ्या जनश्रुतियों पर आधारित हैं, कुछ तथ्य इतिहास-सम्मत हैं।

1. महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाईं विट्ठलनाथ

वल्लभाचार्य ने सन् 1501 ई० में गोकुल में श्रीनाथ जी के मंदिर की स्थापना कर सोलहवीं शताब्दी का उद्घाटन किया था। यहीं उनका पुष्टिमार्ग विकसित होना प्रारम्भ हुआ। 1530 ई० में आचार्य जी का तिरोधान हो गया। उधर भारत की राजनीति के पटल पर मुगलों का अभ्युदय हो रहा था। उस साम्राज्य के संस्थापक बाबर का देहांत भी 1530 ई० में ही हुआ था।

वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना अत्यंत सात्विक रूप में की थी, वे बालकृष्ण के उपासक थे। उनके उत्तराधिकारी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उसे अत्यंत आडंबरपूर्ण रूप दे दिया। उनके समय में पुष्टिमार्ग का गहरा संबंध मुगल दरबार से हो गया। सन् 1577 ई० में विट्ठलनाथ जी की अकबर से प्रथम भेंट आगरा में हुई थी। वहाँ उन्हें अकबर से जागीर भी मिली और कुछ न्यायिक अधिकार भी। उसके उपरांत अकबरी दरबार के अनेक अधिकारी गोस्वामी जी की ओर आकर्षित हुए।

इस पुष्टिमार्ग के सम्मुख समस्त अकबरी दरबार को पूर्णतः अनुमत बनाने के उद्देश्य से विट्ठलनाथ के लगभग दो सौ वर्ष उपरांत किसी हरिराय ने 'वार्ता-साहित्य' विरचित किया था। 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' का प्रधान लक्ष्य यही

था। इस बात की परीक्षा वार्ता के केवल एक कथन से हो सकती है। उसके अनुसार 'पृथ्वीपति (अकबर) को परिणीता रूपमंजरी नित्य रात को आकाश मार्ग से उड़ कर (?) गुसाईं जी के सेवक नंददास के पास आती थी।' इस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है।

इसी वार्ता ने तानसेन के संबंध का भी अकबरी दरबार से विच्छेद करा दिया था। वार्ता के अनुसार जब तानसेन गुसाईं जी के पास आए, उस समय उनका गायन भी हुआ। गुसाईं जी ने तानसेन का गायन सुन कर दस हजार रुपये और एक कौड़ी इनाम में दी। दस हजार रुपये इस कारण दिए गए कि वे पृथ्वी-पति मुगुल सम्राट की राजसभा के प्रधान गायक थे और एक कौड़ी इसलिए कि उनके गायन का वास्तविक मूल्य गुसाईं जी दृष्टि में एक कौड़ी था। तानसेन को मात देने तथा उन्हें पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने अपने शिष्य गोविन्दस्वामी को बुलाया। आने का प्रसंग 'वार्ता' के शब्दों में¹—

“तब गोविन्दस्वामी ने एक सारंग राग गायी सो पद 'श्री वल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहि जाई'। सो जे पद सुनि के तानसेन चकित होय गए और गोविन्दस्वामी को गान सुन के विचार करयो जो मेरो गान इनके आगे ऐसे हैं जैसे मखमल के आगे टाट है, ऐसे है सो हि कौड़ी की इनाम खरी। तब गोविन्दस्वामी सूं तानसेन ने कही जो बाबा साहिब मोकुं गान सिखावो। तब गोविन्दस्वामी ने कही हम तो अन्य मार्गीय सूं भाषण हूं नहीं करें तब तानसेन श्री गुसाईं जी के सेवक भये और पचवीस हजार रुपैया भेंट करे और गोविन्दस्वामी के पास गायन विद्या सीखे और श्रीनाथ जी के पास कीर्तन गायवे लगे।”

इस कथन की सत्यता को परखने के लिए अधिक तर्कों की आवश्यकता नहीं है। तानसेन अपनी मृत्यु-पर्यंत अकबर के दरबार में रहे। तानसेन ने कृष्ण-भक्ति के अनेक पद लिखे हैं, उन पर भी पृष्टि-मार्ग का कोई प्रभाव नहीं है। तानसेन के उपलब्ध पदों में वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ अथवा गोविन्दस्वामी का कहीं उल्लेख नहीं है। यह भी निश्चित है कि गोविन्दस्वामी का गायन तानसेन से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। गोविन्दस्वामी ग्वालियर के दक्षिण में स्थित आंतरी के निवासी थे और उन्होंने ध्रुपद शैली का गायन उसी स्रोत से सीखा था जिससे तानसेन को उपलब्ध हुआ। ग्वालियर के संगीतज्ञों में गोविन्दस्वामी का कोई स्थान नहीं था। ऐसे व्यक्ति से तानसेन संगीत की शिक्षा लें, यह कल्पनातीत है।

ज्ञात यह होता है कि तानसेन कभी ब्रज-यात्रा के संदर्भ में श्रीनाथ जी के मंदिर में दर्शन करने गए होंगे। श्रीनाथ जी के दर्शन के अतिरिक्त तानसेन को वहाँ जाने का आकर्षण उनके गुरु-बंधु मित्र सूरदास भी थे। इस बात का हरिराय ने बतगड़ बना दिया।

इतना ही नहीं, वार्ता ने तानसेन को गुसाईं जी का दलाल भी बना दिया। वार्ता में लिखा है कि एक बार तानसेन आसकरन के पास नरवर गए और उन्हें वह विष्णुपद सुनाया जो उन्होंने गोविंदस्वामी से सीखा था। आसकरन उससे बहुत मुग्ध हुआ और उसे सीखना चाहा परंतु तानसेन ने मना कर दिया और कहा, जब तक श्री गुसाईं जी की शरण में कोई नहीं पहुँचता तब तक उसे यह संगीत नहीं सिखाया जा सकता। आसकरन को भी तब यह कहना पड़ा¹—

में है श्री गुसाईं जी को सेवक होऊँगा।

आसकरन और तानसेन की आपस में घनिष्ठता होने के संबंध में अभी तक ऐतिहासिक प्रमाण अथवा तानसेन का कोई पद उपलब्ध नहीं हुआ है। आसकरन को नरवर जागीर में मिला अवश्य था, परन्तु वह या तो ग्वालियर रहता था या आगरा अथवा अकबर के सैनिक अभियानों में।

वार्ता-साहित्य तानसेन को श्रीनाथ जी के मंदिर में प्रस्थापित कराने में तो सफल न हो सका, उसके कारण पुष्टिमार्ग द्वारा ध्रुपद गायन-शैली की सुरक्षा में जो महती योगदान दिया गया था, उसे दृष्टि से ओझल करने का प्रयास अवश्य किया गया था किंतु वह भी सफल न हो सका। यह सर्वविदित है कि पुष्टिमार्ग ने हवेली संगीत के माध्यम से ध्रुपद शैली को अद्यतन सुरक्षित रखा है।

2. सूरदास

वल्लभ संप्रदाय द्वारा प्रस्थापित अष्टछाप के सूरदास मूर्धन्य थे। उन्होंने गायन की ध्रुपद शैली का अध्ययन अपने जन्म-स्थान ग्वालियर में अपने गुरु वैजू से प्राप्त किया था।² उसी समय से तानसेन और सूरदास में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। इसके उपरांत सूरदास और तानसेन के मार्ग अलग-अलग हो गए। सूरदास ग्वालियर से ब्रज में पहुँचे और वल्लभाचार्य ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित कर उसमें मूर्धन्य स्थान दिया। तानसेन बाँधवगढ़ होते हुए आगरा पहुँचे तथा वहाँ अकबर ने उन्हें अपने नवरत्नों में स्थान दिया।

सूरदास को अकबर के पास सीकरी पहुँचने का उल्लेख भी मिलता है।³ खड़ाऊँ से खटपट करते लकड़ी थामे या बैलगाड़ी पर सूरदास चलते-चलते फतहपुर सीकरी पहुँचे और अकबर ने उन्हें जागीर अथवा राजकीय पद देने का आग्रह किया जो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। सूरदास द्वारा अकबर को पद भी सुनाए जाने का उल्लेख है। बूढ़ा बाबा फिर खटपट करता हुआ गोकुल पहुँचा। इस पर टिप्पणी व्यर्थ है।

1. दो सी बावन बँलवन की वार्ता, पृष्ठ 193।

2. द्विवेदी, ग्वालियरी ध्रुपद गायन तथा ध्रुपद नृत्य, शीघ्र प्रकाशनीय।

3. दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, भाग 1, पृष्ठ 207-208।

तानसेन की ब्रज की यात्रा के संदर्भ में अपने इन पुराने मित्र सूरदास से उनका मिलन अवश्य हुआ था ।¹ ज्ञात होता है कि उसी समय तानसेन ने सूरदास की प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा सुनाया—

किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर ।

किधौं सूर कौ पद लग्यौ, तन-मन धुनत सरीर ॥

सूरदास ने भी अपने मित्र की प्रशंसा में उसी समय यह दोहा सुनाया था—

विधना यह जिय जानिकैं, सेसहि दीए न कान ।

धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान ॥

उक्त दोहे के अतिरिक्त अभी तक तानसेन का कोई पद ऐसा उपलब्ध नहीं हो सका है जिसमें सूरदास का उल्लेख हो ।

तानसेन के संदर्भ में सूरदास के उल्लेख पर विचार करते समय यह स्मरण रखना आवश्यक है कि यह सूरदास बाबा रामदास के पुत्र सूरदास से भिन्न हैं; अकबरी दरबार में एक अन्य सूरदास मदनमोहन नाम के कवि भी थे ।

3. स्वामी हरिदास जी

स्वामी हरिदास अपने युग के अत्यंत उत्कृष्ट ध्रुपद-गायक थे । नाभादास जी ने उन्हें 'गान-गंधर्व' लिखा है । साथ ही वे सखी-भाव-युक्त श्यामा-कुंजबिहारी के परम-रसिक-भक्त थे, तथा सखी ललिता के अवतार माने जाते थे । उनके द्वारा हरिदासी संप्रदाय का प्रवर्तन किया गया था । ध्रुपद-गायन की कुशलता की उपलब्धि उन्होंने ग्वालियर के राजा मानसिंह की राजसभा के नायक बँजू से प्राप्त की थी ।² यह कथन ऐसे संगीत-शास्त्री द्वारा किया गया है जो अपने विषय में लिखते हैं—“प्रस्तुत पंक्तियों के विनम्र लेखक को भी श्री हरिदास जी के वंश के दौहित्र होने का गौरव प्राप्त है” ।³ इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा विद्वान हरिदासी परंपरा से पूर्ण परिचित होगा और उनका कथन प्रामाणिक माना जाना चाहिए ।⁴

किशनगढ़ के राजा सावंतसिंह ने भी हरिदासी संप्रदाय की दीक्षा ग्रहण कर ली थी । उन्होंने अपना सांप्रदायिक नाम 'नागरीदास' रख लिया था और अपनी परम सुंदरी सेविका बनीठनी के साथ वृन्दावन निवास करने लगे । उनके द्वारा

1. विन्सेण्ट स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगुल, पृष्ठ 422 ।

2. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 103 ।

3. सुनोचना यजुर्वेदी तथा कैलाशचन्द्र बृहस्पति, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृष्ठ 115 ।

4. हमारा अध्ययन इस दिशा ने नगण्य है, हम कोई अंतिम मत देने के उपयुक्त पात्र नहीं हैं ।

सन् 1743 में 'पद-प्रसंग-माला' की रचना की गई। उसमें तानसेन तथा अकबर का वृन्दावन आ कर स्वामी हरिदास जी से मिलने का उल्लेख किया है—

“एक समै अकबर पातसाह तानसेन सौं बूझी जु तें कौन सौं गाइबौ सीख्यौ कोऊ तोऊ तें अधिक गावै है ? तब बाने कही जु मैं कौन गिनती में हूँ। श्री वृन्दावन में हरिदास जी नाम वैष्णव है, तिनको गाइवे कौ हौं शिष्य हूँ। यह सुनि पातसाह तानसेन के संग जलधरी लै श्री वृन्दावन स्वामी जी पे आयौ।”

“पहिले तानसेन गायौ। विनती करी महाराज, कछु आप हूँ बोलिए, तब श्री हरिदास जी अलापचारी करी मलार राग, चैत-बैसाख को महीना छो। तब नयौ बनाइ विष्ण-पद गायौ। तब ताही बेर वर्षा होन लगी, सो वह पद 'ऐसी रिनु सदा-सरवदा जी रहे बोलति मोरनि'।”

यह एक अत्यंत दुखद तथ्य है कि किसी भी पंथ का प्रारंभ करने-वाला व्यक्ति, महान साधक तथा निष्कपट-निष्कलुष प्रेरक व्यक्ति होता है। उसके अनुयायी धीरे-धीरे उसके सुयश का लाभ उठा कर अनेक अवांछनीय कृत्य करते हैं और अपने मूल गुरु के सुयश को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं। स्वामी हरिदास महाराज का सखी संप्रदाय भी इस व्यापक नियम का अपवाद नहीं बन सका।

किशोरीदास नामक निम्बार्क संप्रदाय के व्यक्ति ने 'निजमत सिद्धांत' नामक पुस्तक में जो-कुछ तानसेन के विषय में लिखा है, उसके कथनों की परख भी की जा चुकी है।

तानसेन के वृन्दावन में जाने के विषय में उनके द्वारा विरचित कहे जाने-वाले पद प्राप्त हुए हैं, उन्हें भी परख लेना आवश्यक है।

पहला पद इस प्रकार है¹—

पाई विद्या में परम, पुनि पाई है और अलख माई है,

गुरु हरिदास चरन निस्तारौ है।

मोकोँ जगत-पिता नें, तोकोँ जगत-माता ने, दोउ अधिकारी हैं

शिव गान संगत विस्तारौ है।

तेरी तान राम-वान, मदनराय उड़गन समान, और गुनी भाजे,

भाजौ है तानसेन, माता जीवदान देउ,

तोरे चरन मोकोँ उभारौ है ॥

इस समस्त पद की अर्थ-निष्पत्ति करना असंभव है, केवल 'गुरु हरिदास चरण निस्तारौ है' इन्हीं शब्दों का अर्थ स्पष्ट है और इसकी सत्यता के विषय में

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

भी संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। भले ही स्वामी हरिदास वजू नायक के शिष्य होने के कारण तानसेन के 'गुरु-बंधु' थे, तथापि वे महान त्यागी और परम रसिक भक्त थे।

शेष चरणों का अर्थ अथवा उद्देश्य समझना असंभव है, जो-कुछ समझ में आता है वह अद्भुत है। स्वामी हरिदास का गायन इतना भीषण कहा गया है जिसे सुन कर सब गुणियों में भगदड़ मच गई और उनके साथ तानसेन भी भागे और माता (देवी) से जीवनदान की प्रार्थना करने लगे।

यह पद किस प्रयोजन से गढ़ा गया है, यह तो सखी संप्रदाय का कोई विद्वान ही बतला सकता है।

तानसेन द्वारा विरचित कहा जाने वाला एक 'उलझन का पद' हम पहले पूरा उद्धृत कर चुके हैं। यहाँ केवल एक चरण देना पर्याप्त है¹—

आज जनम सफल भयौ, तानसेन, बाबा हरिदास हाथ पकन्यौ
श्रीराग सिखायौ पहले-पहल।

इस चरण का यह कथन कि स्वामी हरिदास ने तानसेन को पहले-पहल श्रीराग सिखाया, मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। यह बहुत संभव है कि अपने कनिष्ठ गुरु-बंधु के श्रीराग के गायन में स्वामी जी को त्रुटि ज्ञात हुई हो और उन्होंने उसकी ओर इंगित किया हो।

राजा सावंतसिंह का यह कथन गले नहीं उतरता—'श्री वृन्दावन में हरिदास जी नाम वैष्णव हैं, तिनको गाइबै कौ हौं शिष्य हूँ'। उनके शेष कथन तथ्य-परक हैं और इतिहास-सम्मत ज्ञात होते हैं।

यह तथ्य समकालीन इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि अकबर कभी आस्था के विकट संकट में पड़ गया था और उससे त्राण पाने के लिए उसने अजमेर शरीफ तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया और कुतुबुद्दीन चिरागे-देहली की दरगाहों पर जियारतों की थीं। इसके अतिरिक्त वह ब्रज में भी आत्म-शांति की खोज में गया था।

वृन्दावन में यह जनश्रुति प्रचलित रही है कि गुजरात-विजय के वर्ष (सन् 1573) में अकबर ने वृन्दावन में गोस्वामियों के दर्शन किए थे; वह आँख बंद कर निधिवन (स्वामी हरिदास जी का आश्रम) के परिसर में ले जाया गया था, जहाँ उसने ऐसा दिव्य दृश्य देखा जिससे उसे स्वीकार करना पड़ा कि वास्तव में जहाँ वह खड़ा है वह दिव्य भूमि है। इस पवित्र यात्रा के स्मरण के लिए उसके साथ के राजाओं ने वृन्दावन में श्री कृष्ण को अर्पित चार मंदिर बनाने की इच्छा व्यक्त की जो अनेक वर्ष बाद बने।²

1. पीछे पृष्ठ 17 देखें।

2. विन्नेण्ट स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगुल, पृष्ठ 445।

सम्राट अकबर ने ब्रज की यात्रा की थी, इसके लिए किसी जनश्रुति अथवा इतिहास-ग्रंथ में खोज करने की आवश्यकता नहीं है, इसके लिए अकबर की संगीत-सभा के एक अज्ञात-नाम ध्रुपदकार का पद सर्वाधिक प्रामाणिक माना जा सकता है¹—

(राग केदारा, जलद)

आयो-आयो रे, ब्रज मंडिल साहि छत्रपती अकबर ।
सप्तदीप, नव-मण्डल, दसौ दिसां नर नरेन्द्र कांपै थर-थर डर ॥
असदल, गजदल, नरदल, प्याददल, ऐक-तैं-एक जोधा अजगर ।
ऐक-तैं-एक सुभट करि आवैं, पावैं कमान गुरज नेजा तंवल समसेर ॥
हिमाउ के नंदन पै बंसन न पावत रंक नगर जित तित सुनी ।
अतिदल भारी जलालदीन महमद कौ लसकर ॥

किशनगढ़ शैली में स्वामी हरिदास, तानसेन और अकबर, तीनों की एक ही चित्र में छवियाँ प्राप्त होती हैं। तानपूरा लिए स्वामी जी सबसे बृद्ध दिखाई देते हैं, तानसेन उनसे कुछ कम वय के मालूम होते हैं और अकबर पूर्ण युवा। यह तथ्य इतिहास-सम्मत भी है।²

यह सब-कुछ होते हुए भी कठिनाई तब प्रारम्भ होती है जब परवर्ती हरिदासी संप्रदाय के अति उत्साही व्यक्ति यह कहने लगते हैं कि उनके किसी पुरखे ने निधिवन में तानसेन की समाधि देखी थी। ऐसे कथनों से सत्य भी धूल की परत के नीचे दब जाता है। इतना मानना पर्याप्त है कि भारत के महानतम संगीतज्ञ तानसेन ने भी स्वामी हरिदास जी के चरणों में बैठ कर अपनी वाणी सफल होने का वरदान प्राप्त किया था।

4. ग्वालियर-यात्रा

अकबर की ग्वालियर की एक यात्रा मनोरंजक है। उसके द्वारा युवा सम्राट अकबर की तीव्र बुद्धि और शेख मुहम्मद गौस की चालाकी पर प्रकाश पड़ता है।³

अकबर ने ग्वालियर जाने का निश्चय, प्रकट रूप से शिकार के लिए, किया था। मूल उद्देश्य शेख मुहम्मद गौस की गतिविधियाँ देखने तथा शेख द्वारा गुजरात से लाए गए उत्कृष्ट बँल व गायों को हथियाना था। कुछ शिकारियों ने बादशाह को बतलाया कि शेख मुहम्मद गौस के पास आए हुए कुछ व्यापारी गुजरात से बहुत अच्छे बँल लाए हैं, जो बादशाह की पशु-शाला में होना चाहिए।

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

2. यह छवि इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है।

3. अबुलक़ासिम, अकबरनामा, भाग 1, पृष्ठ 133-134 (अंगरेजी अनुवाद)।

सम्राट ने आदेश दिया कि उन बैलों को व्यापारियों से, उन्हें स्वीकार्य मूल्य दे कर, क्रय कर लिया जाए। उसके बाद बादशाह को बतलाया गया कि शेख और उसके संबंधियों के पास इनसे कहीं अच्छी गाएँ और बैल हैं और यदि बादशाह उसके निवास-स्थान पर जाएँ तब अपना बड़प्पन दिखाने के लिए वह उन्हें अवश्य उन पशुओं को भेंट में दे देगा। अतएव प्रकट रूप से इन पशुओं को लेने के उद्देश्य से, परंतु वास्तव में शेख की योग्यता की परख के लिए, बादशाह उसके निवास-स्थान पर पहुँचे।

शेख ने बादशाह का अधिक विनम्र स्वागत किया, इस कारण कि उनके आगमन से शेख को बैरमखाँ द्वारा दी जाने वाली त्रास से संरक्षण मिला था। तथ्य यह था कि शेख आगरा में जमना चाहते थे परंतु बैरमखाँ ने उनसे रुष्ट हो कर उन्हें दुत्कार दिया, तब वे ग्वालियर आ कर दरवेश बन गए। जो भी हो, शेख ने समस्त पशु अकबर को भेंट कर दिए तथा बहुत आव-भगत भी की।

इसके पश्चात् प्रारंभ हुआ शेख की चालाकी का चक्कर। शेख ने बादशाह से पूछा कि क्या वे किसी अन्य शेख के मुरीद हो चुके हैं। यह कह कर शेख ने अपना हाथ बादशाह के हाथ पर रख दिया और कहा, “मैंने तेरा हाथ थाम लिया”। बादशाह ने सौजन्य-वश इस अभद्रता पर ध्यान नहीं दिया वरन् मुस्करा कर वहाँ से चले गए।

अबुलफ़जल का कथन है कि शाहंशाह बहुधा कहा करते थे कि उस रात जब हम अपने तंबुओं में लौटे तथा पान-गोष्ठी कर आनंद मना रहे थे उसी समय वे शेख द्वारा अपने हाथ बढ़ाने की तथा पशुओं को प्राप्त करने की रीति पर भी हँसते रहे थे।

ऐसे थे शेख मुहम्मद गीस ! कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने अथवा उनके किसी सज्जादानशीन ने यह कहानी गढ़ डाली कि तानसेन उनके मुरीद थे और उन्होंने ही उन्हें मुसलमान बना दिया था।

तानसेन इस समय अकबर के साथ ग्वालियर नहीं गए थे, वे उस समय राजा रामचन्द्र वघेला की राजसभा में थे। फिर भी पूर्वोक्त कारणों से इसका विवरण पठनीय है।

5. ओढ़छा-यात्रा

ओढ़छा को ‘राम राजा’ के कारण बहुत पवित्र तीर्थ माना जाता है। अनेक त्यौहारों पर, विशेषतः रामनवमी पर, वहाँ हजारों नर-नारियों की भीड़ इकट्ठी होती है। दूर-दूर से लोग पैदल, घोड़ों पर तथा बैलगाड़ियों से आ कर एकत्र होते हैं। बाला जी के पास ही लोग रात्रि-विश्राम करते हैं और प्रातःकाल पृथ्वी नदी में स्नान कर लगभग 150 सीढ़ियाँ चढ़ कर बाला जी की मूर्ति पर

जल चढ़ाते हैं। यह सब गीले वस्त्रों में करना आवश्यक है। उस समय बुंदेली बालाओं के मधुर स्वर में—‘बाला जी बरोबर देओ नईयाँ’ गाया जाता है।

बाला जी के दर्शन कर यात्री ओड़छा जाते हैं और ‘राम राजा’ की झांकी के दर्शन करते हैं। तानसेन ने भी ‘राम राजा’ के दर्शन के लिए ओड़छा की यात्रा की थी।

6. अन्य यात्राएँ

यह माना नहीं जा सकता कि महादेव के विषय में अत्यंत श्रद्धापूर्ण पद लिखने-वाले तानसेन ने विश्वनाथ की नगरी की यात्रा नहीं की होगी। तंत्र की साधना भी, संभव है, तानसेन ने काशी में ही की होगी। वहाँ तंत्र-शास्त्र के प्रकांड मर्मज्ञ गोपीनाथ जी अभी हाल तक विद्यमान थे। गोरख-पंथ के रहस्य को तानसेन ने ग्वालियर में ही प्राप्त किया होगा। उनके रामभक्ति-विषयक पदों में प्रकट की गई अगाध श्रद्धा के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे अयोध्या न गए हों। महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के महिमा मय स्तोत्र गाने-वाले तानसेन ने काली के दर्शन कांगड़ा में किए थे अथवा ‘काली कलकत्ते-वाली’ के दर्शन किए थे, यह कहना कठिन है। यह संभावना है कि वे दोनों स्थानों पर गए हों।

इन यात्राओं अथवा तीर्थ-यात्राओं में भी तानसेन ने अपने व्यक्तित्व को निखारा होगा और उन्होंने अपने ज्ञान तथा आस्था-विश्वास-युक्त व्यक्तित्व का निर्माण किया होगा।

—बारह—

सूफी मत का प्रभाव

सम्राट अकबर के साथ रहने के कारण तानसेन को भी सूफी संतों का सत्संग उपलब्ध हुआ था। सूफी निराकार एकेश्वरवाद के पोषक रहे हैं। अनल्हक उनका मूल मंत्र रहा है। वे भारतीय साधना-पद्धतियों से भी प्रभावित हुए और उन्होंने भारतीय साधना-पद्धतियों को भी प्रभावित किया था। भारत में वे योगियों के संपर्क में आए और उन्होंने योग-साधना का अभ्यास भी किया।

सूफी लोग आत्मा की प्रेमिका के रूप में परिकल्पना करते हैं और परमात्मा की परम पुरुष के रूप में। अपनी संगीत-सभाओं में वे गाते-गाते रोने लगते और कभी-कभी बेहोश भी हो जाते थे। इस साधना-पद्धति का पूरा रूप चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन में भी दिखाई देता है। ब्रज के सखी-भाव के जितने प्रकार के मत-मतांतर प्रचलित हुए, वे आत्मा की सखी (गोपियों) के रूप में परिकल्पना करते हैं और परमात्मा को कृष्ण-रूप मानते हैं। एक मत के अनुसार केवल कृष्ण ही पुरुष हैं और समस्त मानव-समाज गोपियों के रूप में परिकल्पित है। कुछ सखी-संप्रदायों में घोर शृंगारिक वर्णन भी प्राप्त होते हैं जिनमें विपरीत रति को भी स्थान दिया गया है। उनके अनुसार इसकी व्याख्याएँ भी की गई हैं। वे केवल उनके परम श्रद्धालुओं को ही संतुष्ट कर सकती हैं।

जहाँ तक तानसेन का संबंध है, उनका एकेश्वरवाद भारतीय चिंतन और कबीर, दादू आदि संतों की परंपरा का परिणाम है। कृष्ण-भक्ति के उनके पदों में ब्रज के किसी संप्रदाय का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। उन पर सूफियों की ही भक्ति-प्रणाली का प्रभाव हो सकता है।

तानसेन का निकट संपर्क उस काल के अन्यतम सूफी संत शेख सलीम चिश्ती से हुआ था।

1. शेख सलीम चिश्ती

शेख सलीम चिश्ती अपने युग के प्रसिद्ध सूफी संत थे। सूफियों के चिश्तिया सम्प्रदाय का भारत में बहुत प्रभाव फैला था। शेख सलीम चिश्ती सीकरी की पहाड़ी गुफा में रहते थे। उनके साथ उनके शिष्य शेख नियाजी भी रहते थे। शेख सलीम का अधिक समय हज करने में ही बीता। पहली बार जा कर उन्होंने 14 और दूसरी बार 8 हज किए। जब दूसरी बार गए थे तब चार वर्ष मदीना में रहे और मदीना में रहते समय वे मक्का हज के लिए जाते थे। मक्का-वाले उन्हें शेखुलहिंद (हिंदुस्तान का संत) कहते थे। हजों और यात्राओं

के बाद वे सन् 1563-64 (हिजरी 971) में सीकरी की पहाड़ी गुफा में रहने लगे ।

अकबर को शेख सलीम चिश्ती पर बहुत अधिक श्रद्धा थी । उन्हीं के आशीर्वाद से अकबर को शाहजादा प्राप्त हुआ था । इस शाहजादे का नाम अकबर ने शेख के नाम पर 'सलीम' रखा था । बाल्यकाल में अकबर उसे 'शेखू बाबा' कह कर पुकारते थे । शाहजादा सलीम का जन्म कछवाहा राजकुमारी जोधाबाई (जिसका नाम मरियम मकानी रखा गया था) से हुआ था । इसी समय शेख सलीम चिश्ती के दूसरे पुत्र का जन्म हुआ था । शाहजादा सलीम भी शेख की पत्नी का दूध पीते लगे ।

अकबर ने 1569 से ही सीकरी में वहाँ स्वयं रहने के विचार से बहुत बड़े-बड़े निर्माण कराए, उनमें शेख के लिए खानकाह (मठ) और मस्जिद भी बनवाई गई । यहाँ की बड़ी मस्जिद मक्का की मस्जिद के नमूने पर बनवाई गई थी । इसी समय से अकबर शेख सलीम चिश्ती के दर्शन के लिए जाता रहता था । जब सीकरी में अकबर और दरबार के निस्तार योग्य भवन बन गए तब 1571 ईसवी में अकबर ने वहाँ स्वयं रहना प्रारंभ किया ।

शाही इबादतखाने के पास अनुप तालाब था । शाहजादा प्राप्त होने की प्रसन्नता में अकबर ने एक करोड़ सोने-चाँदी के सिक्के उस तालाब में भरवा दिए थे । तालाब के किनारे महल और बैठकें बनी हुई थीं जिनके दीवारों-द्वारों को, आँगनों और ताकों की मेहराबों को, जरी के परदों से सजाया गया था; नीचे मखमली फर्श और रेशमी कालीन बिछते थे । इबादतखाने में पूर्व दिशा की ओर अमीर, पश्चिम में सैयिद, दक्षिण में आलिम और मौलवी बैठते थे तथा उत्तर में संत-फकीर बैठते थे । अकबर बादशाह जिस पर प्रसन्न होता, तालाब में से एक मुट्ठी अर्शाफियाँ दे देता था ।

शेख सलीम चिश्ती को गाना-बजाना सुनने का बहुत शौक था । संगीत-विभाग के गायक-वादकों के साथ तानसेन शेख को गाना सुनाने जाते थे । जब सन् 1571-72 में 95 वर्ष की वय में शेख सलीम का देहांत हुआ तब उन्होंने मृत्यु के समय तानसेन का गायन सुनने का आग्रह किया था जो पूरा किया गया । शेख को तानसेन के संगीत से ब्रह्मानंद की उपलब्धि हुई और वे परब्रह्म में लीन हो गए ।

कुछ समय पश्चात् अकबरी दरबार ही सन् 1585 में आगरा लौट आया और सीकरी के भव्य भवन खाली छोड़ दिए गए । शेख सलीम को सुनने के लिए तानसेन ने जो राग गाए थे उनकी मंजुल प्रतिध्वनियाँ भी उन सूने भवनों में समा गई ।¹

1. सीकरी के सूने भवनों को देख कर इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ ने 'अकबर द ग्रेट मुगुल' में लिखा है : "दुनिया उस तानाशाह के प्रति कृतज्ञ होगी जो ऐसी प्रेरणादायक बेवकूफी कर सकता था ।"

2. शेख चिश्ती के लिए लिखे गए पद

शेख सलीम चिश्ती को सुनाने के लिए तानसेन ने विशेष प्रकार के पदों की रचना की थी। तानसेन के अल्लाह, हजरत मुहम्मद, पीर-पैगंबर-संबंधी अब तक 10-11 पद प्राप्त हुए हैं। एक-दो निराकार ब्रह्म-संबंधी पद भी शेख सलीम को सुनाने के लिए लिखे गए थे।

निराकार की महिमा का जो पद तानसेन ने शेख को सुनाने के लिए लिखा था वह निम्नलिखित हो सकता है—

(राग भैरव, चौताला)

तुम रब, तुम साहब, तुम ही करतार,
घट-घट पूरन जल-थल भर-भार।
तुमही रहीम, तुमही करीम,
गावत गुनी-गंधर्व, सुर-नर सुर-नार॥
तुमही पूरन ब्रह्म, तुमही अचल,
तुमही जगद्गुरु, तुमही सरदार।
कहै मियाँ 'तानसेन' तुमही आप,
तुमही करत सकल जग कौं भव पार॥
स्वयं शेख सलीम की प्रशंसा में भी एक-दो पद मिलते हैं—

(राग भैरव, तिताला)

नाम लेत दुख टरत मौम दिल स्वाजा।
सरस होत सुख परसत ही दरगाह रोशन जंबीर,
दस्तगीर हाजी उनके करत मनचीते काजा॥
चिस्ती चिराग अता दीन उजारे भार,
तो पै रटत कीनौ इसलाम कुफर भाजा।
'तानसेन' सेवक कौं रहम कर, कीजियै दीन-इमान,
गरीब निबाज सो करता जा हितपति राजा॥
शेख हाजी थे, यह ऊपर लिख जा चुका है।

तानसेन ने हजरत मुहम्मद की स्तुति भी शेख सलीम को सुनाई थी—

(गगिनी मुसतानी धनाधी, चौताला)

पाक मुहम्मद अल्ला रसूल तेरौ ही नूर जहूर।
धन-धन परवरदिगार, गुनाहगार तू बक्सन,
तू ही जग रम रह्यौ भरपूर॥

वेचुन, वेचगुन, बेशुनो, वेनमून

अव्वल आखीर, तूही निकट, तूही दूर ।

जित देखूं तित तुही, तुही व्यापि रहनौ जल-थल,

घरनी-आकास 'तानसेन' तू ही हजूर ॥

यह प्रसंग हम तानसेन के उस पद से समाप्त करेंगे, जिसमें उसने लगभग सभी पीरों के नाम सुना दिए हैं । ज्ञात यह होता है कि तानसेन ने यह पद उस समय सुनाया होगा जब अकबर दिल्ली में निजामुद्दीन औलिया और बली से भी बड़े (गौस) कुतुबुद्दीन के मजारों पर जियारत के लिए गया होगा—

(राग भैरव, तिताला)

मुहम्मद नबी हबीब अल्लाह के साहब मर्दान,

अली बली मरद कुफर दारिद्र-हरन

हजरत हसन बुजरक इमाम ।

संसार के साहब हुसैन सैयद साहजादे,

जेनलाबुदीन दीनपर्ना महम्मद बाकर,

करतार कीने मनचीते करन काम ॥

हजरत जाफर सादक साँचौ सीदक इमाम मुलकाजम हजरत-

अली बिन मुसीर रजा, जाकौ दरस देखें जाय दारिद्र दाम ।

हजरत तक़ी अलीनकी हजरत हसन मसगरी

इमाम मुहम्मद मेंहदी साहब जमान,

दै सुख संपति-संतति राखौ तिहुंलोक नाम ॥

खाजा पीर निजामुद्दीन औलिया तू सत्तार,

परवरदिगार करीम रहीम, दरियाई पीर

रोशन गाजी धाम ।

हैदर रसूल गौस कुतुबुद्दीन अल्ला फकीर,

'तानसेन' कौं दीजै राग-रंग तीन ग्राम ॥

इन सब पीरों से भी तानसेन ने राग-रंग और तीन ग्राम में दक्षता की याचना की है ।

यह जो भी हो, तानसेन द्वारा शेख सलीम चिश्ती के लिए श्रद्धापूर्ण गायन सुनाने के कारण न केवल शेख को आत्म-तुष्टि प्राप्त हुई, साथ ही तानसेन ने ऐसा पद-साहित्य भी प्रस्तुत किया जो देश के एक धर्म-विशेष के अनुयायियों को बहुत पसंद रहा होगा ।

तानसेन की महत्ता और उनकी व्यापक लोकप्रियता का मूल ही इस तथ्य में है कि वे अवसर और समय के अनुसार पद-रचना कर राग में ढाल कर सुना देते थे, यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी ।

कहा नहीं जा सकता कि तानसेन ने अकबर द्वारा अजमेर की जियारत के समय कौन-से पद गाए थे । तानसेन के इस प्रकार के पद अत्यंत औपचारिक तथा रस-विहीन हैं और उन्हें यहाँ उद्धृत करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ।

— तेरह —

तानसेन और तंत्र-साधना

विद्वद्भर सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने तानसेन को तंत्र-शास्त्र का ज्ञाता कहा है।¹

तानसेन के तंत्र-संबंधी पदों पर विचार करने के पूर्व तंत्र-साधना में शिव और शक्ति का परस्पर संबंध जान लेना आवश्यक है।²

जिस प्रकार बौद्ध लोग बुद्ध, धर्म तथा संघ—त्रिरत्न स्वीकार करते हैं, वैसे ही तांत्रिक आचार्यगण भी शिव, शक्ति और बिंदु—ये तीन रत्न मानते हैं। प्रसिद्धि ऐसी है कि शिव के ईशानादि पाँच मुखों से ही समस्त मूल तंत्रों का आविर्भाव हुआ है। बिंदु का ही दूसरा नाम महामाया है।

एक अन्य मत के अनुसार शिव की दो शक्तियाँ हैं—समवायिनी और परिग्रहरूपा। समवायिनी चिद्रूपा, अपरिणामिनी, निर्विकार और स्वाभाविकी है। यही शक्ति-तत्त्व है। यह शिव में नित्य समवेत रहती है। शिव और शक्ति, इन दोनों का तादात्म्य संबंध है। परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणाम-शील है। इसका नाम बिंदु है। बिंदु के शुद्ध और अशुद्ध, दो रूप हैं। साधारणतः शुद्ध रूप को ही बिंदु और महामाया कहा जाता है। अशुद्ध रूप का नाम माया है। दोनों ही नित्य हैं। अशुद्ध अर्थात् उपादानकारण माया है और शुद्ध अर्थात् उपादान महामाया है।

एक अन्य मत यह है कि एकमात्र बिंदु ही शुद्ध या अशुद्ध अर्थात् उपादान है। इस मत में माया नित्य नहीं है, किन्तु कार्यरूपा है। महामाया या बिंदु की तीन अवस्थाएँ हैं—परा, सूक्ष्मा और स्थूला। परावस्था को महामाया, परा-माया, कुण्डलिनी आदि नामों से जाना जाता है। यही परमकारण और नित्य है।

बिंदु शिव में समवेत नहीं है। चिदात्मक परमेश्वर के रूप से इसका समवाय-संबंध स्वीकार नहीं किया जाता। जड़ के साथ यह तादात्म्य संबंध अनुपम और अखंड चिद्धनस्वरूप शिव के जड़त्व का कारण होगा।

भोग-स्थान रूप से जिन कलाओं और भुवनों का उल्लेख किया गया है, उसमें निवृत्ति-भुवन सब की अपेक्षा निम्न कोटि का है। इस निवृत्ति-भुवन के अधोवर्ती-

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 156।

2. महाग्रहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज, भारतीय संस्कृति और साधना, तांत्रिक दृष्टि, पृष्ठ 23-43 से संकलित।

भुवन का नाम सदाशिव-भुवन है। इसकी अधिष्ठात्री शक्ति शिव की अपरामूर्ति अथवा सदाशिवतनु है।

वर्णों से ही समस्त विश्व की उत्पत्ति होती है, इसलिए तंत्रों में इन्हें विश्व-जननी मातृका-रूप से वर्णन किया गया है। अज्ञात रहने पर ये सब बंधन का कारण होती हैं, परंतु सम्यक् प्रकार से ज्ञान का विषय होने पर इन्हीं से परा सिद्धि की प्राप्ति होती है। पराशक्ति स्वातन्त्र्य के उन्मेष से जिस समय अन्तर्लान्त अवस्था को छोड़ कर अभिव्यक्त होती है उसी समय विश्वरूप चक्र का आवर्तन होता है, इसी पर तत्वातीत शिव और शक्ति का खेल होता है। तत्वातीत अवस्था में शिव और शक्ति का सामरस्य रहता है। उस समय विश्व शक्ति के गर्भ में अन्तःसंहत भाव से, अर्थात् शक्ति के साथ अभिन्न रूप से, विद्यमान रहता है; परंतु जब पराशक्ति स्वेच्छा से अपने स्फुरण को स्वयं ही देखती है, तभी विश्व की सृष्टि होती है। वस्तुतः इस स्फुरण का दर्शन ही विश्व-दर्शन है।

परमेश्वर-जनित महामाया या विदु का क्षोभ होने पर ही उसके परिणाम में इस जगत की उत्पत्ति होती है। परमेश्वर-जनित महामाया या विदु का क्षोभ होने पर ही शब्द की उत्पत्ति होती है। महामाया ही कुण्डलिनी या परध्योम-स्वरूपा है। इसी का परिणाम शब्द है।

यह विदु की शब्दात्मिका वृत्ति वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा भेद से चार प्रकार की है। अणु, अर्थात् जीवमात्र में ही इन वृत्तियों की सत्ता रहती है। इन वृत्तियों के भेद से किसी का ज्ञान उत्कृष्ट, किसी का मध्यम और किसी का अपकृष्ट माना जाता है। इनका अतिक्रमण करने से पुरुष को शिवत्व-लाभ अथवा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इससे पहले नहीं।

एक पद में तानसेन ने महिषासुरमर्दिनी, शिव की शक्ति, की स्तुति की है। तान्त्रिकों में यह भी प्रसिद्ध है कि शक्ति के बिना शिव शव हैं। यही भाव इस पद में परिलक्षित है—

(रागिनी गुजरी, चैताल)

शिव शक्ति अनादि आदि भवानी दयानी,

दया करौ, दीजै दरस इन नैनन दारिद्र-दरन।

तीनों लोक में जानी मृडानी, ऐसौ प्रसाद दीजै,

दुख-द्वंद दूरि होय, सुख शरीर आनंद करन ॥

महामाया, भद्रकाली, कल्याणी, शिवानी, मैनात्मजा दुखहरन।

चंड-मुंड-महिषासुरमर्दिनी, 'तानसेन' सेवक-

सुख करन तूही जगतपोषन-भरन ॥

जिन्हें शुभलक्ष्मी द्वारा गाए गए 'ललिता सहस्रनाम' सुनने का सौभाग्य मिला है उन्हें नीचे लिखे पद से उसका स्मरण अवश्य हो आएगा—

(रागिणी टोड़ी, तिताला)

कराल बदनी काली, त्रिसूल-खप्पर सोहै, चण्डी असुर संहार कारन ।

महिषासुरमर्दिनी, इंद्रानी, माहेश्वरी,

मेनकात्मजा उमा कात्यायनी गौरी तरन तारन ॥

नारायणी निरग्रंथा काश्मीर अस्थानी, शिवा रुद्रानी अपरंपारन ।

नगरकोट-रानी, महिमा तुम जग जानी,

‘तानसेन’ निसि-दिन सुमरित संकट निवारन ॥

तानसेन द्वारा दुर्गा की वंदना में लिखे गए अनेक पद उपलब्ध हैं । आगे ऐसे अनेक पद प्राप्त होंगे, इसमें संदेह नहीं है ।

अब शक्ति द्वारा स्फूर्त शिव के दर्शन भी कर लेना उपयोगी होगा । एक पद में तानसेन ने लिखा है—

(राग भीरव, धीमा तिताला)

महादेव महाकाल धूर्जटी शूली पंचवदन प्रसन्न नेत्र ।

परमेश्वर परात्पर महाजोगी महेश्वर

परमपुरुष प्रेममय पराशान्ति दाता ।

सरितागन भिन्न-भिन्न पंथ जैसे आवत सिन्धु पाइ रहत मगन

‘तानसेन’ कहैं तैसे भगत भिन्न-भिन्न धर्मन

उपासति एक ही ब्रह्म पावत ।

इस पद में ‘परात्पर’ तथा ‘पराशान्ति’ का आशय ऊपर दिए गए उद्धरणों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाएगा ।

इस पद के अंतिम दो चरणों में तानसेन की भक्ति का स्वरूप भी मिलता है ।

यहाँ हम देवाधिदेव महादेव का एक पद और दे कर इस प्रसंग को समाप्त करेंगे—

(रागिणी गुजरी, चौताला)

महादेव देव देवनपति ईस सुरेस नीलकंठ शिव,

पंचानन पारवती-पति दुख-हरन ।

वामदेव महादेव जटाजूट गंगशिखर,

डिम-डिम डमरू बाजत पुनि रीभत सुखकरन ॥

वृषवाहन जटाजूट गंगशिखि बहुरूप,

द्रुम-द्रुम डमरू बाजै तिरसूल धरन ।

‘तानसेन’ शिवशंकर दया कीजै भोलानाथ,

जगत-पोषन-भरन ॥

यद्यपि तानसेन के महादेव की स्तुति में अनेक अन्य पद प्राप्त हैं तथा और भी प्राप्त होंगे, उन्हें तानसेन के समस्त पदों के किसी संग्रह के लिए सुरक्षित रखना उचित होगा।

तंत्र-साधना के ऊपर दिए गए विवेचन में संगीत-शास्त्र के कुछ सिद्धांत प्राप्त होते हैं। नाद की उत्पत्ति का सिद्धांत संगीत-शास्त्र में भिन्न है, यह स्वाभाविक है। संगीत-शास्त्र में पाँच राग शिव के पंचमुख से निसृत माने गए हैं, छठवाँ राग पार्वती द्वारा प्रदत्त है। तंत्र में शिव के पाँच मुखों से मूल तंत्रों का विकास माना गया है।

वृत्तियाँ भी तंत्र के अनुसार संगीत-शास्त्र में चार मानी गई हैं, केवल उनका क्रम उलट दिया गया है; अर्थात् संगीत-शास्त्र में वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी हैं।

—चौदह—

गोरखपंथ का प्रभाव

ग्वालियर गढ़ के ऊपर चढ़ते समय हथियापौर की ओर जाते हुए मार्ग में दाहिनी ओर ग्वालिया की गुहा बनी थी, उसके साथ शिव-मंदिर भी था। औरंगजेब के स्थानीय प्रशासक मोतमिदख़ाँ ने इसे तुड़वा दिया और वहाँ मस्जिद बनवा दी। इस मस्जिद के एक ओर एक छोटी-सी गुफा में शिव की मूर्ति रख कर बड़े-बड़े अक्षरों में 'गालव-आश्रम' लिख दिया गया है, यद्यपि ग्वालियर-क्षेत्र से गालव ऋषि का दूर का भी संबंध नहीं रहा। वे आजीवन नीलवर्ण अश्वों की खोज में लगे रहे और इसके लिए उन्होंने जीवन-भर न-जाने क्या-क्या नहीं किया। उनके किसी कृत्य से ग्वालियर का कोई संबंध नहीं है।

ग्वालिया कच्छपघातों के समय में 11वीं शताब्दी में ग्वालियर आए थे। उनकी शिष्य-परंपरा का क्रम-वद्ध विवरण नहीं मिलता। यह ज्ञात होता है कि उनके एक शिष्य सुन्दरनाथ महाराज डूंगरेन्द्रसिंह तोमर (1425-1459 ई०) के राज्य-काल में थे और महाकवि विष्णुदास ने उनसे दीक्षा ली थी। तथापि उनके महाभारत तथा रामायण ग्रंथों में नाथपंथ का प्रभाव परिलक्षित नहीं है।

कल्याणमल्ल (1480-1486 ई०) के समय के कवि दामोदर ने इस राजा के विषय में लिखा—

नीति निरंजन राजाराम, गोरख जिउ नवखण्डह नाम।

इससे यह ज्ञात होता है कि कल्याणमल्ल गोरखपंथ के अनुयायी थे।

1. थैघनाथ

कल्याणमल्ल के राजकुमार और उत्तराधिकारी मानसिंह तोमर (1486-1516 ई०) के राज्य-काल में थैघनाथ नामक साधु ग्वालियर की सिद्धपीठ के महंत थे। इनके द्वारा सन् 1500 ई० में गीता का प्रथम हिंदी पद्यानुवाद किया गया था।

संभव यह है कि तानसेन को भी थैघनाथ ने ही नाथपंथ के रहस्यों से परिचित कराया होगा जिसमें योग के साथ तंत्र का भी समन्वय था।

2. अलख पुरुष

तानसेन के पदों में गोरखपंथ का प्रभाव अधिक नहीं मिलता। केवल एक पद अलख पुरुष के विषय में लिखा मिलता है, उसमें अनहदनाद का भी उल्लेख है¹—

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

(राग केदार, चीताला)

जागें जोगी, भोगी कहा जागें ।

मन सुमिरन ग्यान ध्यान रसना रटत जाकें

अग्न-पवन-सीत कहाँ लागें ॥

सुर-नर-मुनि-गुनि-गंधर्व ध्यान धरत हैं अनहदनाद आरागें ।

अलख पुरिष की अब गति बरनी न जाइ 'तानसेन' प्रभु अनुरागें ॥

गोरखपंथ समस्त भारत में फैल गया था । महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत, ज्ञानेश्वरी के प्रणेता, ज्ञानदेव भी गोरखपंथी थे । सभी गोरखपंथियों को गुरुवाणी में पद-रचना आवश्यक रही है । इस कारण ज्ञानदेव ने भी अलख पुरुष की महिमा गाई है¹ —

अलख पुरुष मैं देखा दृष्टि

कर कर आउन समार मुष्टि

छाटा मैं कछु न होय

लेना एक न देना दोय ।

गोरखवाणी भाषा में होने के कारण ज्ञानदेव के कुछ शब्द अटपटे हैं ।

1. द्विवेदी, विष्णुदास-कृत महाभारत (पांडव चरित), प्रस्तावना, पृष्ठ 99 ।

—पंद्रह—
प्रबोध

महाकवि केशवदास का किसी सुनार ने सोना चुरा लिया था तब उन्होंने उस पतिराम सुनार को नाम ले कर डाँटा था—

दये सुनारिन दाम, रावर को सोन्यो हयों ।

दुख पायौ पतिराम, प्रोहित 'केसव' मिश्र सौं ॥

मूल तोल कसिबान बनि काइथ लिखत अपार ।

राखि मरत पतिराम ये सोना हरत सुनार ॥

महाकवि यह भूल गए कि उनके इस आक्रोश के कारण पतिराम का नाम भी हिंदी-साहित्य में अमर हो जाएगा ।

तानसेन ने यह भूल नहीं की । ज्ञात होता है किसी दुकानदार ने तानसेन को कम तौल कर ठग लिया । उसे प्रबोध देते हुए उन्होंने लिखा—

(रागिनी दोड़ी, तिताला)

ए मन, जब लगि नैन प्रान, तब लगि नियत सब काहू कौ दीदार ।

जत्र लगि जीजियै, तब लगि कीजियै,

राग-रंग घरी-घरी पल-पल छिन-छिन, जात न लागै बार ॥

साँच ही बोलत, साँच ही तोलत, साँच ही कीजै बनज-बेहार ।

'तानसेन' के प्रभु साँच ही में रम रहे,

यातैं समझ-बूझ देखियै, जग सपनौ संसार ॥

तानसेन दुकानदार को उपदेश दे रहे हैं कि यह संसार तो सपने के समान है; ये राग-रंग क्षणिक हैं, इसके जाने में देर नहीं लगती, तू सच्चा भाव क्यों नहीं बतलाता ? कम तौलना और झूठा व्यापार करना ठीक नहीं है, क्योंकि भगवान सत्य में ही रमते हैं ।

—सोलह— जाति

आज के युग में सिद्धांततः जाति का किसी के व्यक्तित्व से कोई संबंध नहीं है, तथापि वास्तविक रूप में विभिन्न निर्वाचनों के प्रसाद के कारण जाति-वाद, भाषा-वाद तथा प्रांतीयता का जितना प्रभाव अथवा कुप्रभाव हुआ है उतना संभवतः भारत में कभी नहीं हुआ था।

जिस समय तानसेन ने जन्म लिया था उस युग में जाति का न केवल व्यक्तित्व से संबंध था अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा से भी उसका संबंध था।

पहले यह विस्तार से लिखा जा चुका है कि तानसेन के पिता मकरन्द बेहट के निवासी थे और तानसेन का जन्म उनकी ननिहाल में माता कमला की कोख से ग्वालियर में हुआ था। अभी तक यह नहीं लिखा गया कि मकरन्द कौन-से ब्राह्मण थे? परन्तु इस विषय में अनेक मत-वाद प्रचलित हैं। कहीं उन्हें गौड़ ब्राह्मण लिखा है, कहीं तैलंग लिखा है और एक विद्वान ने तो यह जिज्ञासा की है कि 'परन्तु पांडे मिश्र कैसे हुआ, यह प्रश्न विचारणीय है'। अवश्य विचार करना चाहिए।¹

इन कथनों की वास्तविकता की परख करने के लिए तानसेन के पितृ-गृह बेहट की यात्रा करना होगी।

1. बेहट

शासन ने अत्यन्त कृपावंत हो कर ग्वालियर से बेहट तक डंबरी-कृत मार्ग बनवा दिया है, यद्यपि बीच में अनेक स्थलों पर उसमें टूट-फूट हो गई है।

जब बेहट चार-पाँच किलो मीटर दूर रह जाएगा तब, यदि यात्रा दिसम्बर मास में की जाए, मार्ग के दोनों ओर दूर-दूर तक फूली हुई सरसों के खेत ऐसे दिखाई देंगे मानो प्रकृति ने आपके स्वागत के लिए पीले गलीचे बिछा रखे हैं। जब आप बेहट के पास पहुँचें तब अव्यवस्थित रूप से बसी सीमेंट के भवन-युक्त बस्ती पर ध्यान न दें और उसे पार कर आप जहाँ पहुँचेंगे वहाँ हरित नीची पर्वतमाला से घिरा हुआ सुरम्य वृक्ष-संकुलित कुंज दिखाई देगा। उसमें प्रवेश करते ही ऐसी आत्म-शांति उपलब्ध होगी और अनायास यह भावना जाग्रत होगी कि यह किसी महापुरुष की साधना-स्थली है। बाईं ओर एक विशाल वट-वृक्ष दिखाई देगा। वट-वृक्षों की आयु हजारों वर्ष बतलाई गई है। यह वट-वृक्ष वृद्ध

1. यहाँ इन विद्वानों के नाम देना उचित नहीं है।

हो गया है और इसकी कुछ डालियाँ टूट कर गिर पड़ी हैं। वनस्पति-विज्ञान के विशेषज्ञ न होने से हम उसकी आयु का सही अनुमान नहीं कर सकते। संभावना यह है कि यह वृक्ष कम-से-कम एक हजार वर्ष का अवश्य होगा। वट-वृक्ष की दाहिनी ओर चार सोपान हैं और उनके दाहिनी ओर एक लगभग चालीस मीटर लम्बा-चौड़ा सरोवर है। उसका उपयोग न होने के कारण उसमें ऊपर कई उतराती दिखाई देती है। वह कितना पुराना है, यह कह सकना संभव नहीं है।

फिर सोपान चढ़ कर बाईं ओर वट-वृक्ष के नीचे वह टेढ़ी मढ़िया दिखाई देगी जहाँ तानसेन संगीत-साधना किया करते थे। यह मढ़िया एक ओर 40 अंश झुकी हुई है। यद्यपि तानसेन की संगीत-साधना का स्थल वट-वृक्ष से कुछ दूर बनाया गया है, तथापि निश्चित ही वह आधुनिक कारीगरी है। संगीत-साधना आराध्य के सामने बैठ कर होती है न कि दूर। मढ़िया के चबूतरे पर कुछ दूर तक किसी श्रद्धालु ने ग्वालियर के कारखाने की बनी टाइलें लगा दी हैं। उसके आगे मढ़िया तक का चबूतरा ज्यों-का-त्यों है। मढ़िया सुदृढ़ चूने की है और दोनों ओर महाराबदार खुले द्वारों-युक्त है। बीच में छोटा-सा पंचमुखी शिव-विग्रह है। मढ़िया के सामने कुछ पुराने भवन बने हैं। वे मढ़िया के साथ बने हुए ज्ञात नहीं होते, वे क्षत-विक्षत दशा में हैं। मढ़िया के पीछे एक अपेक्षाकृत नया मंदिर बना है। इस रचना के थोड़े और आगे दो नये मंदिर बने हैं। इनमें से बड़े मंदिर के सोपान पर नीचे लिखा लेख खुदा है—

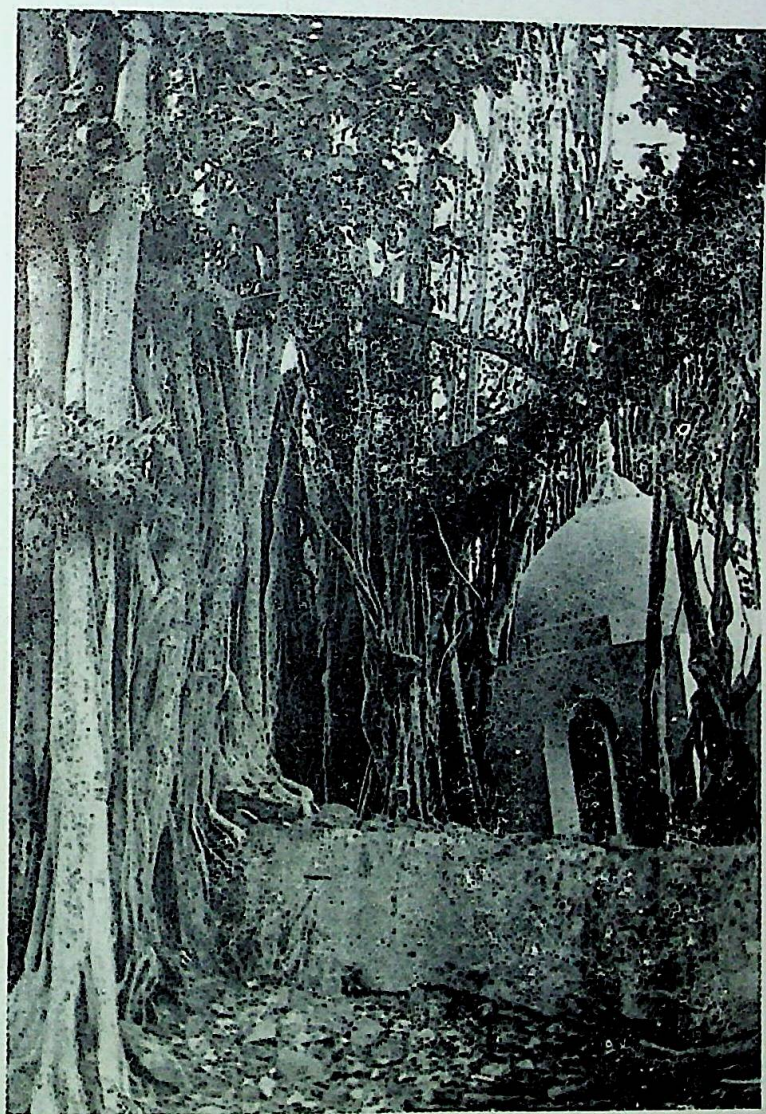
श्रीनाथ चरना पीतांबर सुतनि × हाल निरंतर संवत् 1845

2. पुजारी की दंतकथाएँ

यहीं नारायण पुजारी मिलेंगे, जिन्हें शासन ने इस स्थान की देख-रेख के लिए नियुक्त किया है। वे तानसेन और इस मढ़िया के विषय में अनेक मनोरंजक दंतकथाएँ सुनाते हैं।

एक यह है कि यह मढ़िया किसी जाट राजा ने देखी थी। उसे झुका हुआ देख कर उसने नई मढ़िया बनवाई। चमत्कार यह हुआ कि वह फिर टेढ़ी हो गई और इस कारण राजा ने नया मंदिर बनवाया जिसके सोपान पर ऊपर लिखा लेख है। उस लेख का एक अक्षर अवाच्य हो जाने से बनवाने-वाले का नाम स्पष्ट नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता है कि संवत् 1845 (सन् 1688) में इस क्षेत्र पर गोहद के जाटों का अधिकार था या नहीं? इन सभी नये मंदिरों में जितनी मूर्तियाँ हैं सभी इसी समय के आस-पास की हैं, केवल एकमुख शिवालिंग बहुत प्राचीन है। उसका आधा मुख टूट गया है और अनेक वर्षों की ऋतुओं के आघात से उसका बलुआ पत्थर क्षत-विक्षत हो गया है। फिर भी वह छठवीं शताब्दी के पश्चात् का नहीं है।

मढ़िया का निरीक्षण करने पर उस पुनः बनवाने के कथन पर विश्वास नहीं



पुरातन बटवृक्ष की छाया में
शिव-मढ़िया (बेहट)



तानसेन की साधना-स्थली
बेहट की शिव-मढ़िया

किया जा सकता। यहाँ यह जोड़ देना आवश्यक है कि नारायण पुजारी कहलाते पुजारी हैं, तथापि हैं दुबे।

तानसेन के विषय में उनका कहना है कि वे बचपन में गूँगे थे और उन्हें मकरन्द ने बकरी चराने का काम सौंपा था। उनमें से एक बकरी ऐसी थी जो बिना बच्चा दिए निरंतर दूध देती रहती थी। गूंगा तन्नु जंगल से लौटते समय प्रतिदिन संध्या को मढ़िया के शिव-विग्रह पर उस बकरी का दूध चढ़ाता था। एक संध्या को बहुत आँधी-पानी आया और तन्नु बड़ी कठिनाई से बकरियाँ समेट कर घर पहुँचा। आधी रात को जब उसे भोजन के साथ दूध दिया गया तो उसे यह स्मरण आया कि आज मेरे भगवान को दूध नहीं मिला और वह उसी समय दूध लेकर मढ़िया में पहुँचा और शिव-विग्रह पर दूध चढ़ाया। महादेव ने प्रसन्न होकर कहा—बच्चे वरदान माँग। गूंगा तन्नु कुछ न बोला। जब यही ध्वनि पुनः सुनाई दी तब उसने कंठ के पास उगली रख कर गूँ गूँ करना प्रारंभ कर दिया। भोलानाथ ने कहा—बैठ जा और गाना प्रारंभ कर। तन्नु ने बैठ कर जोर से तान लगाई और उसके कंठ से दिव्य संगीत निसृत हो उठा। तन्नुजी प्रसन्न हो कर घर की ओर भागे।

ग्राम में संगीत की सभाएँ प्रतिदिन रात को जमती थीं। दूसरी रात को ही तन्नुजी उस सभा में, जिसे गम्मत कहा जाता था, पहुँचा और लोगों से निवेदन किया कि उसे भी गाने दिया जाए। लोगों को उस गूँगे को बोलते हुए देख कर बहुत आश्चर्य हुआ, तथापि उसे लोगों ने गाने नहीं दिया और कहा कि तू अभी छोटा है, तू गाना क्या जाने? बहुत चिरोरी करने पर ग्राम के मुखिया ने कहा—बच्चा है, मन रखने को इसे थोड़ी देर गाने दो। तन्ना ने एक किनारे खड़े हो कर गायन प्रारंभ किया। उसे सुन कर सब मंत्र-मुग्ध हो गए और वाद्य-वादक उसकी संगत करने में असमर्थ रहे। लोगों ने पूछा कि तन्नु तूने यह गाना कहाँ से सीखा? बालक ने उत्तर दिया कि मेरे आराध्य भोलानाथ ने मुझे गायन सिखाया है।

3. मिश्र और पांडे

नारायण दुबे, पुजारी ने बतलाया कि इस बस्ती में सभी ब्राह्मण सनाढ्य मिश्र हैं और वे बच्चों को शिक्षण देने तथा पूजा-पाठ का काम करने के कारण पांडे कहे जाते हैं। इस बात की परख करने के लिए ग्राम के (ग्राम क्या अब तो वह बड़ा कस्बा है) कुछ वृद्ध ब्राह्मणों से पूछने पर यह कथन सत्य ज्ञात हुआ।

दिसंबर की ठंड में अपनी वय को देखते हुए हमारे लिए यह यात्रा साहसिक थी, तथापि फ्रेंच महिला डॉ० फ्रांस्वाज देलबोआ 'नलिनी' का बेहूट देखने का बहुत आग्रह था। साथ में थीं संगीत-शास्त्र की महान् विदुषी डॉ० प्रेमलता शर्मा।¹ मढ़िया की ऊँचाई का सही आभास देने के लिए इन्हीं दोनों

1. इन दोनों विदुषियों का परिचय लेखकीय प्रस्तावना में दिया गया है।

विदुषियों को खड़ा किया गया है। दाहिनी ओर हैं फ्रेंच विदुषी और बाई ओर हैं डॉ० प्रेमलता शर्मा।

यह सब कुछ होते हुए भी अब इसमें संदेह नहीं रहना चाहिए कि मकरन्द सनाढ्य ब्राह्मण थे और वे मिश्र थे। क्योंकि तानसेन इन्हीं के पुत्र थे अतएव वे भी सनाढ्य मिश्र होना चाहिए। गोत्र या प्रवर की खोज करना हमने आवश्यक नहीं समझा।

जाति के विषय में लिखने के पश्चात् किसी व्यक्ति के धर्म के विषय में लिखना अधिक युक्ति-संगत ज्ञात नहीं होता; क्योंकि जिस जाति में किसी व्यक्ति का जन्म होता है, वही उसके धर्म का निर्धारण करती है।

तानसेन के संदर्भ में यह विषय इतना सरल नहीं है। एक वर्ग का कहना है कि तानसेन का जन्म ही मुसलमान परिवार में हुआ था। दूसरे वर्ग का कथन है कि उनका जन्म तो हिंदू के घर में हुआ था तथापि उन्होंने आगे किसी कारण से इस्लाम ग्रहण कर लिया। तीसरे वर्ग में वे विद्वान आते हैं जिनकी मान्यता है कि तानसेन हिंदू कुल में उत्पन्न हुए और हिंदू के रूप में ही उन्होंने शरीर त्याग किया।

इन तीनों अभिमतों की परीक्षा करने के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकेगा। इस विवेचन में पहले दो वर्गों का परीक्षण अलग-अलग करना संभव नहीं है, इस कारण एक-एक विद्वान के अभिमत पर अलग-अलग विचार कर लेना उचित है।

1. विन्सेण्ट स्मिथ

विन्सेण्ट स्मिथ बहुत बड़े इतिहासज्ञ माने जाते हैं। अकबर के विषय में उनकी पुस्तक अत्यंत उपयोगी है, तथापि उस पुस्तक में उन्होंने तानसेन के विषय में भी लिख डाला। तानसेन के विषय में उन्होंने लिखा है कि वह मुसलमान हो गया और उसने मिर्जा की उपाधि धारण कर ली अथवा यह उपाधि उसे दे दी गई, और वह ग्वालियर के पवित्र मुस्लिम स्थल पर दफन है।¹

इस कथन पर टिप्पणी करते समय मानसिक संतुलन बनाए रखना कठिन कार्य है। ग्वालियर के पवित्र मुस्लिम स्थल पर दफन होने का प्रश्न तब उठेगा जब यह सिद्ध हो जाए कि तानसेन ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। एक मिर्जा राजा जयसिंह अवश्य इतिहास में आते हैं तथापि वे मिर्जा इस कारण कहे गए थे कि उनके मुगुलों से पारिवारिक संबंध थे। मिर्जा मुगुलिया खानदान के शाहजादों को कहा जाता था। रहीम भी कभी मिर्जा थे, क्योंकि वे मुगुलिया वंश के थे और अकबर ने उन्हें पुत्रवत् पाला था। निश्चय ही तानसेन ऐसे शाहजादे नहीं थे। किसी समकालीन अथवा परवर्ती फारसी ग्रंथ में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि तानसेन को मिर्जा की उपाधि दी गई थी अथवा उन्होंने उसे स्वयं

1. विन्सेण्ट स्मिथ, अकबर 'द ग्रेट मुगुल', पृष्ठ 123।

उपयोग करना प्रारंभ कर दिया था। स्मिथ के इस अनर्गल कथन पर टिप्पणी करने के स्थान पर यही कहना पर्याप्त है कि यदि वह तानसेन के विषय में न लिखते तो इतिहासकार के रूप में उनकी प्रतिष्ठा को बट्ठा न लगता और उसे प्रामाणिक मान कर चलने-वाले शोधार्थियों का मार्ग भी भ्रष्ट न होता। ऐसे विद्वानों की पंक्ति लम्बी है।

2. चट्टोपाध्याय का धर्म-संकट

सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय द्वारा तानसेन पर लिखा हुआ तीन स्थान पर मिलता है। पहले उन्होंने 'नेशनल प्लैग एण्ड अदर एसेज' में तानसेन पर लिखा, फिर सम्मेलन पत्रिका में संवत् 2003 (1946 ई०) में तानसेन पर एक निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें 'कविवर तानसेन' शीर्षक लेख है। इसके उपरांत प्रकाशित हुआ उनका बांग्ला भाषा का ग्रंथ 'भारत संस्कृति'। उसमें 'कवि तानसेन' भी एक परिच्छेद है, जो उस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में सन् 1964 में पहली बार सम्मिलित किया गया था। विभिन्न भाषाओं द्वारा अभिव्यक्तियों में अंतर होते हुए भी विषय-वस्तु लगभग समान है। यद्यपि बांग्ला भाषा के ग्रंथ में उनके कथन सब से बाद के हैं तथा अत्यंत सुंदर रूप में अभिव्यक्त हुए हैं तथापि हिंदी का लेख श्रेष्ठतर है।

विद्वद्भर सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने बांग्ला भाषा की पुस्तक में लिखा है¹—
 "1562 ई० में तानसेन अकबर के दरबार में पहुँचे थे तथा इसी के उपरांत वे मुसलमान हुए थे। तानसेन द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने का हेतु रहस्यावृत है। अकबर को प्रसन्न करने के लिए मुसलमान होना संभव नहीं था, क्योंकि अकबर धर्म के संबंध में सदा उदासीन रहा एवं जीवन के अंतिम समय में उसने इस्लाम को एक प्रकार से छोड़ दिया था। तानसेन द्वारा विरचित पदों के भाव तथा भाषा को देखते हुए मन में यह भाव प्रस्फुटित होता है कि वह भक्त-प्राण होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मुसलमानी भावों से अनुप्राणित तानसेन के नाम से जो कुछ पद प्राप्त होते हैं, उन्हें देखने से यह ज्ञात होता है कि उनमें आंतरिक भावना का पूर्णतः अभाव पाया जाता है। संगीत विषय के उनके अन्यतम गुरु उस्ताद मुहम्मद गौस का प्रभाव पड़ा तब क्या इस के कारण तानसेन मुसलमान हुए? मुहम्मद गौस के हिंदुओं के बीच बहुत लोकप्रिय होने के कारण अनुमान किया जाता है कि अंततः युद्ध-स्थल पर वे हिंदुओं की ही खातिर करते कहे जाते हैं। कहा जाता है कि इस कारण अनेक मुसलमान उनके शिष्य हो गए, इसका प्रमाण प्राप्त है। भारतवर्ष में मुसलमान पीर या फकीरों की लोकप्रियता अनेक क्षेत्रों में हिंदुओं के बीच मुसलमान धर्म का प्रचार करने में सहायक होती थी। एक बार यह भी हुआ कि

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 146-147। बांग्ला भाषा के कुछ प्रयोगों की तथा व्याकरण-विषयक साधारण भूलें इस अनुवाद में हो सकती हैं। बांग्ला भाषा की वाक्य-योजना भी कुछ भिन्न होती है।

यौवन में तानसेन राज-दरबार में घनिष्ठ रूप से मिश्रित होने के कारण मुसलमान संपर्क के कारण ब्राह्मणत्व का आचार-व्यवहार बचा कर नहीं रख सके। इस कारण सजातीयों द्वारा वे परित्यक्त कर दिए गए। तानसेन शेरशाह के पुत्र दौलतखाँ के विशेष बंधु हो गए थे।¹ आगरा में राज-दरबार में कुछ समय तक उन्होंने निवास किया था। यह भी संभव है कि तानसेन के सजातीय अनेक व्यक्तियों को ग्वालियर-विजय के पश्चात् जोर-जबरदस्ती से मुसलमान बना लिया गया था, पूरी जाति-की-जाति मुसलमान बना लेने के उदाहरण भारतवर्ष में कम नहीं हैं। यह भी विचारणीय विषय है कि अघुलफ़ज़ल ने आईने-अकबरी में अकबर की सभा के जो छत्तीस उस्तादों के नाम दिए हैं, उनमें अनेक ग्वालियर के थे एवं ग्वालियर के इन्हीं उस्ताद या कलावंतों में हिंदू नाम-युक्त मुसलमान हैं; उदाहरणार्थ मियाँ तानसेन एवं उसका पुत्र तानतरंगखाँ, श्रीज्ञानखाँ, चाँदखाँ जैसे नाम थे। ग्वालियर-निवासी हिंदू संभवतः तानसेन के गोत्र के थे—इसी के अनुसार मुरजान-खाँ एवं वीरमण्डलखाँ, प्रवीणखाँ आदि नाम दे कर यह विचार होता है कि अनेक ब्राह्मण गायक एवं वादक को मुसलमान बना दिया था, अन्यथा अन्य कोई कारण उनके मुसलमान होने का पाया नहीं जाता। एक कारण और भी दिखाई देता है—हो सकता है तानसेन ने किसी मुसलमान रमणी के प्रेम में पड़ कर अपना धर्म त्याग कर दिया हो अथवा हिंदू नाम त्याग दिया हो। एक जनश्रुति यह भी है कि तानसेन के अपने दरबार में आने पर अकबर जब उनसे गायन नहीं करा पाया तब उसने अपनी कन्या का दान उसे कर दिया और इस प्रकार उसको प्रसन्नता-पूर्वक गायन करने के लिए प्रेरित किया। इस जनश्रुति के अनुसार मूल में प्रेम में पड़ कर धर्म त्यागने की बात कही जाती है। कुछ भी हो, मुहम्मद गौस का प्रभाव तानसेन के जीवन पर विशेष भाव से कारगर हुआ अवश्य था। तानसेन की मृत्यु पर उसकी देह ग्वालियर के विराट पर्वत के चरणों में मुहम्मद गौस की सुंदर प्रस्तरमय, अलंकार-मंडित समाधि के पार्श्व के चौड़े प्रांगण में स्थित है। तानसेन की यह समाधि अभी भी उत्तर भारत के श्रद्धालु गायकों की श्रद्धा की महा-तीर्थ-स्थान है। इस समाधि के पास एक इमली का वृक्ष है, उसे जो श्रद्धा-सहित खा लेते हैं उनका संगीत-गुरु तानसेन के आशीर्वाद से मीठा स्वर हो जाता है।”

3. दौलत काजी

सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय द्वारा भाषा-विज्ञान अर्थात् भाषाओं के विकास के विषय में लिखे गए ग्रंथ अत्यंत उत्कृष्ट हैं। एक बार हमारी भावना को एक प्रसंग में प्रबल आघात लगा था। साधन-कृत मैनासत का संपादन करते समय हमने सुकुमार सेन के ‘बांग्ला साहित्येर इतिहास’ का अवगाहन किया था।²

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय का केवल यह अनुमान सत्य के कुछ निकट है।

2. द्विवेदी, साधन-कृत मैनासत, पृष्ठ 112।

दक्षिणी वर्मा (ब्रह्मदेश) के आराकाण में रोसांग नामक राजवंश के श्री सुधर्मा का राज्य था । इनका समय 1622-1635 ई० के बीच माना जाता है । इनके सेनापति अशरफख़ाँ के आश्रित कवि दौलत काजी थे ।

दौलत काजी ने अपनी कृति 'सती मयना आँ लोरचन्द्रानी' में एक स्थल पर लिखा है¹—

ठेठा छोपाइया दोहा कहिला साधने ।

ना बूझे गोहारि भाषा कोन कोन जने ॥

अर्थात् इस 'गोहारि भाषा' को कुछ लोग सुदूर आराकाण में भी समझते थे । यह 'गोहारि' 'ग्वालियरी' का सुदूर आराकाण के बंगाली उच्चारण की देन है । यदि रसगुल्ला मुँह में रख कर ग्वालियरी का उच्चारण किया जाए तब अस्पष्ट-सा 'गोहारि' शब्द ही मुँह से निकल सकेगा ।

इस गोहारि का आशय जब सुकुमार सेन ने सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय से पूछा तब उन्होंने सूचित किया कि यह शब्द 'गंवारी' से उद्भूत है ।²

इस संबंध में सुनीति वादू का धर्म-संकट यह रहा है कि धर्म-प्राण हिंदू के भावों से परिपूरित पद-रचयिता मुसलमान कैसे हो सकता है ? ऊपर लिखे निबंध में उल्लिखित जनश्रुतियों पर पहले पर्याप्त लिखा जा चुका है । इस उद्भट विद्वान द्वारा इस विषय में जो भूल हुई फिर वही ग्वालियर के संबंध में ही हुई है । पहला भ्रम यह हुआ कि शेख मुहम्मद गौस संगीतज्ञ थे तथा उनका प्रभाव तानसेन पर आजीवन रहा । सबसे विचित्र कथन यह है कि मुगुलों द्वारा ग्वालियर-विजय के उपरांत ब्राह्मण जाति को सामूहिक रूप से मुसलमान बना दिया गया था । यदि सन् 1526 से 1540 ई० तक का ग्वालियर का इतिहास इन विद्वद्वर, को उपलब्ध होता तब यह कथन कदापि नहीं किया जाता । 1523 ई० में विक्रमादित्य लोदियों से हारा । उसके उपरांत धुरमंगद, वयस्क हो जाने पर रामसिंह और नरसिंहदेव निरंतर मुगुल प्रशासकों को त्रस्त करते रहे । यह इतिहास यहाँ विस्तृत रूप से देने की आवश्यकता नहीं है । इतना कथन करना पर्याप्त है कि ग्वालियर के जुझारू राजपूतों ने तुकों, अफगानों अथवा मुगुलों को कभी चैन से जमने नहीं दिया । उसके पश्चात् आ गया अकबर का युग जिसके विषय में स्वयं सुनीतिकुमार ने स्वीकार किया है कि उसके समय में हिंदुओं का सामूहिक धर्म-परिवर्तन कराना संभव नहीं था । तोमर राजा मुसलमानों को आश्रय अवश्य देते थे । कुरआन-शरीफ की भारत में उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिलिपि सन् 1394 ई० में ग्वालियर में तोमर वंश के राज्य-संस्थापक वीरसिंहदेव तोमर के

1. सत्येन्द्रनाथ घोषाल द्वारा संपादित सती मयना आँ लोरचन्द्रानी, पृष्ठ 13 तथा 145 ।
2. सुकुमार सेन, बांग्ला साहित्यर इतिहास, पृष्ठ 607 ।

समय में उतारी गई थी। मानसिंह तोमर ने गढ़ के अनति दूर मस्जिद बनाने की भी अनुमति दे दी थी और अपने द्वारा निर्मित एक महल जिसे 'गूजरी महल' कहा जाता है उसके मुख्य द्वार के ऊपर अरबी भाषा में किसी सूफी संत से आशीर्वाद भी अंकित करवा दिया है, तथापि उन समर-शूर तोमरों के राज्य में हिंदुओं के एकाकी अथवा सामूहिक धर्म-परिवर्तन कराने का किसी को साहस नहीं हो सकता था।

4. तानसेन का धर्म-समन्वय

यह पहले लिखा जा चुका है कि मानसिंह तोमर का सबसे बड़ा कार्य धर्म-समन्वय था। अकबर की नीति भी धर्म के विषय में अत्यंत उदार थी। इन दोनों का प्रभाव तानसेन पर भी गहरा पड़ा था।

तानसेन ने अपने धर्म-संबंधी विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है¹ कि जिस प्रकार अनेक सरिताएँ भिन्न-भिन्न मार्गों से समुद्र में लीन हो कर अपना परम ध्येय प्राप्त करती हैं उसी प्रकार मानवगण भी विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के भक्ति-मार्ग अनुसरण करते हैं। आशय यह है कि धर्म और संप्रदाय मात्र साधन है, साध्य परमात्मा है जिसे चाहे अल्लाह कह लीजिए, चाहे शिव कह लीजिए, चाहे राम-रहीम कुछ भी कह लीजिए।

तानसेन द्वारा पीरों और पैगम्बर के विषय में लिखे गए पदों को भी इस ओर इंगित करता हुआ कहा जाता है। पहले यह लिखा चुका है कि तानसेन सीकरी में शेख सलीम चिश्ती को पद सुनाते थे। ये लगभग समस्त पद शेख को सुनाने के लिए ही लिखे गए थे। तानसेन ने अकबर को अल्लाह का नबी कहा था जो इस्लाम धर्म को मानने वाले की दृष्टि में कुफ्र है। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तानसेन की शिक्षा-दीक्षा मानसिंह तोमर की राजसभा में हुई थी। उस राजसभा के धार्मिक सहिष्णुता-पूर्ण वातावरण में न तो बख्शू जैसे मुसलमान को सरस्वती, गणेश, शिव जैसे देवताओं की वंदना में पद लिखने में संकोच होता था, और न वैजू जैसे कट्टर ब्राह्मण को राम और रहीम की एकता का उद्घोष करने में किसी प्रकार का संकोच था। उस सहिष्णुता के वातावरण में जन्मे और बड़े तानसेन को पीरों और पैगम्बर की स्तुति करने में कोई धार्मिक संकोच नहीं हो सकता था।

अकबर की प्रशंसा में तानसेन के कुछ पद तो ऐसे हैं जिन्हें समकालीन मुल्लाओं ने घोर कुफ्र माना होगा। ये पद भी यथास्थान दिए गए हैं। एक पद में तो तानसेन ने अकबर की इस कारण स्तुति की है कि वह हिंदू-भक्त था—

1. पद के पाठ के लिए पीछे पृष्ठ 126 देखें।

(सगिनी टोड़ी, चौताला)

तुअ समान कौ दूजौ रच्यौ नाहन गुन समर्थ न आयौ है,
धरमराज गरीब निवाज ।

तुम-सम और कौन महाज्ञान गुण-निधान दाता विधाता रचपच
विरंच ज्ञात समाज ॥

भरन-पोषण दुख-दरिद्र हरन षट-दरसन निवास सकल साज ।
'तानसेन' कहै प्रभु सुल्तान 'हिंदू-भक्त' उधारन भगवान तानै
प्रगट कियौ सकल गुन साज ॥

तानसेन के पदों में त्रिवेणी, गणेश, सरस्वती, तंत्र, महाकाली, शंकर, निर्गुण-निरंजन, कृष्ण-भक्ति के विषय में अनेक पद मिलते हैं। इन पदों में उनकी अगाध आस्था दिखाई देती है। ऐसे पद किसी मुसलमान द्वारा नहीं लिखे जा सकते। इनमें परिलक्षित पुनर्जन्म का विश्वास इस्लाम के नितांत विपरीत है।

यह तथ्य सर्व-मान्य है कि मृत्यु के समय मनुष्य के मुख से सत्य बात निकलती है। इस सिद्धांत को आज के विधि-जगत में पूर्ण मान्यता है। तानसेन की आस्था के विषय में जो पद पहले 'संगीत सूर्य का अवसान' परिच्छेद में दिए जा चुके हैं उनसे स्पष्ट होता है कि अंतकाल के समय प्रभु से उसने क्या मांगा था।

5. तानसेन का मकबरा

अंततोगत्वा ग्वालियर में स्थित शेख मुहम्मद गौस के विशाल मकबरे के दाहिनी ओर स्थित तानसेन का मकबरा ही शेष रह जाता है।

तानसेन हिंदू रहे हों या मुसलमान, यह मकबरा निश्चय ही किसी घोर छल-प्रपंच का परिणाम है।¹

ज्ञात होता है कि शेख मुहम्मद गौस के सज्जादानशीन ने तानसेन को गौस का शिष्य सिद्ध करने के लिए यह समाधि या मकबरा बनवा दिया है। शेख या उन के वंशज को यह बहुत बड़ा प्रलोभन रहा होगा कि तत्कालीन भारत के महानतम सम्राट अकबर का महानतम संगीतज्ञ तानसेन गौस का शिष्य था। यह स्मरण रखना चाहिए कि तानसेन की महानता के कारण अनेक परवर्ती गवैयों ने 'तानसेन' नाम रख लिया था। यह बहुत संभव है कि उनमें से किसी के शव को दफना कर उसे मूल तानसेन का घोषित कर दिया गया हो। तानसेन जैसे महान व्यक्ति की समाधि या मजार इतना अकिंचन हो, यह कल्पनातीत है।

विकल्प में यह प्रश्न शेष रह जाता है कि तानसेन का यह मजार संभव है कहीं और हो, और मरते समय उनके पुत्रों और चेलों ने उन्हें मुसलमान मान

1. कैलाशचंद्र बृहस्पति का भी यही मत रहा है। खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृष्ठ 124।

लिया हो। वृन्दावन के निधिवन की कथित समाधि निश्चय ही वह नहीं है। अन्य स्थान पर यदि ऐसा कोई मजार हो, तब उसके विषय में कुछ सुना नहीं गया है। अति उत्सुक विद्वान स्वतंत्र हैं कि वे यत्र-तत्र उसकी खोज करते फिरें।

तानसेन की मृत्यु के उपरांत उन्हें मुसलमान मान लिया गया था। यदि इस तथ्य को मान भी लिया जाए, तब तानसेन की जीवन-गाथा यह खोजने के लिए देखनी होगी कि किस घटना के कारण उन्हें मरणोपरांत मुस्लिम माना गया। निश्चय ही तानसेन को अकबर ने मुसलमान नहीं बनाया था, रामचंद्र बघेला के पास रहते हुए यह असंभव था।

6. दौलतखाँ का उजियाला

इतिहास यह बतलाता है कि तानसेन दौलतखाँ उजियाला पर आसक्त हो गए थे।¹ उस क्रम में उन्होंने क्या-क्या किया होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसकी उन्हें पर्याप्त आत्म-ग्लानि भी हुई थी, राजा रामचंद्र बघेला के पास वे साधु या फकीर के वेष में इसी कारण पहुँचे थे, और इसी कारण सिकंदर सूर का आगरा जाने का निमंत्रण ठुकरा दिया था।

तानसेन की आत्म-ग्लानि का प्रभाव उस समय के खालियर के उनके जति-बंधुओं पर न पड़ सका और उन्होंने तानसेन को म्लेच्छ घोषित कर दिया। ईसाई मिशनरियों ने सभी कुओं में जूठी डबल रोटियाँ डाल कर गाँव-के-गाँव म्लेच्छ घोषित करवा दिए थे। इस्लाम के संदर्भ में भी ऐसी घटनाएँ मिलती हैं। हिंदुओं की यह मूढ़ प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है। केवल यही एक संभावना उन्हें मुसलमान बनाने के लिए इतिहास में उपलब्ध है। परंतु तानसेन ने इस पंच-शाप को कभी अंगीकार नहीं किया था।

वे ब्राह्मण कुल में जन्मे, उसी रूप में बड़े, उनकी अंतरात्मा विशुद्ध हिंदू संस्कृति से परिपूरित रही और अंत समय में भी उन्होंने गोलोक में अपने आराध्य श्री कृष्ण के चरणों में निवास की आकांक्षा की थी। उनके पुत्रों का विवरण पहले दिया जा चुका है। वह भी पर्याप्त जानकारी देता है।

7. उपसंहार

तानसेन को हिंदू-मुसलमान, सूफी, कृष्ण-भक्त-संप्रदायों के बीच बाँटने का प्रयास विगत तीन शताब्दियों से किया जा रहा है, इस कारण इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रसंग पर इतना लिखना आवश्यक हुआ।

संगीतज्ञ का प्रमुख ध्येय श्रोताओं का रंजन करना तथा ब्रह्मानंद की अनुभूति कराना होता है। वह जिस समाज में अपना गायन करता है, उसके अनुरूप ही पद सुनाता है। कला की न कोई जाति होती है न वर्ण, वह व्यापक प्रभाव

की होती है। गायक जाति, धर्म या राजनीति का प्रचारक नहीं होता। वस्तुतः यह सिद्धांत सभी कलाकारों के विषय में लागू होता है।

तानसेन जैसे भारत के सुपुत्र, ग्वालियर के गौरव और भारतीय संगीत की अद्वितीय विभूति के धर्म और जाति का विवेचन निरर्थक और परिणामहीन मानसिक व्यायाम है। भारत को उतना ही गौरव बँजू और तानसेन से प्राप्त होता है, जितना बख्शू और महमूद लोहंग से अथवा यह कहिए कि महान अकबर से या महान मानसिंह तोमर से।

इस मजार में ग्वालियर के तानसेन की अस्थियाँ सुरक्षित नहीं हैं, इस कारण ग्वालियर-प्रेमियों की दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। तानसेन की महानता उनकी हड्डियों में नहीं थी, वरन् उस 'हंसा' में थी जो मिट्टी छोड़ कर अनंत की ओर उड़ गया। वैसे भी तानसेन पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे; यदि ग्वालियर कभी इस योग्य होगा तब वे यहाँ तन्नू के रूप में पुनः अवतरित हो सकेंगे।

तावर्षेव

कृतित्व



आदिवा

आदिवा

१

—अठारह— कवि तानसेन

तानसेन जिस युग में हुए थे, वह हिंदी साहित्य का स्वर्णिम काल माना जा सकता है। काशी में गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, विनयपत्रिका, आदि के द्वारा राम-भक्ति की पावन धारा बहा रहे थे। गोकुल में महात्मा सूरदास कृष्ण-भक्ति की कालिन्दी प्रवाहित कर सूरसागर परिपूरित कर रहे थे। ओड़छा में महाकवि केशवदास काव्य-शास्त्र का विवेचन कर रहे थे तथा परलोक सुधारने के लिए रामचन्द्र-चन्द्रिका का प्रणयन कर रहे थे।

स्वयं अकबर अच्छा कवि था। उसके दरबार को रहीम, वीरबल, गंग जैसे महाकवि सुशोभित कर रहे थे।

पूर्ववर्ती हिंदी कवियों से भी तानसेन के युग को बहुत महत्वपूर्ण दाय प्राप्त हुआ था। महाकवि विष्णुदास महाभारत (पांडव चरित) तथा रामायण लिख कर हिंदी भाषा को अपभ्रंश के कैचुल से निकाल कर काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर चुके थे। उनके सुपुत्र नारायणदास ने 'छिताईचरित' द्वारा अपने पिता की भाषा को और भी परिमार्जित रूप दिया तथा संगीत को आधार बना कर बृहत आख्यान-काव्य लिखा था।

स्वयं मानसिंह तथा उनके नायक बैजू, बख्शू, गोपाललाल, आदि ने हजारों पदों का दाय तानसेन के लिए छोड़ा था।

निर्गुण भक्त कवीर राम-रहीम की एकता के विषय में तथा हिंदू-मुसलमान, दोनों धर्मों के पाखंडों का खंडन करते हुए अनेक पद लिख चुके थे। मीराबाई के पदों में अपने गिरधर की प्राप्ति की अदम्य आकांक्षा से पूरित प्रवाह प्रकट हुआ। मीरा तथा निर्गुण-पंथी दादूदयाल निश्चय ही तानसेन के समकालीन थे। दादूदयाल के साथ अकबर 40 दिन तक वाद-विवाद कर अपनी शंकाएँ दूर करता रहा था।

तानसेन के पदों के परिशीलन से प्रकट है कि उन्होंने इन सभी परंपराओं का पूर्ण निर्वाह किया है।

—उत्तीस—

तानसेन की रचनाएँ

तानसेन के पदों के विषय में जहाँगीर-कालीन इकबालनामा में उल्लेख है कि तानसेन के दो हजार से अधिक पद प्रचलित थे। शाहजहाँ के समय में बख्श के पदों के संग्रह करने-वाले अजमखाँ ने लिखा है कि यदि तानसेन के पदों का संग्रह किया जाए, तब वे दो हजार से अधिक होंगे।

इस अध्ययन में उपलब्ध पदों की संख्या का विवरण नीचे लिखे अनुसार है:—

- (1) सरयूप्रसाद अग्रवाल—‘अकबरी दरबार के हिंदी कवि’—182; इनमें से कुछ ऐसे पद हैं, जो अन्यत्र नहीं हैं।
- (2) नर्मदेश्वर चतुर्वेदी—‘संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ’—247 (सभी संगीत-राग-कल्पद्रुम से)।
- (3) पूर्वोक्त लेखक—‘कवि तानसेन और उनका काव्य’—250; इस कृति में लेखक ने संख्या डालने में एक की भूल कर दी है, इस कारण अंत में अंक-संख्या 249 है।
- (4) प्रभुदयाल मीतल—‘संगीत सम्राट तानसेन’—288 पद संगीत-राग-कल्पद्रुम से खोज कर दिए हैं तथा 8 पद ‘क्रमिक पुस्तक मालिका’ से संग्रह कर के दिए हैं। इस प्रकार इन दोनों स्रोतों के 296 पद प्राप्त हुए हैं।
- (5) कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति—‘ध्रुवपद और उसका विकास’—तानसेन की छाप-युक्त 58 पद अप्रकाशित रागमाला से ले कर दिए हैं।

वह हस्तलिखित प्रति पूर्वोक्त विद्वान को रामपुर के अयोध्याप्रसाद पखावजी से उपलब्ध हुई थी। कुछ समय यह प्रति ठा० जयदेवसिंह के पास रही। इसके उपरांत पखावजी के सुपुत्र ने इसे उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी को बेच दिया। उसकी एक प्रतिलिपि काशी हिंदू विश्व-विद्यालय, वाराणसी के संगीत-शास्त्र विभाग में है। वाराणसी की प्रति में कुछ पद अधिक हैं, संभव है कैलाशचंद्र बृहस्पति से कुछ पद छूट गए हैं। कुछ पाठ-भेद भी हैं, जो प्रतिलिपिकार द्वारा कर दिए गए होंगे अथवा वे ही मूल पाठ होंगे। जो भी हुआ हो, वाराणसी की प्रति के पाठ श्रेष्ठतर हैं।

- (6) सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने सम्मेलन पत्रिका, 2003 के निबंध ‘कविवर तानसेन’ के परिशिष्ट के रूप में 12 पद दिए हैं। ये सब नवीन हैं, जो केवल बंगाल से ही उपलब्ध किए गए ज्ञात होते हैं।

इनमें फ्रेंच विदुषी-फ्रांस्वाज़ देलवोआ ने हमें 15 पद और दिए हैं। इस प्रकार यह अध्ययन लगभग 400 पदों पर आधारित है।

यद्यपि यह अध्ययन 400 पदों तक ही सीमित है; तथापि इनके अध्ययन से तानसेन की जीवन-गाथा, उनकी आस्था और विश्वास और उनके महती ज्ञान, श्रेष्ठ कवि-रूप तथा संगीत-शास्त्र की मर्मज्ञता के दर्शन होते हैं।

तानसेन के तीन ग्रंथ, संगीत-सार, रागमाला और गणेश-स्तोत्र कहे जाते हैं। गणेश-स्तोत्र उपलब्ध नहीं है; ज्ञात यह होता है कि तानसेन के गणेश की स्तुति के पदों का कोई संग्रह कर दिया गया होगा। यद्यपि हमें बहुत संदेह है कि शेष दो रचनाएँ तानसेन की ही हैं, तथापि उनका कुछ विवरण दिया जा रहा है।

1. संगीत-सार

तानसेन का यह ग्रंथ हस्तलिखित रूप में रीवा राज्य के पुस्तकालय में उपलब्ध है। सरस्वती भंडार की ग्रंथ-संख्या 12 तथा बस्ता क्रमांक 114 में यह सुरक्षित है। इसका प्रतिलिपि-काल संवत् 1888 है। इसका कुछ भाग कृष्णानंद देव व्यास ने संवत् 1898 में 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' में प्रकाशित किया था। इसके उपरांत सरयूप्रसाद ने संवत् 2007 में 'अकबरी दरबार के हिंदी कवि' के परिशिष्ट के रूप में इसे पूरा प्रकाशित किया है। नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपना पाठ रीवा के सरस्वती भंडार की प्रति से लिया है, तथापि उसमें किंचित् संशोधन भी कर दिए हैं। परंतु पाद-टिप्पणियों में यह नहीं बतलाया है कि संशोधन कहाँ और क्यों किए हैं। प्रभुदयाल मीतल ने अपनी पुस्तक 'संगीत सम्राट तानसेन, जीवनी और रचनाएँ' में विक्रम संवत् 2017 में संगीत-सार का पाठ दिया है। इस ग्रंथ से यह ज्ञात नहीं होता कि संगीत-सार का पाठ लेखक ने कहाँ से लिया है।

संगीत-सार में संगीत के सभी अंगों, नाद, तान, स्वर, राग, बाद्य और ताल का विवेचन किया गया है।

2. रागमाला

एक ग्रंथ 'रागमाला' भी तानसेन के नाम से लिखा मिला है। इसका पाठ ईश्वरीप्रसाद माथुर ने अपनी पुस्तक 'तानसेन' में तानसेन-कृत दोहे के नाम से विक्रम संवत् 1999 में (अप्रैल 1942) में दिया था। गोवर्धनलाल द्वारा संपादित यह ग्रंथ काशी से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् विक्रम संवत् 2013 (1956 ई०) में नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने अपनी कृति 'कवि तानसेन और उनका काव्य' में इसे प्रकाशित किया। लेखक ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उसने यह पाठ किस मूल प्रति के आधार पर बनाया है। प्रभुदयाल मीतल ने वि० सं० 2017 (1960 ई०) में रागमाला का पाठ दिया है। इनके द्वारा भी आधारभूत पाठ की सूचना नहीं दी गई है।

संगीत-सार की रचना विचित्र रूप से हुई है। संगीत-लक्षण, संगीत-भेद, नाद, तान और स्वर के संदर्भ में रागमाला के 89 दोहों को ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया गया है। राग-रागिनियों के विवरण अक्षरशः वे ही हैं जो फकीरुल्ला ने मानकुतूहल के अनुवाद में दिए हैं।

अगरचंद नाहटा को 'रागमाला' नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ था। मानकुतूहल के रागों से तुलना कर उन्होंने यह परिणाम निकाला था कि वह ग्रंथ मूल मानकुतूहल का ही अंग है। वह तत्कालीन 'मध्यभारत संदेश' में प्रकाशित भी हुआ था।

अठारहवीं शताब्दी में कजोरीराय द्वारा लिखित कहे गए संगीत-संबंधी एक हस्तलिखित ग्रंथ में 'अथ गानकुतूहल भाषा' पुष्पिका है। यह भी कुछ अन्य नहीं है, मानकुतूहल के रागाध्याय की प्रतिलिपि है। यह कृति भी कजोरीराय की नहीं है, उसके पिता या चाचा राधाकृष्ण की है।

इन रागमालाओं को निश्चित-रूपेण तानसेन द्वारा विरचित नहीं माना जा सकता। इनको किसने और क्यों लिखा तथा परम विख्यात महापुरुष के नाम से क्यों प्रचारित किया, यह कहना संभव नहीं है। यह संभावना हो सकती है कि दो, तीन, चार, पाँच अथवा किसी अन्य क्रम के 'तानसेन' नामधारी गायक ने इसे लिखा हो।

संगीत-सार नामक पुस्तक के विषय में संगीत-शास्त्र की आज की महानतम विदुषी प्रेमलता शर्मा का अभिमत उद्धृत कर देना ही पर्याप्त है¹—

“संगीत-शास्त्री के रूप में तानसेन का मूल्यांकन अभी होना शेष है। सरयूप्रसाद अग्रवाल ने संवत् 2007 में तानसेन का 'संगीतसार' अपने ग्रंथ 'अकवरी दरबार के हिंदी कवि' में प्रकाशित किया था। इस ग्रंथ का पाठ खंडित और भ्रष्ट है। पूरा ग्रंथ कितना विस्तृत रहा होगा, कहना कठिन है; क्योंकि आरंभ में उद्देश्य या प्रतिज्ञा है ही नहीं। जितना-सा अंश प्रकाशित है, उसमें संगीत-रत्नाकर की प्रतिपादन-पद्धति ही दिखाई देती है। संगीत का लक्षण, मार्ग-देशी का संक्षिप्त उल्लेख, नाद का कुछ विस्तार से वर्णन, 'इडा-पिंगलादि का संक्षिप्त उल्लेख और इसके बाद अकस्मात् शुद्ध तान का लक्षण है। स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना के बिना तान का उल्लेख कुछ आश्चर्यजनक है। तान के बीच में ही ग्राम का लक्षण है; पुनः तान, कूटतान स्वर-साधारण; पुनः ग्राम, राग का लक्षण, रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग, ये रागभेद; पुनः श्रुति, मूर्च्छना (ये तान से पहले होने चाहिए), जाति के तेरह लक्षण, स्वरों के उच्चारण-स्थान, वर्ण (ब्राह्मणादि), आलाप-भेद, शिव-पार्वती से रागों की उत्पत्ति, राग-रागिनी नामोल्लेख; फिर 'अथ प्रबंधाध्याय प्रकरण' इतना कह कर वाद्य-भेद के नाम, मात्र

1. एक पत्र द्वारा प्राप्त ज्ञातव्य तथ्य।

दिए हैं। इसके बाद तालाध्याय का प्रारंभ कहा है। इसके पूर्व कहीं अध्याय नाम का उल्लेख नहीं; तालों के अंग, देशी तालों का नामोल्लेख (संगीत-रत्नाकर के मत से) किया गया है। इसके बाद प्रसंग से सर्वथा भिन्न विषय गमक, लक्षण लिया गया है। पुनः भरत मत से तालाध्याय का प्रारंभ कहा है और मार्गतालों का वर्णन दिया है। फिर से देशी तालों का नाम और लक्षण दिया है। यहाँ प्रथम देशी ताल ब्रह्मताल है जो कि संगीत-रत्नाकर में नहीं है। किंतु मौखिक परंपरा में आज भी ब्रह्मताल सुपरिचित है। अनेक देशी तालों के लक्षण देने के बाद पुनः 'भरत मतानुसारेण' ताल कहे हैं। यहाँ भी आरंभ ब्रह्मताल से ही है। अनेक तालों के लक्षण के बाद 'इति श्री तालाध्याय भरतमते कथिता संपूर्ण शुभम्' ऐसी पुष्पिका के साथ ग्रंथ समाप्त है। नृत्य को छोड़ कर संगीत-रत्नाकर के सातों अध्यायों की विषय-वस्तु का स्पर्श-मात्र हम प्राप्त पाठ में है। कुछ विस्तृत निरूपण यदि है तो केवल देशी तालों का। राग-प्रकरण में संगीत-रत्नाकर का अनुसरण नहीं है, राग-रागिनी पद्धति का अल्प उल्लेख-भर है। रागांग-भाषांगदि का नामोल्लेख मात्र है। विशेषता यही है कि 16 वीं शताब्दी में मेल-थाट की जो पद्धति उद्भूत हो चुकी थी, उसकी गंध भी इस ग्रंथ में नहीं है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तानसेन के काल में भी संगीत-रत्नाकर में प्रतिपादित प्राचीन ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति का, समझ के साथ प्रतिपादन करने की क्षमता देश के कुछ भागों में विद्यमान थी, यद्यपि उस समय के अधिकांश ग्रंथकार मेल-थाट पद्धति को अपना चुके थे और संगीत-रत्नाकर उनके लिए दुर्बोध हो चुका था। यह अवश्य कहना होगा कि तानसेन के नाम से 'संगीत-सार' का जितना-सा पाठ प्राप्त है, उसमें किसी भी विषय का गंभीर प्रतिपादन नहीं है।"

ऐसी दशा में यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों कृतियों की विषय-वस्तु पूर्णतः अशुद्ध है, तारतम्यहीन और अधूरी अवश्य है। तानसेन के बाद के अनेक संगीतकारों ने इस यशस्वी व्यक्तित्व का नाम अपना लिया था। एक तानसेन का उल्लेख जहाँगीर-काल में भी मिलता है, जिसके कारण कुछ विद्वानों को उलझन भी हुई है। यह क्रम आगे भी चलता रहा; संभव है, इनमें से किसी तानसेन ने ये दोनों पुस्तकें लिखी हों।

तानसेन के कवित्व और संगीत के अध्ययन में ये दोनों पुस्तकें उपयोगी नहीं हैं। इन दोनों विषयों का विवेचन करने के लिए केवल 400 पदों को आधार मानना होगा। भले ही यह संख्या कम हो, तथापि इनसे तानसेन के कवि तथा संगीत-शास्त्री के रूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

—बीस—

संगीत-शास्त्री कवि तानसेन

तानसेन के पदों की विषय-वस्तु अत्यंत व्यापक है। इनमें तानसेन की काव्य-सरस्वती की स्वच्छंद स्फूर्ति परिलक्षित होती है। इनकी विषय-वस्तु में निरंकार परब्रह्म का ध्यान तथा राम, कृष्ण, शिव, उमा और शक्ति के अनेक रूपों की अभ्यर्थना की गई है। गणेश तथा सरस्वती की वंदना तो सभी ध्रुपद-गायकों ने की है, तानसेन के पदों में भी उनकी स्तुति के पद मिलते हैं। कृष्ण की लीलाओं से संबंधित अनेक पद प्राप्त हुए हैं। प्रकृति-वर्णन से संबंधित पद, विशेषतः उषा और सूर्योदय के वर्णन-युक्त श्रेष्ठ सुंदर पद मिलते हैं। संगीत के तत्त्वों का निरूपण करने-वाले भी अनेक पद प्राप्त हुए हैं; नारी की सुंदरता के वर्णन-युक्त अनेक पद मिले हैं; साथ ही नायिका-भेद पर तानसेन के कुछ बहुत उत्कृष्ट पद उपलब्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ इस्लाम से संबंधित पद भी प्राप्त हुए हैं। कुछ पद तंत्र-साधना से संबंधित भी हैं। कुछ पद राजा-महाराजाओं की स्तुति के भी मिले हैं। इन पदों की विषय-वस्तु के आधार पर तानसेन के कवि-रूप और संगीत-शास्त्री-रूप का विवेचन अनेक परिच्छेदों में करना आवश्यक होगा। प्रारंभ में तानसेन के कवि-रूप के दर्शन करना अधिक उचित होगा, क्योंकि तानसेन को केवल श्रेष्ठ गायक के रूप में माना गया है और हिंदी-संसार ने उनके उच्च श्रेणी के कवित्व की पूर्णतः उपेक्षा की है। एक कारण यह भी है कि ध्रुपद-गायन-शैली पद-प्रधान है, गायन के अन्य अंग उसके संवर्धन के लिए होते हैं।

यहाँ यह स्मरणीय है कि कुछ पुरातन-वादी संस्कृत के संगीत-शास्त्र के ग्रंथों के आधार पर, 'ध्रुवपद' शब्द का प्रयोग करते हैं। तथापि भारत में सर्वत्र 'ध्रुपद' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

—इक्कीस— भाषा-विवेचन

1. माधव कवि

वांघवगढ़ के राजकवि माधव ने तानसेन के विषय में लिखा है¹—
'स सर्व भाषा-चतुरः' ।

उस समय के राज-दरबारों से संबंधित सभी व्यक्तियों को लोक-भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी, अरबी तथा तुर्की भाषाओं का ज्ञान आवश्यक था । तानसेन को भी लोक-भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी, अरबी तथा कुछ तुर्की का ज्ञान था ।

तत्कालीन लोक-भाषा का नाम जानना आवश्यक है । इस हेतु संगीत-शास्त्री भावभट्ट के ग्रंथ 'अनूप-संगीत-रत्नाकर' में ध्रुपद के लक्षण दृष्टव्य हैं ।

2. भावभट्ट

वीकानेर के राजा अनूपसिंह (सन् 1674-1701) के आश्रय में भावभट्ट नामक संगीत-शास्त्र के महान् पंडित रहते थे । बँजू, बख़्शू, गोपाललाल, तानसेन, आदि महान् ध्रुपद गायकों के पदों और गायन विद्या के अध्ययन के उपरान्त उन्होंने अपने 'अनूप-संगीत-रत्नाकर' में ध्रुपद के लक्षण दिए हैं । इसके दो भाग हैं । पहले भाग में ध्रुपद के पदों के साहित्य अंग का उल्लेख है, दूसरे में संगीत-शास्त्रीय अंग का उल्लेख है—

गीर्वाणामध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।

द्विचर्तुवाक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥

शृङ्गाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम् ।

पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयमकं च वा ॥

प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पाद-चतुष्टयम् ।

उद्ग्राह ध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

इस उद्धरण में यहाँ संबंध केवल भाषा से है । भावभट्ट ने ध्रुपद की भाषा संस्कृत अथवा मध्यदेशीय लिखी है । इसमें 'गीर्वाण' का उल्लेख परंपरागत रुढ़ि के कारण किया है । तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् किसी के द्वारा विरचित कोई संस्कृत पद उपलब्ध नहीं हुआ है ।

1. पूरा पाठ पीछे पृष्ठ 42 पर देखें ।

3. मध्यदेश की परिकल्पना

महाकवि केशवदास ने सन् 1600 ईसवी में 'कविप्रिया' लिखी थी, उसमें उन्होंने मध्यदेश का वर्णन किया है—

आछे-आछे असन, बसन, बसु, बास, पसु,
 दान, सनमान, जान, बाहन बखानियै ।
 लोग, भोग, जोग, भाग, बाग, राग रूपजुत,
 भूषननि भूषित सुभाषा मुख जानियै ॥
 सातौ पुरी-तीरथ, सरित सब गंगादिक,
 केसोदास पूरन पुरान, गुन गानियै ।
 गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंहजू से,
 देसनि की मनि महि मध्यदेश मानियै ॥

यह स्मरणीय है कि जिसे केशवदास ने 'रामसिंह जू' लिखा है, वह तत्कालीन ओड़िशा का राजा था। वास्तव में केशव का आशय समस्त बुंदेलखंड से था, जिसकी उत्तरी सीमा गोपाचल गढ़ थी।

इस कवित्त में जिस मध्यदेश को महिमंडल का मणि कहा है और उसकी भाषा को 'सुभाषा' कहा गया है, उसका नाम नहीं दिया है।

4. मानकुतूहल

फकीरुल्ला ने मानकुतूहल का अनुवाद 'रागदर्पण' के नाम से किया था। उसमें वह लिखता है¹—

"सुदेश से हमारा आशय है ग्वालियर, जो आगरा (अकबराबाद) के राज्य का केंद्र है व जिसके उत्तर में मथुरा तक, पूर्व में उन्नाव तक, दक्षिण में ऊँज तक तथा पश्चिम में बाराँ तक। हिंदुस्तान में इतने बीच की भाषा सबसे अच्छी भाषा है। यह खंड भारत में उसी प्रकार है जिस प्रकार ईरान में 'शीराज'।"

फकीरुल्ला ने ग्वालियर की भाषा की तुलना ईरान के शीराज से करके उसे महत्ता दे दी है, जहाँ फ़ारसी के अनेक प्रसिद्ध कवि हुए थे।

फकीरुल्ला ने सबसे बड़ा काम यह किया कि यह स्पष्ट कर दिया कि मध्य-देशीय से आशय ग्वालियरी भाषा से है।

5. ग्वालियरी का व्याकरण

दलपतिराय ने ग्वालियरी का व्याकरण लिखा है।² उसमें ग्वालियरी भाषा के विषय में लिखा है—

1. द्विवेदी, मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ 91।

2. अगस्त्य नाहटा, दलपतिराय-कृत ग्वालरी भाषा व्याकरण, ग्वालियर दर्शन—प्रथम चरण, पृष्ठ 136।

देवनाग कहूँ, कहूँ जावनी होइ ।

भाषा नाना देस की ग्वालियरी मधि जोइ ॥

यहाँ 'देव' का आशय संस्कृत से है, 'नाग' से प्राकृत, 'जावनी' से फ़ारसी तथा अरबी और तुर्की एवं 'नाना देस' की भाषा से आशय देशज शब्दों के प्रयोग से है ।

इस व्याकरण में इन शब्द-समूहों के उदाहरण भी दिए गए हैं—“संस्कृत यथा चंदन, रोचन, कंचन । प्राकृत यथा अक्क, चक्क, सक्क । जावनी यथा गुलाब, चसमा, कबलनुमा । देसी यथा नीके, भलै ।”

6. तानसेन की भाषा

किसी कवि की शब्द-संपदा उसके उत्कृष्ट कवित्व की माप होती है । तानसेन के यदि सभी पद प्राप्त हो जाएँ तब उसकी शब्द-संपदा को पूर्णरूप से प्रस्तुत किया जा सकता है । जब तक वे पद उपलब्ध नहीं होते, तब तक ऊपर बतलाए गए विभागों में उल्लिखित वर्गों के कुछ उदाहरण दे कर संतोष करना पड़ेगा । ग्वालियरी के व्याकरणकार ने 'जावनी' में फ़ारसी के शब्द लिए हैं । तानसेन की कृति में कुछ अरबी तथा तुर्की के शब्द भी मिलते हैं । यहाँ सभी प्राप्त लगभग 400 पदों में से नमूने के लिए छह पदों के शब्द दिए जा रहे हैं ।

संस्कृत—अचल, उदयाचल, उल्लास, उषा, कनक, कमल, कुंज, गायत्री, ताटंक, नयन, नागरी, निचोल, नितम्ब, बालार्क, पवन, परा, पाप, पारगामी, प्रकृति, भानु, मंगल, मरुभूमि, मानस, माया, मेखला, लोलक, विहग, शरणागत, सरिता, हाराबलि आदि ।

नाग अर्थात् प्राकृत—अकवकात, कलमलात, चड्चक, झनकारी, झनन-झनन, डगमगात, थरथरात, धकधकात, भरभरात, रटरटात ।

फ़ारसी—चिश्ती, नवाज, नेजा, पाकजात, पीर, फौजदार, बंदूक, बेनमून, वेशुनो दीनपनाह, वेचुन, वेचगुन, सरताज, सरदार आदि ।

अरबी—अल्ला, इमाम, करम, करीम, गरीब निवाज, बिल्ला, नूर, नबी, नेजा, रब, रहमान, रियाज, हुजूर, हमेल आदि ।

तुर्की—टोपी, तोप आदि ।

देसी अर्थात् देशज तथा तद्भव—उजियारी, काजर, कजरारे, कसौटी, खम्भ, घायल, घुंघरवारे, चुरी, चिकनिया, छतरी, जोति, जोबन, टेढ़ी, दर्पण, धनक, धनिया, पाग, पारखी, फुलवारी, बारी, बेसर, भीजे, रतनारे, सरन, सलौने, सहेली आदि ।

जिस भाषा में तानसेन के पद मिले हैं, उसका ग्वालियरी नाम किसी समय समस्त भारत में फैल गया था । आराकाण का उदाहरण हम पहले दे चुके हैं ।

इसके अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में भी यह नाम मिला है। यहाँ उन सबके उदाहरण देना संभव नहीं है।

7. पुरुषोत्तम भाषा

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने श्रीनाथ जी के मंदिर के गौड़ीय सेवकों द्वारा प्रयुक्त भाषा का नाम 'ब्रजबुलि' के स्थान पर 'पुरुषोत्तम भाषा' प्रचलित किया था, परंतु वह आगे चल न सका।

8. अब्दुल रहीम खानखाना

यह पहले लिखा जा चुका है कि खानखाना ने ब्रजभाषा नाम को जन्म दिया था। यह भी लिखा जा चुका है कि जयकीर्ति ने उस नाम को स्वीकार नहीं किया और ग्वालियरी नाम को ही मान्यता दी।¹

अकबरी दरबार में यह विवाद चलता रहा। मौलाना हाफिज मुहम्मद महमूदखाँ शेरांनी ने उर्दू भाषा के इतिहास में लिखा है²—

“जिस तरह ‘उर्दू’ नाम कदीम नहीं है और खान आरजू के अहद से रवाज में आया है, उस तरह ‘ब्रज’ नाम भी कदीम नहीं, फारसी अहल कलम उर्दू को हिंदी या हिंदवी कहते हैं और ब्रज को ‘ग्वालियरी’। मुगलिया अहद के मुसलमान अबुलफजल, अब्दुल हमीद लाहौरी, मुहम्मद हमीद लाहौरी, मुहम्मद सालह, बल्कि खान आरजू तक ब्रज को इसी नाम से पुकारते हैं।”

9. षट्भाषा

नयचन्द्र सूरि ने हम्मीर महाकाव्य में वीरसिंहदेव तोमर (1375-1400 ई०) के सभा-पण्डित सारंग को षट्भाषा में कविता करने-वालों में श्रेष्ठ कहा है³—

षड्भाषाकविचक्रशक्रमखिलप्रामाणिकाग्रेसरं

सारङ्गं सहसा विरङ्गमतनोद् यो वादविद्याविधौ ॥

शेख कुतबन में अपने प्रेमाख्यान मृगावती की भाषा के संदर्भ में लिखा है—

षट् भाषा अहहि यह, जो कछु सुध से बूझ।

कहेउ जहाँ लहु परेउ, जो कछु हिरदै सूझ ॥

सास्तर आखर बहुते आये।

अरु देसी कछु चुनि-चुनि लाये ॥

पढ़त सुहाव न दीजै कानू।

इह के सुनत न भावै आनू ॥

कुतबन ने केवल ‘सास्तर आखर’ अर्थात् ‘संस्कृत’ तथा ‘देसी’ अथवा देशज,

1. पीछे पृष्ठ 78 देखें।

2. ओरिएण्टल कलेज भेगजीन, नवम्बर 1934, पृष्ठ 8।

3. नयचन्द्र सूरि, हम्मीरमहाकाव्य, चौहदवाँ सर्ग, श्लोक 23।

केवल दो ही नाम दिए हैं। संभव है इनमें प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, छत्तीसगढ़ी भी सम्मिलित माने गए हों।

10. भिखारीदास की भाषा का स्वरूप

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में भिखारीदास ने ब्रजभाषा का अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है¹—

ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ ,

मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगट जु होइ ।

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाषानि,

सहज पारसी हू मिलै षटविधि कहत बखानि ॥

भिखारीदास का यह नुस्खा विस्तार से विचार-योग्य है। इस 'ब्रजभाषा' में (1) संस्कृत, (2) फारसी, (3) ब्रज, (4) मागधी, (5) अमर, (6) नाग, (7) यवन तथा (8) फारसी भाषाओं का मिश्रण मिलता है। परंतु वे हैं षट भाषाएँ ही। आठ भाषाएँ छह कैसे रह गईं, इसका कुछ समाधान यह मान कर हो सकता है कि 'फारसी' दो बार गिनाई गई और 'अमर' तथा संस्कृत एक ही भाषा के बोधक हैं। परंतु 'ब्रजभाषा' में मिली हुई यह 'ब्रज' और 'मागधी' क्या है? भिखारीदास द्वारा परिभाषित 'काव्य-भाषा' बोलियों के ऊपर, उनके सम्मिश्रण से बनी कोई व्यापक 'काव्य-भाषा' है।

11. केशव की भाषा

केशव ने अपनी भाषा को नरभाषा कहा है²—

देव देवभाषा करें, नाग नागभाषानि ।

नर हों नरभाषा करी, गीता ज्ञान प्रमानि ॥

इस प्रकार ओड़छा के महाकवि ने अपनी भाषा का नाम 'नरभाषा' बतलाया है।

12. बुंदेली

बुंदेली बोली नाम बहुत पुराना नहीं है। ग्रियर्सन के अनुसार हिंदी दो प्रमुख भागों में विभाजित है, 'पश्चिमी हिंदी' और 'पूर्वी हिंदी'। पश्चिमी हिंदी के पाँच उप-विभाग हैं—'खड़ी बोली', 'बांगरू', 'ब्रज', 'कन्नौजी' तथा 'बुंदेली'।

पूर्वी हिंदी के तीन उप-विभाग हैं—'अवधी', 'बघेली' तथा 'छत्तीसगढ़ी'। यह विभाजन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बोली जाने-वाली 'स्थानीय बोलियों' के आधार पर किया गया था। इस विभाजन का उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि अँगरेजी भाषा जितने लोग बोलते हैं उनसे हिंदी बोलने-वालों की संख्या अधिक

1. द्विवेदी, विष्णुदास-कृत महाभारत (पाण्डव चरित), प्रस्तावना, पृष्ठ 118।

2. केशवदास, विज्ञान गीता, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित, पृष्ठ 644।

न हो पाए, क्योंकि वास्तव में अँगरेजी बोलने-वालों की संख्या से हिंदी बोलने-वालों की संख्या कई गुनी थी और है। परंतु ये नाम भारत में चल ही गए।

तानसेन की रचनाओं में ऐसे अनेक शब्द मिले हैं जो बुंदेली बोली में प्रचलित हैं। अनेक मुहावरे भी प्राप्त होते हैं—‘लाग लगना’, ‘छैल चिकनियाँ’, ‘छैल छबीले’, ‘नाहीं जू सुहावत’ ऐसे ही प्रयोग हैं। शब्दों की पूरी सूची देना यहाँ संभव नहीं है, केवल एक पद ही प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें शब्दों के अतिरिक्त वस्त्र तथा आभूषण भी बुंदेली में वर्णित हैं—

(राग विलावल, चर्चरी)

अहो टेढ़ी पागरि नागरि नारि सीस धरें जैसैं

टेढ़ी पाग कौं राखें रहत चिकनियाँ ।

ढुरि-ढुरि मुरि-मुरि बतियाँ करत अगिली-पिछलीन सौं

दोऊ कर तारी मारत, एकनि सौं नैनन सैनन नवनियाँ ॥

लाही कौ लहँगा पचरंग चूनरि, कंठ छरा और ताबीज मनियाँ ।

‘तानसेन’ प्रभु रीझि चकित भए, तूँ ही सबनि में धनि धनियाँ ॥

13. ग्वालियरी और ब्रज का विभेद

सन् 1725 में कृष्ण कवि ने बिहारी सतसई की टीका लिखी थी। वह कभी ओढ़छा में रहता था और कभी-कभी भांडेर में निवास करता था। उसने लिखा है—

देस भेद तैं होत है भाषा विविध प्रकार ।

बरनत है तिन सबन में ग्वारियरी रस सार ॥

ब्रजभाषा भाखत सकल सुरवानी समतूल ।

ताहि बखानत सकल कवि जानि महारस मूल ॥

ब्रजभाषा बरनी कबिनु बहुविधि बुद्धि बिसाल ।

जब भूषन सतसयरा करी बिहारीलाल ॥

कृष्ण कवि का कथन है कि ‘देस भेद’ के अनुसार ‘भाषा’ के अनेक रूप प्राप्त होते हैं जो मात्र बोलियाँ हैं, काव्य-भाषा नहीं; इन अनेक भाषा-रूपों में ‘रस’ अर्थात् काव्य-रस की स्थापना जिस भाषा-रूप में हुई उसे ‘ग्वारियरी’ कहा गया है। उस काव्य-भाषा ‘ग्वालियरी’ में ग्वालियर के ही बिहारीलाल ने महारस अर्थात् शृंगार और मादनता का प्रवेश कर उसे ‘ब्रजभाषा’ बना दिया।

तानसेन की भाषा को चाहे जो नाम दे लीजिए, उसे ग्वालियरी कह लीजिए, बुंदेली कह लीजिए, वांगरू या छत्तीसगढ़ी कह लीजिए, अथवा ब्रजभाषा कह लीजिए; नाम का कोई महत्व नहीं है। परंतु जब भाषा के विकास का विवेचन किया जाए तब इतिहास की हत्या नहीं करना चाहिए। इसी कारण इतना विवेचन करना आवश्यक हुआ है।

—बाईस— छंद-विधान

तानसेन के समस्त पद विषम हैं।¹ “चारों चरणों में मात्रा, वर्ण आदि का कोई साम्य नहीं है।.....विषम छंद को गाते समय उसके अर्थानुसारी पाद बनाए जाते हैं और ‘वर्ण’ अर्थात् स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी—स्वरों की इन चार क्रिया के द्वारा अक्षरों का कर्षण करके उन पादों को समान बना लिया जाता है। यह समानता ताल पर आधारित रहती है, अर्थात् ताल के आवर्तनों में तो समान काल-मान रहता ही है। उन आवर्तनों में अर्थ के अनुसार पादों को बैठाया जाता है और आवश्यकता-अनुसार ‘वर्ण’ द्वारा कर्षण किया जाता है। मान लें 12 मात्रा का ताल है और उसमें चार पाद 7, 9, 8, 6 मात्राओं-वाले पदों के हैं। इन चारों पादों को कर्षण द्वारा 12 मात्रा का बना लेना होगा। साम्यापादन का आधार है ताल और साधन है वर्ण।” तानसेन के कुछ पद इतने लंबे हैं कि उन्हें कर्षित करना कठिन है।

ध्रुपद का निकटम रूप प्रबंध है। प्रबंध में चार धातुएँ होती हैं—उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, और आभोग।²

तानसेन का एक सबैया भी मिलता है, जिसमें धीराधीरा नायिका का वर्णन किया गया है—

(राग बिहाग, चौताला)

आज कहा तजि बैठी हौ भूषन, ऐसैई अंग कछू अरसीले ।

बोलत बोल रुखाई लिएं, तुम काहे कुढंग किये ये हँसीले ॥

क्यों न कहौ दुख प्रान-प्रिया, अँसुआन रहे भर नैन लजीले ।

‘तानसेन’ सुख होवै तिनकैं, जिनके मन भावन छैल छबीले ॥

संचारी में भगण में त्रुटि आ गई है, तथापि तानसेन के लिए यह असाधारण बात नहीं है क्योंकि उनके पद ‘विषम’ होते हैं।

यह आश्चर्य की बात है कि मतिराम ने इसी सबैया का अनुकरण किया है। वह सबैया नीचे लिखे अनुसार है:—

आज कहा तजि बैठी हौ भूषन, ऐसैंहि अंग कछू अरसीले ।

बोलत बोल रुखाई लिएं, ‘मतिराम’ सुने तैं सनेह सुसीले ॥

1. प्रेमलता शर्मा, सहसरस, भूमिका, पृष्ठ 133-134 ।

2. सुभद्रा चौधरी, भारतीय संगीत में ताल और रूप-विधान, पृष्ठ 206 ।

क्यों न कहौ दुख प्रान-प्रिया, अँसुआँन रहे भरि नैन लजीले ।

कौन तिन्है दुख है जिनके तुससे मन-भावन छैल-छबीले ॥

मतिराम ने तानसेन के शब्द 'सुख' को 'दुख' कर दिया, और 'हँसीले' को 'सुसीले' बना दिया, बस यही परिवर्तन किए हैं ।

मतिराम ने यह चोरी यह समझ कर की होगी कि गायक तानसेन के छंद को कवि अथवा कवित्व के रक्षक जानते ही न होंगे । उसका दुर्भाग्य यह रहा कि अब कवि के रूप में तानसेन को पूर्णतः मान्यता मिल चुकी है । कवि के रूप में तानसेन पर अनेक विद्वानों ने विचार किया है ।

—तेईस— अलंकार-विधान

पदों की स्थायी निधि है संगीतात्मकता, अनुभूति की एकात्मता, लयात्मकता की प्रतीति, अभिव्यंजना, कल्पना का सौंदर्य; और ये तानसेन की विशेषताएँ हैं। भाव, वस्तु, रूप, गुण तथा क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने-वाली युक्ति को 'अलंकार' कहते हैं।

तानसेन का अनुप्रासहीन अभी तक केवल एक पद प्राप्त हो सका है। भाव-भट्ट की अलंकारों की सूची अधूरी है। तानसेन के पदों में बहुधा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं सांगरूपक प्राप्त होते हैं। बहुत परिश्रम कर अन्य अलंकार भी खोजे जा सकते हैं। अलंकार-शास्त्रियों ने अलंकारों के अनेक भेद-उपभेद प्रस्तुत किए हैं। यहाँ इतना विस्तृत विवेचन संभव नहीं है।

1. उपमा

तानसेन की उपमाएँ और उनके उपमान परंपरागत साधारण ही मिलते हैं। ऐसा एक पद दृष्टव्य है—

(रागिनी मुलतानी घनाश्री, चौताला)

इंदु से बदन, नैन खंजन से, कंठ कोकिल बचन सुहाई ।
नासा कीर, अधर विद्रुम, दाडिम दसन दमकाई ॥
श्रीफल उरोज, ग्रीव कपोत, बेनी नाग सी भुकी सुखदाई ।
कटि केहरि, कदली जंघ, पद सरोज, पद्मा सी,
‘तानसेन’ ऐसी पै बलि-बलि जाई ॥

इनमें जो उपमान दिए गए हैं, वे कहीं भी किसी भी कवि के छंद में पाए जाते हैं।

एक अन्य पद में स्वयं तानसेन ने कहा है कि उपमा कौन-कौन से उपमान से दी जाती है—

(राग बिहाग, चौताला)

रुम-भुम भरि आये री नयना तिहारे ।
बिथुरी सी अलकै स्याम घन सी लागत,
भूपकि-भूपकि जात, उधरत मेरे जानि तारे ॥
अरुन बरन नंना तेरे, तामें लाल डोरे,
ता पर अंबुज बारि-बारि डारे ।

कहैं मियाँ 'तानसेन' सुनो साह अकबर

उपमा कहाँ लौं दीजें, बिन अंजन कजरारे ॥

इस पद के स्थायी में झपकते नेत्रों में तारों का दिखाई देना सुंदर उत्प्रेक्षा है। यहाँ तानसेन ने वस्तु-व्यंजना का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है, अनुभाव के रूप में एक रमणीय बिंब भी इस पद में है।

2. उत्प्रेक्षा

तानसेन ने उत्प्रेक्षा अलंकार का भी सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

(राग गौड़ सारंग, चीताला)

त्रिवेनी उलटि बही मानों तिरछी चितवन त्रिया पिया तन देखी।
त्रिवेनी गंगा सलिला कौं संग लीयें सागर सौं कछु अनवन देखी ॥
कैधौं कहू पतितन घेरी, कैधौं कहू पाप मोछ,
कैधौं बौहराडवे के ठनगन पेखी।

'तानसेन' की प्रभु मोहिनी सी पढ़ि डारत कैधौं कहू जागे संकर मुनि देखी ॥

इस पद में स्थायी में ही 'त्रिवेणी उलटी बहा देना' उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा है। नायिका को गंगा मान कर नायक को सागर कहा गया है। यदि पतित-जन उसे घेर लेते हैं, तब उसे कुछ देर रुकना पड़ता है और कोई पापी पवित्र करने से रह गया तो गंगा पीछे को लौटती है—इसी को 'त्रिवेनी उलटि बही' कहा है।

स्थायी के दूसरे भाग में उपमा भी सुंदर है। जब गंगा उलट कर देखती है तब ऐसा ज्ञात होता है मानों वह तिरछी चितवन से पिया को देख रही है। आभोग और संचारी में संदेहालंकार है—क्या कुछ पतितों ने उसे घेर लिया, क्या किसी को पाप से मोक्ष दिलाने के लिए लौट रही है, या उलटे लौटने में ठनगन दिखा रही है, अथवा क्या शंकर पर मोहिनी डाल कर उन्हें योग-ध्यान से जगा देती है ?

3. पुनरुक्ति अलंकार

महाकवि केशव ने लिखा है—

राम-राम जपौं, न डरौं न पुनरुक्ति सौं।

तथापि, पुनरुक्ति के रूप में कुछ शब्दों को बार-बार दोहराया जाए तब उससे विशेष सौंदर्य का बोध होता है। इस प्रकार का तानसेन का एक पद दृष्टव्य है—

(रागिनी टोड़ी, चीताला)

तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही महादेव, तू ही गुरु, तू ही चेला।

तू ही सोना तू ही सुनार, तू ही कसौटी कसनहार,

तू ही दीपक तू ही मंदिर, तू ही भेला तू ही अकेला ॥

तू ही रैन तू ही दिन, तू ही पर्वत तू ही पाषाण,

तू ही जल तू ही थल, तो ही सौं मेला ।

‘तानसेन’ के प्रभु तू ही सबन में, तू ही छैला, तू ही अलबेला ॥

इसी प्रकार का एक पद और है—

(राग भैरव, धीमा तिताला)

प्यारे ! तु ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तु ही रुद्र, तू ही गुरु तु ही चेला ।

तु ही जल तु ही थल, तु ही प्रबल तु ही अबल, तु ही छैल तु ही अलबेला ॥

तु ही ऊँच तु ही नीच, तु ही पाप-पुन्य, तु ही बीच, तु ही मेला ।

‘तानसेन’ कहै प्रभु कहाँ लौं बखानूँ, तु ही बहुत तु ही अकेला ॥

4. अपह्नुति

तानसेन के एक सांगरूपक पद में अपह्नुति अलंकार भी प्राप्त होता है—

(राग गौड़ मलार, चौताला)

घन न हौँइ री माई जे आई मो पर मनमथ की फौजें धावन ।

दामिनी खर्ग लिये बूँद बान बरसत गरजन वीर रस दमामौ बजावन ॥

जासूस चात्रग लायौ हौ टेर मोहि

माहि अकेली सप्त सुरन दादुर नफीरी सुनावन ।

सैंहैनाइनि मोर भार करन हैं

नाचि नाचि जे सब ‘तानसेन’ के प्रभु के आगें आवत करन ॥

इसमें वर्षा से आकुल विरहणी का भाव-चित्र अपह्नुति अलंकार द्वारा मेघों और कामदेव की सेना में सांम्य दिखा कर प्रस्तुत किया है । इस पद की उपमाएँ बहुत सुंदर हैं । दामिनी खड्ग लिए है, वर्षा की बूँदें मानों दमामा बजा रही हैं, चातक मानों जासूस है जो नायिका को अकेले में बुला लाया है, मेढक सप्तसुर में मानों नफीरी बजा रहे हैं, मोर कूक कर मानों शहनाई का शोर कर रहे हैं और नाच-नाच कर नायिका को उसके प्रिय के आगे लाते हैं ।

5. रूपक

रूपकों के अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण ‘प्रकृति वर्णन’ परिच्छेद में तथा अन्यत्र भी आगे दिए गए हैं ।

6. सांगरूपक

तानसेन ने कृष्ण-जलद के संबंध में एक सुंदर सांगरूपक लिखा है—

(राग भैरव, चपक)

कान्हा ओलरि आयौ हो बरसि-बरसि रिमि-भिमि रस-बूँदन ।

मुरली की गरजन तपनि तडत मुसिक्यानि दसन ओप

बग पाँति ग्रीव डुलनि पौहप गूँथन ॥

चहुँ ओर घुरवा से घरें तामें मोर चन्द्रिका इंद्र भयौ रस गूँथन ।
'तानसेन' प्रभु की अधिक भूकोरनि

भीजि गईं ब्रज बनिता सहित भूषण-फूँदन ॥

इस पद में कृष्ण-जलद आगे बढ़ कर रिम-झिम रस की बूँदें बरसाने लगा । मुरली की तान उसकी गर्जन तथा बिजली की तड़क उसके मुसकाने पर दाँतों का ओप है, पुष्पों की माला बक-पंक्तियों की डुलती हुई ग्रीवाएँ हैं । चारों ओर घन-घोर वर्षा के पृष्ठ परपट कृष्ण के मोर-मुकुट की चन्द्रिका के समान मानों इंद्र का धनुष है । रस के बहुत अधिक झकोरों से ब्रज-बनिताएँ आभूषणों और फूँदनों सहित भीग गई हैं ।

तानसेन ने नाद के विषय में भी अनेक सांगरूपक विरचित किए हैं । यद्यपि वे सभी अत्यंत सुंदर हैं, तथापि यहाँ केवल एक नाद-मंदिर-विषयक सांगरूपक देना पर्याप्त है जिसमें उन्होंने ध्रुपद के गायन करने का भी उल्लेख किया है—
(रागिनी गुजरी, चौताला)

अद्भुत अनूप रचि-पचि कर विचार, नाद-मंदिर बनायौ ।

अनेक भाँति बहु प्रकार त्रैदेव मिलि ता मधि,

उनचास कूट तान अच्छर अस्थान पायौ ॥

सप्त सुर सीढ़ी तीन ग्राम खंड कीने, मूर्च्छना झरोखे राखे,

दुरन-मुरन ताकबंदी, सुरति सायबान आगैं,

ज्ञान खंभ अचल अस्थल करि जमायौ ।

औढ़व-षाड़व पूर्न पुस्तिवान, रंगत अस्तरकारी,

तान गरदश हाता सुर ताल सुभ दरवाजे लगायौ ॥

उकत-जुगत कुफल कुंजी, सब्द की जंजीर लागी,

लाग-डाट चौकीदार, कंठ राग राजा राज करायौ ।

रागिनी पटरानी, उपराग खबास आसपास,

मुरछल-पंखा हिलावते राग रूप रंग कौ समाज,

'तानसेन' सुघर ध्रुपद सुद्ध मुख गायौ ॥

इसी प्रकार तानसेन ने 'नाद-नगर', 'नाद-समुद्र', 'नाद-जहाज', 'नाद-युद्ध', आदि पर सांगरूपक लिखे हैं । उन सबको उद्धृत करने से प्रसंग बहुत अधिक बढ़ जाएगा ।

वर्षा-वर्णन

तानसेन का एक अन्य सांगरूपक पद प्राप्त हुआ है । गोपियाँ चपल गति से नाच रही हैं, बादल मृदंग से संगत कर रहे हैं, कोकिला आलाप भर रही है, पपीहा तान भर रहा है, मोर स्वर साध रहे हैं, दादुर ताल दे रहे हैं, वे रत्न-श्रुन

ध्वनि बजा रहे हैं, कृष्ण बहुनायक अनेक गोपियों से रमण करने-वाले हैं, कुंज-महल में कृष्ण और गोपी, दोनों शोभित हैं—

(राग मलार, चौताला)

नाचत चपल चंचल गति, घन मृदंग रस-भेद सौं बाजत ।
कोकिला अलापत, पपैयां उरप लेत, मोर सुघर सुर साजत ॥
दादुर तार धार धुनि सुनियत, रन-भुन धुनि पर बाजत ।
'तानसेन' के प्रभु बहुनायक, कुंज-महल दोऊ राजत ॥

7. रूप-वर्णन

तानसेन का एक पद ऐसा प्राप्त हुआ है, जिसके अनुरूप नायिकाओं की अनेक सुंदर मूर्तियाँ मिलती हैं—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

एक कर दरपन, एक कर कजरा, अँचरा गहँ सुधारत ।
ललना रेख काजर सो दूरि करन उठत भोर,
मुख कमल परत सीसफूल अति विराजत ॥
गगन नखत की उपमा जिय भई मेरे,
मेरे जान बेहू दुरि रहे सकुचात लाजत ।
ये कहियत है मानों सुरतरु विकसत ही,
'तानसेन' देखत दुःख भाजत ॥

गगन के नक्षत्रों के विषय में यह कहना कि वे भी लजा कर सकुचाते हुए छिप जाते हैं, तानसेन के स्वयं के अनुसार बहुत सुंदर उपमा है ।

श्रावण तीज

बुंदेलखंड में श्रावण मास की तीज को स्त्रियाँ झूले झूलती हैं । इस अवसर पर विवाहित युवतियाँ भी अपने मातृ-गृह आ कर उत्सव मनाती हैं । तानसेन ने इस विषय में एक सुंदर पद लिखा है जिसमें झूलते समय डर कर मोहन का आलिंगन करना सुंदर उक्ति है—

(राग मलार, चौताला)

रमकि झूलत हैं री, लाल-बाल रहसि-रहसि संग ।
डरपति प्यारी त्यों-त्यों कर गहत मोहन आली,
मोहि अति रस बाढ्यो, तातैं भेंटत भुज भरि अंग ॥
सावन तीज सुहावनी लागति, झुलवति सहचरि करत रंग ।
'तानसेन' पिय-प्यारी की छबि पर, वारों कोटि अनंग ॥

— चौबीस —

नायक-नायिका भेद

1. नायक-भेद

फकीरुल्ला ने 'मानकुतूहल' के अनुवाद 'राग-दर्पण' के पाँचवें प्रकरण में नायक और नायिकाओं का वर्णन किया है। फकीरुल्ला लिखता है कि कुछ नायक ऐसे होते हैं जो एक स्त्री रखते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो बहुत-सी स्त्रियाँ रखते हैं और सब को अपने वश में रखते हैं। वे उत्तम श्रेणी के नायक होते हैं। काव्य-शास्त्र में इन्हें 'साधारण' कहा गया है। बहुत-से गीतों में नायक का यह रूप दिखाया गया है कि स्त्री गर्व से उसको फटकारती है और नायक उसकी चापलूसी करता है। एक नायक ऐसा होता है जो बहका कर, फुसला कर, स्त्री के मन पर विजय प्राप्त करता है।

काव्य-शास्त्र में साधारण नायक के चार भेद माने गए हैं—साधारण, दक्षिण, शठ और धृष्ट। फकीरुल्ला ने ये भेद नहीं गिनाए हैं।

साधारण नायक

काव्य-शास्त्र के अनुसार साधारण नायक उसे कहते हैं जो अभिमानी, त्यागी, तरुण तथा कोक-कला में प्रवीण हो। वह सुंदर रूप का धनी होना चाहिए तथा सुरचि-पूर्ण और कुलीन होना चाहिए।

दक्षिण नायक

दक्षिण नायक उसे कहते हैं जो पहली नायिका का हित करे और बुरे कर्म से डरे तथा ऐसे कर्म करे जिससे बड़ाई हो और जो चित्त के चलायमान होने पर भी विचलित न हो।

शठ नायक

जो नायक मुँह से तो मीठी बातें कहे तथापि हृदय से बड़ा कपटी हो और जिसे अपराध करने का डर न हो, उसे शठ नायक कहते हैं।

धृष्ट नायक

धृष्ट नायक उसे कहते हैं जो मन, वचन और कर्म से, तथा चित्तवन से, चतुर और रति के लिए आतुर हो तथा आठ-गाँठ कुम्भेत हो।

2. नायिका-भेद

फकीरुल्ला ने स्त्रियों के चार प्रकारों का वर्णन नहीं दिया है। ये चार भेद हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी।

पद्मिनी

जिस नायिका के शरीर में सहज ही सुगंधि हो; जिसका स्वरूप शुभ हो; जिसे अपने पुरुष से सुखदायी पुण्य-प्रेम हो तथा जिसका भोजन, रोष, रति, निद्रा, साधारण हो; जो लज्जाशील और उदार हो; जिसका हँसना मीठा हो; जो गृह को तथा अपने शरीर को पवित्र रखती हो; जिसके पवित्र शरीर पर लोम अनंग के निवास के समान हो।

चित्रिणी

जिस नायिका की कविता, गीत और नृत्य में रुचि होती है; जिसका चित्त अचल हो तथापि दृष्टि चंचल हो; जिसके शरीर पर लोम विरल हों और मदन-गृह में सुगंध से पूरित हो और जिसे अपने प्रिय का चित्र प्यारा लगे।

शंखिनी

जो नायिका क्रोध करने-वाली हो, कपट करने में चतुर हो, लज्जा-युक्त हो तथापि शरीर पर बाल अधिक हों; जिसे भोजन, वस्त्र तथा नखदान में रुचि हो; जो लज्जाहीन, निशंक तथा अधीर हो; जिसके मार-जल में क्षार जैसी दुर्गंध आती हो और सुरति में अति करती हो।

हस्तिनी

जिस नायिका की अँगुलियाँ, चरण, मुख, अधर और भूकुटि मोटी हो; जो कड़वा बोलती हो; जो मदन-सदन में गहरी गुफा के समान हो; जो मंद चाल से चलती हो तथापि जिसका चित्त चपल हो; जिसके पसीने में मस्त हाथी की-सी गंध आती हो और बाल झूरे हों।

3. नायिकाओं के उप-भेद

नायिकाओं के तीन उप-भेद हैं—स्वकीया, परकीया तथा स्वकीया-परकीया। यहाँ से फकीरुल्ला ने भी नायिकाओं के उप-भेद का वर्णन किया है, और लिखा है—“स्वकीया वह है जो अपने पति को पूजे, उससे स्नेह रखे और लज्जा-वश दाहिनी या बाईं ओर न देखे, रोते समय उसकी आवाज सुनाई न दे, हँसी उसके होठ से आगे न बढ़े, हँसने में दंत-पंक्ति दृष्टि-गोचर न हो। यह ऊँचे स्वर में न गाए और जब क्रोधित हो तो बातचीत में उसका क्रोध प्रकट न हो।”

परकीया

फकीरुल्ला ने परकीया नायिका उसे कहा है जो छिप कर दूसरे से प्रेम करती है। फकीरुल्ला ने काव्य-शास्त्र के अनुरूप मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा, तीन भेद माने हैं।

अज्ञात-यौवना

अज्ञात-यौवना उसे कहते हैं जिसमें किशोरावस्था और तरुणाई का सम्मिश्रण होता है, परंतु उसे अपने बढ़ते हुए यौवन का ज्ञान नहीं होता।

प्रौढ़ा

प्रौढ़ा नायिका को, फकीरुल्ला के अनुसार, दुनियादारी का ज्ञान होता है परंतु वह अपने पति से दूर रहती है; यह स्थिति 8 वर्ष से 12 वर्ष तक रहती है।

संगीत-शास्त्र में प्रगल्भा तथा अति प्रगल्भा और जोड़ दी गई हैं।¹

फिर मुग्धा के चार वर्ग किए गए हैं—नवल-वधू, नवयौवना, नव-अनंगा और नव-वधू।

मध्या के तीन भेद हैं—धीरा, अधीरा, और धीराधीरा।

परकीया नायिका के दो वर्ग माने गए हैं—ऊढ़ा तथा अनूढ़ा।

नायिकाओं के आठ वर्ग और गिनाए गए हैं—स्वाधीन-पतिका, उत्कडी, वासकसज्जा, अभिसंधिता, प्रोषित-पतिका, लब्ध-विप्रा तथा खंडिता।

कुछ नायिकाओं को 'अभिसारिका' कहा गया है। स्वकीया नायिकाओं के तीन वर्ग बताए गए हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। फिर सखी, दूती, मालिन, आदि के लक्षण मिलते हैं।

परंतु ये सब काव्य-शास्त्र की बातें हैं। गायक-कवि तानसेन के पदों में इन सबकी खोज व्यर्थ है। इनके किसी के भी लक्षण इनमें नहीं मिल सकते। केवल कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं, वे भी अनेक प्रसंगों में बिखरे हुए हैं।

मानकुतूहल में वामेयकार को नायिका-भेद से परिचित होना आवश्यक माना गया है। उस ग्रंथ में नायक और नायिकाओं के भेद-विभेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। तानसेन ने नायिका-भेद पर भी पर्याप्त संख्या में पद लिखे हैं। परवर्ती गायकों को ये पद बहुत प्रिय सिद्ध हुए, इस कारण मिले भी अधिक हैं।

तानसेन के पदों में स्वकीया, परकीया तथा सामान्या आदि के उप-भेद भी मिले हैं। इस विषय के सब पदों को उद्धृत करना संभव नहीं है। केवल कुछ उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

4. दक्षिण नायक

दक्षिण नायक सब प्रेमिकाओं को संतुष्ट करने में समर्थ होता है। तानसेन ने कृष्ण को बहुनायक के रूप में चित्रित करते हुए दक्षिण नायक संबंधी अनेक पद लिखे हैं। उन सबका देना संभव नहीं है, अतएव एक पद देना ही पर्याप्त है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

ए आज कौन बन चराई एती गैयाँ, कहाँ धौं लगाई एती बेर।

बैठे अब कहा, सुधि लेहौ नैन औसेर ॥

1. मध्ययुगीन नाम—'पातर'। प्राचीन-काल में उन्हें 'गणिका' या 'नगर-वधू' कहा जाता था, तथापि इन सबका समाज में श्रेष्ठ स्थान रहा है; वर्तमान-काल की बात यहाँ नहीं कहना ही उचित है।

एक वन ढूँढ़ी सकल वन ढूँढ़ी, तोऊ न पाई गायन की नेर ।

‘तानसेन’ के प्रभु तुम बहुनायक, दैहौं कदम चढ़ि टेर ॥

इस पद से मानसिंह तोमर द्वारा विरचित एक दोहा स्मरण हो आता है ।
उसमें ‘कदम’ के स्थान पर ‘खजूर’ है—

नन्है-नन्है पात जो आँवली सरहर पेड़ खजूर ।

तिन चढ़ देखौ बालमा नियरे बसैं कि दूर ॥

5. खंडिता

खंडिता नायिका के विषय में एक बहुत सुंदर पद प्राप्त हुआ है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

सौंहैं खात तोतरात, बात करत अरसात,

आए भएँ प्रात, डगमगात गात ।

ऐंड़ात, जंभात, धकधकात, मुरभात, थरथरात, भरभरात ।

जावो जी जावो, जहाँ नवल तिया संग जागे रात,

बाही तैं मुसकात, मेरौ मन मनात, बात कहत हँसात ॥

मोहि ना सुहात, तहाँ ही सिधारियै, जाकौ मन ललचात ।

‘तानसेन’ के प्रभु मीठे वचनन बतरात,

झूठी-झूठी सौंहैं खात, मेरी सौं तेरी सौं, अब नहीं जात ॥

रात्रि को जागने के सभी लक्षण देने के बाद ‘झूठी-झूठी सौंहैं खात’, ‘मेरी सौं, तेरी सौं’ जैसे वाक्यांश बूंदेली बोली में बहुत प्रचलित हैं । ‘तोतरात’ शब्द कहीं भी मिल सकता है ।

खंडिता के विषय में तानसेन का एक पद और प्राप्त हुआ है—

(राग भैरव, चौताला)

घन-घन मोरे भाग, भोर भएँ आये लालन, सब निसि कहाँ जागे प्यारे ।

आलसबंत जँभात जात, मलिन गात, साँची कहाँ बात नंददुलारे ॥

लटपटी पाग खुलि रही पेचन सौं, अधरन पीरु-लीक धारे ।

‘तानसेन’ के प्रभु तुम बहुनायक, साँचे बोल साँझ के तिहारे ॥

इस पद में नंददुलारे के सारी रात जागने के सब लक्षण सुंदर हैं । तानसेन ने अनेक बहुनायकों की सृष्टि की है ।

6. वियोगिनी

एक पद में तानसेन ने वियोगिनी का वर्णन विलक्षण रूप में किया है ।
कामातुर सिंह और सिंहनी पुकारते हैं, इन दहाड़ों से वे एक-दूसरे की मिलना-

कांक्षा को समझ लेते हैं। वियोग के वर्णन के बहाने वन्य पशुओं के व्यवहार का ज्ञान तानसेन ने प्रदर्शित किया है और 'ध्रुपद' शब्द का भी उपयोग किया है।¹

(राग बिहाग, चौताला)

साईं, तू न आवै आज, आधी रात माझ-माझ सिंहनी जगावै
सिंह कानन पुकार ।

चंदन घसत-घसत गए नखन मेरे, वासना न पूरत मांग कौ निखार ॥
घिक जनम मेरे, जग में जीवन मेरे, विमुख लगावै नाथ पकरिबेनु बार-बार ।
हौं जन दीन अति नयन-हू बारि बहै, 'तानसेन' अंतरवानी ध्रुपद पुकार ॥

7. पावस वियोगिनी

पावस वियोगिनी का वर्णन करते हुए तानसेन ने गाया है—

(राग बिहाग, चौताला)

बादर आए री लाल, पिया जिन लागे डरपावन ।
एक तौ अँधेरी कारी, बीजुरी चमकत, उमड़ि-धुमड़ि बरसावन ॥
जब तैं पिया परदेस गवन कीन्हौं, तब तैं बिरहा भयौ मो तन तावन ।
सावन आयौ, अति भर लायौ, 'तानसेन' न आये मन-भावन ॥

मन-भावन नायक के परदेश से न आने से नायिका की दुर्दशा का बड़ा दयनीय चित्र प्रस्तुत किया है। कविवर तानसेन ने पावस वियोगिनी के विषय में एक अन्य बहुत सुंदर पद लिखा है—

(राग बिहाग, चौताला)

इन अँखियन विरह की बेलि बई ।
सींचि-सींचि जल अँसुअन पानी री, दिन-दिन होत नई ॥
उलहत पातन नये-नये, सो बूंद पताल गई ।
'तानसेन' प्रभु दरस तुम्हारे बिन, सब तन छीन भई ॥

आँखों के आँसुओं से विरह की बेलि को बोना और फिर उसका पाताल भेज देना—अत्यंत सुंदर उक्ति है।

पावस वियोगिनी का एक अन्य अंकन भी बहुत सुंदर हुआ है—

(राग मेघ, धमार)

रिमझिम बरसै आज बदरवा, पिया विदेस,
मोरी थरथरात छतियाँ, निस-दिन मन भावै ।
नैन हू न नींद आवै, दामिनी दमकति लागै,
उन बिन कल न परत, नाथ-नाथ करि धावै ॥

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, कविवर तानसेन, सम्मेलन-पत्रिका संवत् 2003 ।

रह्यौ न जाय घड़ी-पल-छिन, तन दहै मोर,
 आय मदन मो खोजत अवसर पावै ।
 निकसत नहीं प्रान, ह्वै रह्यौ चित पाषान,
 ता पर कर बखान 'तानसेन' गावै ॥
 श्रावण में वियोगिनी की क्या दशा होती है, उसका वर्णन किया गया है—
 (राग गौड़, धीमा ताल)

मेरी आली री, सावन की रैन ।
 रैन अँधेरी कारी, बिजुरी चमकै, विरहा सतावत मन ॥
 दादुर-मोर-पपैया बोलै, कोयल बोलै मधुरे बेन ।
 'तानसेन' प्रभु बेगि दरस दीजै, तुम बिन नाहिन चैन ॥

8. आगम-पतिका

तानसेन द्वारा प्रस्तुत आगम-पतिका नायिका का चित्र सुंदर बन पड़ा है—
 (रागिनी धनाश्री, चीताला)

पिय के आवन कौ सो अब मैं आगम पायौ री माई, री माई ।
 कुच-भुज फरकाने और आँख बाँई, कगवा सगुनवा सुनाई ॥
 नीके सगुन सबही होत हैं, मन-इच्छा पूजूं मैं,
 'तानसेन' मिले मोहि सुखदाई ॥

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक हिंदुओं में ये अंध विश्वास चलते रहे ।
 आजकल भी ग्रामवासियों और राजनीतिज्ञों में ये सब प्रचलित हैं ।

9. द्वृती

इस प्रसंग को हम द्वृती द्वारा नायिका के मान-मनावन का एक पद दे कर
 समाप्त करेंगे—

(रागिनी टोड़ी, चीताला)

जेई-जेई बचन कहत हों री तोसौं,
 तेई-तेई बचन तू मान लै सयान ।
 मेरे कहैं तू उठ चल री ललना,
 धरे ही रहेंगे तेरे जिय के गुमान ॥
 कल न लागे और तैं तेरी, तेरी है जीवन प्रान ।
 'तानसेन' तेरी कहाँ लौं अस्तुति करें,
 क्यों तू जान है रही अजान ॥

हे सुंदरी, मेरा कहा मान ले, नहीं तो तेरा घमंड घरा ही रह जाएगा । तू
 जान कर भी अनजान क्यों बन रही है ?

‘है रही है अजान’ शब्द-समूह बृंदेलखंड के उत्तर में ग्वालियर के ग्रामों में अभी भी सुना जा सकता है ।

10. प्रिय-दर्शन की लालसा

नायिका द्वारा प्रिय-दर्शन की लालसा के संबंध में तानसेन ने सुंदर पद लिखा है—

(रागिनी धनाश्री, चीताला)

लाल मया कै बुलाई, सौतिन दुख पायौ ।

जे मेरी हितू तिनकै आनंद भयौ,

मृदंग बजायौ, मनभायौ मंगल गायौ ॥

पिया की मया मो पै कही नाँ परत है,

सब तियन छाँडि मेरे गृह आयौ ।

‘तानसेन’ के प्रभु पलकन सौं मग झारौं,

जीवन-जनम सुफल करायौ ॥

यहाँ पलकों से प्रिय का मार्ग झाड़ना बहुत सुंदर उक्ति है । इस पद में ईर्ष्या का संचारी भाव भी है ।

एक अन्य पद में तानसेन ने प्रियतम के दर्शन की लालसा का करुणापूर्ण वर्णन किया है¹—

(रागिनी विलावली, चीताला)

जन की ताप तब ही मिटैगी मेरी, जब प्यारे कौं दृष्टि-भर देखौंगी ।

जब दरस पाऊँ प्रान प्रीतम कौ, जनम जीतब सफल अपनौ लिखाऊँगी ॥

अष्ट जाम मोहि कौ ध्यान रहत वाकौ, आली कौं ले भेटूंगी ।

‘तानसेन’ प्रभु कोउ आन मिलावै, ता के पावन सीस टेकाऊँगी ॥

इस पद में प्रेमिका कहती है कि जो भी मुझे प्रभु से मिला देगा, मैं उसके पैरों पर मस्तक टेकूंगी ।

11. कुब्जा

कृष्ण-चरित्र में कुब्जा का महत्वपूर्ण स्थान है । गोपियों को उसके कारण बहुत व्याकुलता हुई थी । सुंदर ब्रजांगनाओं को छोड़ कृष्ण कुब्जा पर आसक्त हुए, यह उनके लिए आश्चर्य और ईर्ष्या, दोनों का ही कारण बना था । कृष्ण-भक्त कवियों ने इसे बहुत उभारा है । इनके छंदों में योग की अपेक्षा भक्ति की महत्ता स्थापित की गई है । तानसेन के भी इस विषय में कुछ पद प्राप्त हुए हैं ।

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, कविवर तानसेन, सम्मेलन-पत्रिका संवत् 2003 ।

इन सब पदों में गोपियों द्वारा ईर्ष्या के संचारी भाव की सुंदर व्यंजना हुई है। योग को समझाने के पत्र लिखने का भी कथन किया है—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

मोहनलाल दयाल कृपाल कृपा कीजै तुम्हें कहाँ हम पावें।

जो अब कृष्ण कुबरी चाहै ते हमहूँ कुबरी होइ आवें ॥

लिख-लिख जोग पिटरियाँ भेजत काहे कूँ पतियाँ लिखावें।

‘तानसेन’ प्रभु दासी त्वैं कैं हमहूँ मथुरा जावें ॥

यदि कृष्ण कुवड़ी दासी होने से मिलते हैं, तब गोपियाँ कहती हैं कि हम भी कुवड़ी बन कर कृष्ण के पास मथुरा पहुँचेंगी।

जब त्रैलोक्य-पति उसके वशीभूत हो गए हैं तब कुब्जा क्यों न ऐंड़ी-बैंड़ी डोलेगी—

(रागिनी गुजरी, चीताला)

कुबिजा कौ राज री न्याव ये, जासौं गोविंद बोल बोलै।

त्रइलोकनाथ हित कर चाहैं, सो क्यों न ऐंड़ी-बैंड़ी डोलै ॥

जग-जीवन के सुहाग माँती री माई, तातें बतियाँ गढ़ि-गढ़ि छोलै।

वाकौ उत्तर बूझत जासौं ‘तानसेन’ बिरह कबहूँ हिय डोलै ॥

यह तो कुब्जा के पूर्व जन्म का पुण्य था कि उसे त्रैलोक्य के ठाकुर का अपार प्रेम मिल गया—

(राग गुजरी, चीताला)

कुबिजा तैं काहे न मंगल गावै, मंगल गावै।

त्रइलोक कौ ठाकुर सो तेरे द्वारें आवै ॥

धन तेरौ भाग सोहाग री नारी, तो ही सौं चित्त चावै।

‘तानसेन’ के प्रभु पूरब पुन्यन तैं रस-बस करि अपनावै ॥

—पञ्चीस— रस-साम्प्रती

मानव हृदय अनेक व्याधियों और चिन्ताओं से परिपूरित रहता है। कविता मानव को इन व्याधियों से मुक्ति दिलाती है। अनुभाव और संचारी द्वारा भाव स्वरूप ग्रहण करता है और इन्हीं के संयोजन से रस-निष्पत्ति होती है। रस मुख्यतः नौ माने गए हैं।

इन रसों में प्रधान शृंगार है, फिर वीर रस आता है। वीर रस बढ़ कर रौद्र रस बन जाता है। आगे का रस कर्षण है। फिर भयानक, वीभत्स, अद्भुत, हास्य तथा शांत रस माने गए हैं। शांत रस के साथ ही भक्ति को भी रस माना गया है। काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने रसों की संख्या कम भी बतलाई है। कुछ आधुनिक विद्वान एक कया रस का भी उल्लेख करते हैं।

तानसेन काव्य-शास्त्री नहीं थे। उनका प्रमुख उद्देश्य गायन के लिए पद लिखना था। मानकुतूहल में संगीताचार्यों को नौ रसों में रचना करने की योग्यता होना भी आवश्यक बतलाया गया है। तानसेन ने इस अपेक्षा को पूरा किया है।

1. भक्ति

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, काव्य-शास्त्र के कुछ विद्वान भक्ति को भी रस मानते हैं। तानसेन के भक्ति-विषयक पद संख्या में सर्वाधिक प्राप्त हुए हैं। उन सबका विवेचन 'भक्त-कवि तानसेन' परिच्छेद में किया गया है, केवल भूमिका के रूप में कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। भक्ति के पदों में व्यक्त गंभीर आस्था तथा उलब्ध संख्या को देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन के हृदय में गोस्वामी तुलसीदास की नीचे लिखी चौपाई घूम रही थी:—

कीन्है प्राकृत जन-गुन-गाना । सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥

तुलसीदास ने अपने राम को 'प्राकृत जन' के स्थान पर पुरुषोत्तम से भी आगे परमब्रह्म बना दिया और राम-पंचायतन के राजसी ठाट-बाट का बहुत सुंदर चित्र प्रस्तुत करने का अवसर भी प्राप्त कर लिया।

तानसेन अपने स्तुत्यों में इस प्रकार के देवत्व का आरोपण नहीं कर सकते थे। फिर भी रामचन्द्र बघेला की प्रशंसा में तानसेन ने कभी-कभी राघव और बघेला के अंतर की सीमा-रेखा अत्यंत क्षीण कर दी है। तुलसी के समान अन्य

राम-भक्त भी इस कार्य को उचित नहीं मान सकते, तथापि यह मानना पड़ेगा कि स्तुत्य रामचन्द्र वधेला हों या सम्राट अकबर, उनकी प्रशंसा में लिखे गए पदों में कविरव-गुण की कमी नहीं है।

अपने 'प्राकृत जन' के गुण-गान करने के कारण गिरा (शारदा) को जो पठतावा हुआ था उसका परिमार्जन करने के लिए तानसेन ने राघवराम, शिव, काली, गणेश, सरस्वती तथा कृष्ण आदि की भक्ति के पद बड़ी संख्या में प्रस्तुत किए हैं। उन पदों को पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन राम और कृष्ण के परम भक्त थे, तथा उस भक्ति को श्रेष्ठ कवित्व के कदली-पत्र पर सजा कर उत्तम गायन के रूप में प्रस्तुत कर वे उन्हें रिझाने का पूर्ण प्रयास करते थे। कृष्ण और शिव के विषय में लिखे गए उनके पदों से कोई भी कृष्ण-भक्त अथवा शिव-भक्त भाव-विभोर हुए बिना नहीं रह सकता।

यह ज्ञात होता है कि ये भक्ति-पद तानसेन की अंतरात्मा से प्रवाहित हुए हैं। तानसेन के संबंध में एक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि अकबर ने तानसेन से पूछा था कि तुम स्वामी हरिदास जैसा सुंदर गायन क्यों नहीं कर सकते। तानसेन ने उत्तर दिया था कि मैं 'शाहंशाह' के रिझाने के लिए गाता हूँ, और स्वामीजी 'शाहंशाह के शाह' को रिझाने के लिए गाते हैं; इसी कारण उनका गायन मुझसे श्रेष्ठ होता है। तानसेन ने एक बात छुपा ली। वे भी 'शाहंशाहों के शाह' को अपित अनेक पद लिखते थे, जो रचना के रूप में उन पदों से अत्यधिक श्रेष्ठ हैं जो अकबर की प्रशंसा में लिखे गए थे। वे पद कैसे गाए गए थे यह जानने का कोई साधन नहीं है; निश्चय ही उन पदों का गायन भी अत्यंत उत्कृष्ट किया गया होगा, जैसा स्वामी हरिदास ने कुंज-बिहारी को अपित अपने पदों का गायन किया होगा।

2. शृंगार

शृंगार रस ध्रुपद का सर्वस्व है। बँजू जैसा संत गायक भी शृंगार-पूर्ण रूप-वर्णन में प्रवृत्त होता दिखाई देता है। बख्शू का तो कहना ही क्या है, उसकी रचनाएँ आकंठ शृंगार में डूबी हुई हैं। तानसेन भी इस प्रभाव से अछूते नहीं हैं; खानखाना और अकबर को संबोधित अनेक पदों में उनकी प्रिया अथवा पटरानी के रूप का शृंगारिक वर्णन करने से वे नहीं चूके। 'अंतःपुर संगीत' शीर्षक के अंतर्गत उद्धृत पद में अकबर की पटरानी के विषय में घोर शृंगार को आधार बनाया गया है।¹

शृंगार की गहरी पुट गोपियों और कृष्ण से संबंधित पदों में भी मिलती है। नायिका-भेद भी शृंगार का प्रबल उपकरण है। इस विषय में भी तानसेन के अनेक पद प्राप्त हुए हैं।

1. पीठे पृष्ठ 62 पर देखें।

3. वात्सल्य

तानसेन की रचनाओं में वात्सल्य का प्रवेश कृष्ण-चरित के वर्णन के कारण हुआ है। उसके उदाहरण 'कृष्ण-भक्त तानसेन' परिच्छेद में दिए गए हैं।

4. वीर

तानसेन ने रामचन्द्र बघेला और अकबर के शौर्य के विषय में जो पद लिखे हैं, उनमें से अनेक वीर रस के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

तानसेन के पद-साहित्य में अन्य रसों की खोज बहुत सार्थक नहीं होगी।

भक्त-कवि तानसेन

1. निर्गुण भक्ति

हिंदी के भक्त कवियों के काव्य को निर्गुण और सगुण भागों में विभाजित किया गया है। हिंदी के संत-कवि साकार और निराकार, दोनों प्रकार की रचनाएँ करते थे।

तानसेन मूलतः विविध देवी-देवताओं के उपासक थे, तथापि उन्होंने भी राम-रहीम की एकता और निर्गुण ब्रह्म की आराधना में कुछ बहुत सुंदर पद लिखे हैं। अकबरी दरबार के उदार-चेता मुसलमानों और समकालीन सूफियों को भी इस प्रकार के पद प्रिय हुए होंगे। राम-रहीम की एकता प्रतिपादित करते हुए तानसेन ने लिखा है—

(राग भैरव, चौताला)

तुम रब, तुम साहेब, तुम ही करतार,
घट-घट पूरन जल-थल भर भार।
तुम ही रहीम, तुम ही करीम,
गावत गुनी-गंधर्व, सुर-नर, सुर-नार ॥
तुम ही पूरन ब्रह्म, तुम ही अचल,
तुम ही जगद्गुरु, तुम ही सरदार।
कहै मियाँ 'तानसेन' तुम ही आप
तुम ही करत सकल जग को भव पार ॥

निरंजन की प्राप्ति करने की सामर्थ्य छहों शास्त्र और अष्टारहों पुराणों में भी नहीं है। अपनी इस मान्यता को स्थापित करते हुए तानसेन ने लिखा—

(रागिनी गुजरी, तिताला)

रूप निरंजन अंजन रहित, ताहि बरनिबे कौं
उदित भये छहौ शास्त्र अठारहौ पुरान।
ताकौ भेद नहीं पावत शिव-सनकादिक,
ब्रह्मा-नारद-शेष रटत वोहू ब्रह्मा शिव घट व्यापक,
कोटि-कोटि ब्रह्मांड रचत देख लेहु बुधिवान ॥

आदि-अंत-मध्य वोही त्रैलोक चराचर,
वाही की इच्छा तें करत वितान ।

‘तानसेन’ के प्रभु सब जग व्यापि रहौ,
पूरन ब्रह्म अविनासी निरंकार अविनासी भगवान ॥

अलख-निरंजन की स्तुति कैसे की जाए, इस पर संदेह प्रकट करते हुए
तानसेन ने लिखा है—

(रागिनी टोड़ी, झपताल)

घरिनी-धरन, अधरन-दाता विधाता,
विश्व-भरन-पोषन ।

भागवंत सौभाग तरन-तारन भक्तजन कौं,
सकल सुख करन मोखन ॥

आदि-अंत तु ही रोम-रोम रमि रह्यौ सब में,
तू ही चर-अचर थावर-जंगम तोखन ।

‘तानसेन’ तेरी अस्तुति कैसे करौं अलख निरंजन,
निराकार ध्यान रहै तेरौ दुरन हू बोलन ॥

तानसेन का विश्वास है कि उन्हें नाद-विद्या और शुद्ध संगीत की प्राप्ति ईश-
कृपा से ही हुई है—

(रागिनी-मालश्री, तिताला)

जब करतार करम करै तौ सब कछु पावै,
नाद विद्या सुद्ध संगीत आवै ।

जान बूझ भूलौ फिरै रे क्यों न वोही नाम लेत,
जा सुमिरत ही सुर-तान गावै ॥

जे नर-मुनि-गुनी पचि-पचि हारे,
बिना कादर कोऊ ना बतावै ।

‘तानसेन’ प्रभु निसि-वासर, अब तेरौ नाम ध्यावै ॥

विधाता द्वारा की गई सृष्टि के अनेक रूपों का वर्णन करते हुए तानसेन ने
लिखा है—

(राग मालव, चौताला)

भाँति-भाँति के भाँड़े गढ़े, ऐसी विधना कुम्हार ।

एकन उत्तम न्यामत, एकन मध्यम न्यामत,

एकन निकृष्ट न्यामत, एकन राखौ खाली कर मिकदार ॥

एकन देत रीभूत, एकन लेत रीभूत, एकन कौं वारोरन दिये,
एकन कौं हाथ खप्पर दिये, माँगत भीख द्वार-द्वार ।

एकन कौं नरक, एकन कौं सरग देत,

‘तानसेन’ प्रभु रच्यौ संसार ॥

वास्तव में यह पद आज भी बहु-प्रचलित भाग्य-वादिता का द्योतक है ।

संसार में मानव के आवागमन के त्रास से मुक्ति का साधन भी विश्वंभर का ध्यान करना बतलाया है—

(रागिनी दोड़ी, तिताला)

रे मन जब लगि पिंड प्रान, तब लगि जग नातो,

सबहिन सौं व्यवहार ।

जब लगि जीजियै, तब लगि हरि-नाम लीजियै,

राग-रंग कीजियै, यह तन-मन-नैन-प्रान, जात न लागै वार ॥

बालापन, तरुनाई और वृद्धावस्था,

पुनि-पुनि जनम-मरन होत संसार ।

‘तानसेन’ करिलै ध्यान विश्वंभर कौ

यही पूंजी, यही जमा, यही है सार ॥

तानसेन ने उस विश्व-व्यापक निरंजन को हरि और मुरारी के समरूप बना कर लिखा है—

(रागिनी दोड़ी, चीताला)

मेरे मन माहि हरिनाम, जिन रच्यौ अखिल धाम,

काम-क्रोध-मोह-लोभ बह्यौ जात संसार ।

जिन रच्यौ स्वर्ग, मर्त्य और पाताल,

निरंजन सोई साकार, निसदिन जपलै, श्री मुरार ॥

दीनबंधु दीनानाथ काटत दुख द्वंद-फंद,

ताही घरी-पल-छिन न बिसार ।

‘तानसेन’ कहै निरमल रहियै भजियै भगवान,

मानुस जनम नहीं बार-बार ॥

मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता, ऐसा तानसेन का विश्वास था; यह उस समाज में सभी व्यक्तियों का था और आज भी अधिकांश व्यक्तियों का है ।

इस विषय में संबंधित सभी पद देने से प्रसंग बहुत बढ़ जाएगा । नायिका-भेद, राम कृष्ण की भक्ति तथा अन्य देवी-देवताओं की स्तुति करने-वाले एवं राजा-बादशाहों का यशोगान करने-वाले पदों को देखते हुए अल्लाह-रसूल-पीर की

आराधना के साथ ही निरंजन-निराकार-विषयक तानसेन के ये पद विशेष महत्त्व रखते हैं ।

2. सगुण भक्ति

सगुण भक्त के रूप में तानसेन ने अनेक देवी-देवताओं की वंदना की है । प्रारंभ प्रथम वंदनीय श्री गणेश से करना उचित है ।

गणेश-वंदना

गणेश कभी विघ्न-कारक देवता माने जाते थे । धीरे-धीरे वे विघ्न-नाशक कल्याणकारी देवता बना दिए गए ।

गायकों के गणेश सदा आराध्य रहे हैं । उनकी स्तुति में तानसेन ने अनेक पद लिखे हैं । वे प्रातर्गोप भैरव राग में हैं—

(राग भैरव, ध्रुपद चीताला)

उठि प्रभात सुमिरियै, जँ श्री गणेश देवा ।

माता जाकी पारवती, पिता महादेवा ॥

अंधन कौं नेत्र देत, कुण्ठी कौं काया ।

बंध्या कौं पुत्र देत, निर्धन कौं माया ॥

एकदंत दयावंत, चार भुजा धारी ।

मस्तक सिंदूर सोहै मूसक असवारी ॥

फूल चढ़ै पान चढ़ै, और चढ़ै मेवा ।

मोदक कौ भोग लगै, सुफल तेरी सेवा ॥

रिद्धि देत, सिद्धि देत, बुद्धि देत भारी ।

‘तानसेन’ गजानंद सुमिरौ नर-नारी ॥

पचास-साठ वर्ष पहले इस पद को लोग बड़े भक्ति-भाव से गाते थे । तथापि अंतिम चरण नहीं गाया जाता था, इस कारण यह ज्ञात नहीं हो पाया कि यह पद तानसेन का है ।

लगभग इसी भाव की एक गणेश-वंदना और है¹—

(राग भैरव, इकताला)

जँ गनेस जँ गनेस जँ गनेस देवा ।

मन बुधि हित चित लगाइ करौं नित्त सेवा ॥

एकदंत दयावंत चारि भुजा धारी ।

मस्तक सिंदूर सोहै मूसे असवारी ॥

माता बाकी गवरि कहीं जँ पिता महादेवा ।

तीनि लोक ध्यान धरत नित्त करत सेवा ॥

1. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से ।

अंधनि कौं नैन देत कुस्टनि कौं काथा ।
 बाँझनि कौं पुत्र देत निर्धन कौं माया ॥
 भाल चंद्र सिव विलोकि देव सकल बारी ।
 'तानसेन' गजानंद गावें सुभकारी ॥

एक अन्य गणेश-स्तुति का पद इस प्रकार है—

(राग भैरव, जलद तिताला)

तुम हौ गनपति देवा बुधिदाता, धरें सीस गज तुंड ।
 सिद्धि सिरी नाम तुम्हारौई कहीअत जे विद्या धरे गुनी
 तीनि लोक मध सप्तदीप नवखंड ॥
 जोई जोई ध्यावत सोई फल पावत चंदन लेप करें भुज दंड ।
 'तानसेन' प्रभु तुम्हारौ कहावत कासों जा लग सुंड ॥

गणेश के अनेक नामों की माला गूँथ कर तानसेन ने उनके गले में पहना दी है—

(राग भैरव, चीताला)

लंबोदर, गज-आनन, गिरिजा-सुत गनेस,
 एकरदन प्रसन्नवदन अरुन-भेस ।
 नर-नारी, गुनी-गंधर्व, किन्नर-यक्ष-तुंवरु मिलि
 ब्रह्मा विष्णु आरति पुजावत महेस ॥
 अष्ट-सिद्धि, नव-निधि, मूषक-वाहन, विद्यापति,
 तोहि सुमिरत जिनको सेस ।
 'तानसेन' के प्रभु तुमही कूँ ध्यावें अविघन रूप,
 विनायक रूप स्वरूप आदेस ॥

गणेश के कुछ नाम शेष रह गए थे, वे इस पद में पूरे किए गए—

(रागिनी टोड़ी, चीताला)

एकदंत, गजवदन, विनायक, विघन-विनासन हैं सुखदाई ।
 लंबोदर, गजानन, जगवंदन, शिव-सुत, दुंदीराज सब बरदाई ॥
 गौरी-सुत, गणेश, मूसक-वाहन, फरसाधर,
 शंकर-सुवन, रिद्धि-सिद्धि नव निध दाई ।
 'तानसेन' तेरी अस्तुति करत, काटौ कलेस,
 प्रथम वंदन करत द्वंद मिट जाई ॥

अंत में, कल्पवृक्ष तथा कामधेनु के समान महागणेश से कृपा करने की प्रार्थना की गई है—

(रागिनी आसावरी, आड़ा चौताला)

महागनेस कहत सुख-चैन ।

भेंटत हू न छाँड़ै अभावै, साह किरपा पागै, भागै त्रिचकै न ॥
नाम लेत कटत पाप, अन-धन-लच्छिमी देन ।

‘तानसेन’ सेवक पै कृपा करौ ज्यों कल्पवृक्ष कामधैन ॥

सरस्वती

शिव-परिवार के बाहर तानसेन की श्रद्धा सरस्वती की ओर आकर्षित होती दिखाई देती है । यह स्वाभाविक था । तानसेन को वीणा-वादिनी महारानी की कृपा की वास्तविक आवश्यकता थी ।

गंगा के साथ ही तानसेन ने त्रिवेणी की लुप्त सरस्वती की वंदना भी मृग-नयनी के रूप में की है—

(राग भैरव, चौताला)

चंद्रबदनी मृगनयनी ता मधि तारका गंग,

पूतरी कालिदी, इहि विधि डोरे बनाय कीन्ही तिरबैनी ।
छूटी पोत कंठ, दीपक मुख की जोति होत,

तामै गुप्त प्रकट सरस्वती मिली ऐनमैनी ॥
सुंदर रूप अनूपम सोभा, त्रिभुवन पाप-ताप हरनी, करत सुख-चैनी ।
‘तानसेन’ कौं करौ निरमल तू,

दाता भक्त जनन की, बैकुंठ की नसैनी ॥
सरस्वती से तान और गायन की याचना करते हुए तानसेन ने गाया—

(राग भैरव, चौताला)

महावाक्वानी बरदानी सनमुख हूजै आहूजै ।

जाई सैं त्रिभुवन मानी जासैं भवानी,

जो जाकी मन अंछया तो पै सोई-सोई पूजै ।

रिधि-सिधि दाता माता तूअ पग पाँव छूजै ॥

माँगत है ‘तानसेन’ रचै पचै फुदै जहाँ-तहाँ

तान रस रीति आवत रंग सूजै ॥

जालपा-रूपी सरस्वती से सुकंठ के लिए प्रार्थना करते हुए तानसेन ने कहा—

(रागिनी आसावरी, चौताला)

मेरें तौ सरसुती घट-घट भरि पूरि रही, नाँव धरौं वाक्वानी ।

जल-थल मधि पूरि रही जालपा भवानी,

जाई तैं कहीअत तोसौं सर्वानी ॥

कोटि काठन में जानी ऐसो सप्तदीप नवखंड जलपा भवानी ।
 'तानसेन' को प्रभु प्रसाद दीजै,
 दयानी मयानी भवानी कंठपाठ ठहरानी ॥

सप्त स्वर, तीन ग्राम, राग-रंग-लय और अक्षर भारती-विद्यादानी से ही
 प्राप्त हो सकते हैं—

(राग भैरव, चौताल)

जै शारदा भवानी, भारती विद्यादानी, महावाक्वानी, तोहि ध्यावैं ।
 सुर-नर-मुनि मानी, तोही कूँ त्रिभुवन जानी,
 जो जाकी मन इच्छा, सोई सो पुजावैं ॥
 मंगला बुधि-दानी, ज्ञान की निधानी,
 वीणा-पुस्तक-धारिनी प्रथम तोहि गावैं ।
 'तानसेन' तेरी अस्तुत सौं ही,
 सप्त स्वर, तीन ग्राम, राग-रंग-लय-अच्छर आवैं ॥

इसी हंस-वाहिनी से तानसेन जब तक गंगा बहती रहे, ध्रुव स्थिर रहे, तथा
 पवन और जल का अस्तित्व रहे, 'राग-रंग' बने रहने का वरदान मांगते हैं—

(रागिनी टोड़ी, झपताल)

ज्ञानवंत कौं रस अगम बुद्धि दैनी तू,
 सबही अंगन मानी हंसवाहिनी गिरा महावाक्वानी ।
 जो तोहि ध्यावैं, मन इच्छा फल पावैं,
 साधत कंठ प्राणी, करत बखानी ॥
 तो सी तु ही और नाहीं विद्यादानी,
 जे साधैं, आराधैं तिहूँ लोक जग जानी ।
 'तानसेन' कौं दीजै राग-रंग बर बानी,
 जौलौं गंगा धरनि, ध्रुव पवन-पानी ॥

गुण-समुद्र को पार पाने का एकमात्र आधार सरस्वती की आराधना है ।
 उसके प्रसन्न होने पर इस गुण-समुद्र को अगस्त्य ऋषि के समान एक चुल्हू में पिया
 जा सकता है—

(रागिनी टोड़ी, झपताल)

पार नहीं पाइयै गुन समुद्र अथाह,
 कौन विधि तरियै, कहा करियै, कवन भाँति जानियै ।

मन ज्ञान नेत्रन असूझ लागैं सुर-तान-ताल,
कौन तरह घट में आनियै ॥

जब उठत है ध्यान अति प्रान डरौ जाय,
चरन धरौं धाय-धाय कैसें गर ठानियै ।

कहै गुरु-ज्ञान 'तानसेन' सरसुती ध्यान घर,
गुन ये अगस्त अँचवन पानियै ॥

एक पद में सरस्वती और गणेश की संयुक्त वंदना कर यह वर माँगा गया
है कि 'तानसेन के प्रभु' युग-युग जिऐँ—

(राग भैरव, चौताला)

प्रथम नाद सरसुती, गणपति बुद्धि-दाता ।
जाकी कृपा तैं अन-धन-लच्छमी पालन करै सब जग त्राता ॥

जोड़-जोड़ आवत, मन फल पावत, सब गुनियन कौं देत विधाता ।

'तानसेन' प्रभु जुग-जुग जीत्रौ चरन-कमल रंग राता ॥

यह तानसेन प्रभु कौन है ? मानसिंह, विक्रमादित्य, राजा रामचन्द्र अथवा
अकबर ?

प्रभु की आराधना

तानसेन ने एक पद में जगत को जीवन-दान देने-वाले प्रभु की अगाध भक्ति-
पूर्वक स्तुति की है—

(रागिनी अलैया, चौताला)

जगत-जीवन हो प्रभु, भगत-वच्छल तू ही भगवान,

भगत-हिआ-पंकज-राज अचल-राज

राज-राजेश्वर अगन-भुवन पालक ।

तू ही माता, तू ही पिता, तू ही धाता बांधव, तू ही प्रिय प्रानाराम,

तू ही सान्ति, सुख गति, मोछ-भक्ति-दाता ब्रह्म तारक ।

प्रान-बल्लभ, बहुबल्लभ, तानसेन को एक वल्लभ,

माया-मोह-मुगध-चीत संसार ताप तपत,

सान्ति-दाता, दीजै सान्ति दीन कौं ॥

तानसेन का यह लिखना कि उसके प्रभु यद्यपि बहुनायक हैं, तथापि उनके नायक
तो अकेले प्रभु ही हैं, अत्यंत सुंदर उक्ति है ।

विष्णु-नामावली

तानसेन ने एक पद में गोपाल, कुंज-बिहारी, माधव, रंगनाथ आदि नामों से
विष्णु की प्रार्थना की है—

(राग ईमन, सूरसाकता)

गोवरधन गिरिधर गुपाल गजाधर गरुरापति गरुरगामी गोविन्दे गोपीनाथ,
कृत्न केसीदलन काम करतार कूरंम केवल

करुनानिधि कुंजबिहारी कांन कंदन किशोर ।
जोग ध्यान जोतीसरूप जन-रंजन मुकुट माधौ रंगनाथ रषीकेस रनछोर ॥
पारब्रह्म परमेशुर परसोत्तम प्रहैलाद उबारन महावली जोर ।
'तानसेन' कौ प्रभु भक्तनि रछिकरि अधम तरत हैं चितवत कोर ॥

शिव-शक्ति

तंत्र के विषय में लिखते समय शिव और शक्ति विषयक पद दिए जा चुके हैं । फिर भी कुछ अत्यंत सुंदर पद और प्राप्त हुए हैं ।

एक पद में तानसेन ने शिव और पार्वती, दोनों की संयुक्त रूप से बंदना की है¹—

(राग भैरव-जलद)

महादेव सिव सिभू महावली महारूप महापति मंत्र सुरगुड सिंगी ।

गरें मुंडमाल भुज व्याल दयाल त्रसूल डबरू
डंबकाहित बाजत पिनाक उपंगी ॥

बाघंवर जौ भस्म डगंवर जटाजूट सिर राजत गंगी ।

त्रईलोचन मोचन सकल जग वृषववाहन राजत संगी,
'तानसेन' कौ प्रभु पार्वती त्रीआ अरधंगी ॥

एक अन्य पद में शंकर के चरणों पर करोड़ों राजाओं को न्यौछावर करते हुए तानसेन ने प्रार्थना की है—

(रागिनी खंभावती, चौताला)

शंकर महादेव, देव सेवक सब जाके ।

पावत नहीं पार शेष, ध्यावत सुर-नर-मुनेश,
गावत धन-धन गनेस-ब्रह्मादिक वाके ॥

डमरू कौ ध्यान धरत, दाने कौ प्रान हरत,
ऐसौ बहु भेष धरत, नीलकंठ ताके ।

लिपट-लिपट जात व्याल, औढ़ें शिव जरद साल,
चंद्रमाल रुंडमाल दृग विसाल वाके ॥

जटा गंग, भसम अंग, वाहन वृषभ अति प्रचंड
गवरजा अर्धंग संग, भंग-रंग नैन छाके ।

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

‘तानसेन’ अति अनूप, शंकर कौ निरख रूप,
वारों कई क्रोड़ भूप, चरनन पर वाके ॥

मृग-नयनी का शिवार्चन
तानसेन ने चंद्र-वदनी मृग-नयनी से बत्तीस आभरण और सोलह शृंगार
करा कर शिवार्चन कराया है ।

(राग भैरव, चौताला)

चन्द्र वदनी, मृग नयनी, हंस गमनी, चली है पूजन महादेव ।
कर लिए अग्रथार, पहुँचन के गुंथे हार,
सुख दियरा जराए, देवन में देव महादेव ॥
सोरह सिंगार, बत्तीसों आभरन, सज नखसिख सुन्दरदाई,
छवि बरनी न जाय, है निरमल कर मंजन सेव ।

‘तानसेन’ कहै धूप-दीप-पुहुप-पत्र-नैवेद्य लै,
ध्यान लगाय, हर-हर-हर आदि देव ॥

दुर्गा-भवानी से तानसेन ने राग-रंगत, तान, ताल और काव्य-रचना का
वरदान माँगा है—

(राग त्रिवण, चौताला)

दया कर दयानो, सो राग-रंगत सौं गाऊँ उत्तम बानी ।
जंबू दुर्गा भवानी, राग-तान-ताल सहित सौं अब होवें परम ज्ञानी ॥
उक्ति-जुक्ति काव्य करन ऋद्धि-सिद्धि नवनिधि दानी ।
‘तानसेन’ प्रभु इतनीं माँगत तुम पै,
सुख-संपत्ति-विद्या दै काश्मीर की रानी ॥

3. राम-भक्ति

तानसेन के राम-भक्ति के पद बहुत थोड़े मिले हैं तथापि उनमें अगाध भक्ति
परिलक्षित होती है । वे रामनाम की ढेर लगाते हुए गाते हैं—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

अब मैं राम-राम कहि टेरों ।
मेरी मन लागौ उनहीं सौं, सीतापति-पद हेरों ॥
चरन सरोज श्रवन मन मेरी, धुज अंकुस सुख केरों ।
‘तानसेन’ प्रभु तुम हौ नायक, इन तरवन पर फेरों ॥

एक अन्य पद में तानसेन ने राम और कृष्ण, दोनों की शरणागति-प्राप्ति
की आकांक्षा प्रकट की है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

ए मन, तू जो अपनों सुख चाहत है,
घरी-घरी, पल-पल, छिन-छिन सुमिर लै श्रीराम नाम ।
जो जग जप-तप नैम-धर्म व्रत-संजम,

ज्ञान-ध्यान गहैं दृढ़ हरि चरनन बिस्राम ॥
और उपाव नांहीं कलिजुग में, कृष्ण-कृष्ण कहत होय आराम ।
'तानसेन' प्रभु की चरन सरन गहि लै, जासों पावै बैकुंठ धाम ॥

एक अन्य पद में राम-भक्त तानसेन ने सातों स्वरों के नाम गिना कर राम का स्मरण किया है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

सर्व ही मांगत जो हूँ री माई, आगम भयौ आवन परस ।
जपत ही सर्व दुख-दारिद गयौ जो तानसेन,
पिया हियरा हुलसाये अरस-परस ॥

राम ही नाम हिरदै धरौ प्रगट है अष्ट जाम,
'तानसेन' पिया नित धरौ ।

षरज-रिषभ-गांधार-मध्यम-पंचम-धैवत-निषाद,
श्रीराम-नाम सुमिरन करौ ॥

केवल इतने ही पद राम-भक्ति के प्राप्त हुए हैं। इनको देखने से यह अवश्य ज्ञात होता है कि तानसेन की श्री रामचन्द्र के चरणों में अगाध भक्ति थी। तानसेन के राम-भक्ति-विषयक पदों का न मिलने का विशेष कारण था। यह परंपरा बाबर के समय से प्रारंभ हुई थी। बाबर ने अयोध्या में रामजन्म-भूमि के स्थान पर बाबरी मस्जिद बनवा दी थी। बाबर ने केवल चार वर्ष (1526-1530 ई०) राज्य किया था। सन् 1526 में उसने पानीपत का युद्ध जीता था। इसके पश्चात् भी उसे विषम संघर्ष करने पड़े और 1530 में वह मर गया। 'बाबरनामा' में कहीं यह उल्लेख नहीं है कि उसने अयोध्या का मंदिर तुड़वाया था।

यह संभव नहीं था कि इतने थोड़े समय में भी उसे राम के दुष्ट-दलन-स्वरूप का ज्ञान हो जाता। यह कार्य केवल धर्मांधता के कारण किया गया होगा।

अकबर के संबंध में बाबर जैसी स्थिति नहीं थी। अकबर के समय में गोस्वामी तुलसीदास ने पुरुषोत्तम राम के दुष्ट-दलन और राक्षस-संहारक स्वरूप की पूर्णतः स्थापना कर दी थी।

अकबर स्वयं हिंदी का कवि था और सभी संप्रदायों से धर्म के विषय में

चर्चाएँ करता था। ऐसी दशा में यह संभव नहीं है कि अकबर को यह ज्ञात न हो कि 'दुष्ट' और 'राक्षस' से तुलसी का आशय मुगुलों से है।

गोस्वामी तुलसीदास को भी अकबरी दरबार से कुछ लेना-देना नहीं था। कृष्ण के भ्रूंगारिक पदों की स्थिति भिन्न थी। इस कारण अकबरी दरबार में कुछ कृष्ण-भक्त संप्रदायों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।¹

यही कारण है कि तानसेन की परवर्ती पीढ़ियों ने राम-भक्ति के पद सुरक्षित न रखे और कृष्ण-भक्ति के रस-सिक्त पदों को उन्होंने बड़ी संख्या में अपनाया।

4. कृष्ण-भक्ति

तानसेन के समय में एक ओर गोस्वामी तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा राम-राज्य की अवधारणा प्रस्तुत कर रहे थे, दूसरी ओर व्रज में भक्त गायक कृष्ण-भक्ति की रस-सिक्त माधुरी से जन-मन को परिप्लावित कर रहे थे। इन संप्रदायों के भक्त-कवि-गायक संतों ने कृष्ण के महाभारत के स्वरूप को बिलकुल भुला दिया और केवल कृष्ण की बाल-लीलाओं और प्रारंभिक यौवन के राधा और गोपियों के साथ उनकी काम-केलियों पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित रखी। इन कृष्ण-भक्तों के साथ अब्दुल रहीम खानखाना जैसे सहृदय व्यक्ति भी स्वर मिला रहे थे। इसी समय विभिन्न सूफी संत भी अपनी विचार-धाराएँ जनता में फैला रहे थे। अनेक जैन मुनियों को भी सम्मान-पूर्ण स्थान दिया गया था। अकबर के दरबार में कुछ ईसाई संतों को भी सम्मानित स्थान मिला था, परंतु वे समाज पर कोई छाप न छोड़ सके। इसी युग में हिंदी में रीति-वद्ध कवियों का भी प्रादुर्भाव होने लगा था।

इन सब परिस्थितियों का तानसेन की रचनाओं पर भी प्रभाव पड़ा था। राम-भक्ति-विषयक तानसेन के बहुत ही कम पद प्राप्त हुए हैं, इस पर ऊपर विचार हो चुका है। सूफियों के संपर्क के कारण तानसेन ने जो पद लिखे थे, उन पर भी शेख सलीम चिश्ती के संदर्भ में विचार किया जा चुका है।

कृष्ण-भक्ति-विषयक तानसेन के अब तक जो पद प्राप्त हुए हैं, उनकी संख्या पैंतालीस से अधिक नहीं है। यह सुनिश्चित है कि तानसेन ने कृष्ण-विषयक पद भी बहुत बड़ी संख्या में लिखे होंगे। ऐसी परिस्थिति में जितने पद उपलब्ध हैं उन्हीं के आधार पर विचार करना होगा।

तानसेन ने एक पद में पुराणों में भागवत तथा गीता को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। उस पद का संबंधित अंश इस प्रकार है:—

वर्न मनि ब्राह्मण, नाममनि राम नाम,

पुरानमनि भागवत, ज्ञानमनि गीता कर विचार ॥

इससे यह स्पष्ट है कि उनका पद-साहित्य कृष्ण के चरित्र के उस अंग से संबंधित है जिसका वर्णन 'श्रीमद्भागवत' में किया गया है। युग के प्रभाव के

1. द्विवेदी, मध्यदेशीय भाषा (बालियरी), पृष्ठ 121।

अनुसार तानसेन ने भी कुछ ऐसे पद लिखे हैं जिनमें शृंगार रस की निष्पत्ति कृष्ण के चरित्र के माध्यम से की गई है।

यह जो भी हुआ हो, कृष्ण-विषयक पदों के कारण तानसेन का यह दावा सिद्ध हुआ है कि उन्होंने सभी नौ रसों में रचनाएँ की हैं।

बालकृष्ण

कृष्ण-भक्त कवि-गायकों विशेषतः सूरदास ने बालकृष्ण के विषय में कुछ अत्यंत सुंदर पद लिखे हैं। बाल्यकाल के सभी स्वरूप उनमें चित्रित किए गए हैं। इन पदों में वात्सल्य रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। तानसेन के भी कुछ पद कृष्ण की बाल-लीला के विषय में मिले हैं।

यशोदा मैया को कृष्ण का पालना झुलाते हुए एक पद में दिखाया गया है। इस पद में कृष्ण के पालने का भी वर्णन किया गया है—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

हमारे लला कें सुरंग खिलौना, खेलत कृष्ण कन्हैया।

अगर-चंदन कौ पलनौ बनौ है, हीरा-लाल-जवाहर जरैया ॥

भँवरी-भँवरा, चट्टा-बट्टा, हंस-चकोर अरु मोर-चिरैया।

‘तानसेन’ प्रभु जसुमत झुलावै दौऊ कर लेत बलैया ॥

तानसेन ने बाल गोपाल की बाल-क्रीड़ा के विषय में एक पद लिखा है। कन्हैया के बाल-रूप का उसमें बहुत सुंदर वर्णन किया है—

(रागिनी टोड़ी, तिताला)

कैसे आछे सोहत लाल, कैसौ मुकुट सीस,

कटि किंकिनी नूपुर रुनक-भुनक, ठनकन चाप धरत,

चाल चलत गति गयंद की।

काछि कटि, काँधें कामरि, गल सोहै बैजंती माल,

मृगमद तिलक ललाट, कोटि काम लज्जित भये,

अधर मुरली वजत चित फंद की ॥

साँवरे सलौने गात, सोभा कछु कही न जात,

चितबन नैनन विसाल, रवि-ससि की जोति भई मंद सी।

‘तानसेन’ के प्रभु श्रृंगना में खेलत, सब ब्रज-जन आनंद मुदित,

जय बोलत बृंदावन-चंद की ॥

इस पद में ‘रुनक झुनक’, ‘चाल चलत’, ‘काछि कटि’, ‘काँधें कामरि’, ‘साँवरे सलौने’ और ‘सोभा’ में अक्षरों की जो बार-बार आवृत्ति हुई है उसका ध्वनि-साम्य अत्यंत सम्मोहक है।

व्रज-भूमि की लाली

तानसेन के व्रज में सब लाल-लाल ही दिखाई देते हैं । मदनगोपाल लाल हैं, नयन लाल हैं, चूनरी लाल है, गले का हीरा भी लाल हो गया, मोती भी लाल हो गए, व्रज-भूमि में सभी लाल दिखाई देने लगे¹—

(रस मालकोस, चौताला)

लोयन लाल, चुनरी लाल, बूटे छूटे सबुज लाल ।

गरें बीच हीरा लाल, नासिका कौ मोती लाल,

पाँय लाल, प्यारी लाल, सेज लाल ॥

वाजूबंद लाल, लाल कर, कंगन लाल,

लाल चरन, पाई लाल, चलत है मंद चाल ।

‘तानसेन’ भूमि लाल व्रज की, सब गोपी लाल,

ता मध मदनगुपाल लाल ॥

कृष्ण-प्रेम-लीला

कृष्ण की मुरली की ध्वनि से वृद्ध, तरुण और बच्चे भी मोह गए । कृष्ण लीला में लीन हैं और वेचारे ग्वाले खोजते फिर रहे हैं । कन्हैया सबेरे से ही वहाना बना कर गोपियों से मिलने के लिए निकल पड़ते हैं । अनेक छंद-बंद और टोना-सा करते हैं । वे कभी बालक बन जाते हैं, कभी बड़े लगने लगते हैं । ऐसे केलि-लीन कृष्ण से तानसेन अथक कृपा की याचना करते हैं²—

(दरवारी जलद, तिताला)

केते बंद-छंद करत, दु टौना बारें कान्हा सुंदर नंददुलारे

तव वे बन घन जात लला रे, तव वे खेलत न्यारे ।

भोर ही सें मिसु करि जात सौकारे

गोपिन साँ मिलवत नन सैन तारे,

बहीआँ गहत कूल किनारे, ढूँढत फिरत ग्वाल बिचारे ॥

मुरली नाद साधि सब मोहे विरध, तरुण और वारे ।

गौरी इंद्र चंद्र ब्रह्मां रे तट छिन ते उतारे ॥

‘तानसेन’ कौ प्रभु कबहूँ बालक, कबहूँ बड़ेरे,

कृस्न कारे ऐहो अबगति तेरी अथक कृपा रे ॥

गो-रस की खोज

व्रज की बनिताएँ सबेरे ही मटकी में गो-रस ले कर मथुरा की ओर चलती

1. इस पद में ‘सब्ज’ फारसी का प्रभाव है ।

2. अप्रकाशित ‘रंगमाला’ से ।

हैं। उनके प्राण कृष्ण-मिलन के लिए तड़प रहे हैं। कृष्ण झूठ-मूठ ही गो-रस खोजने निकल पड़े। गज-गामिनी तथा ऐंठ कर बोलने-वाली गोपियों का हित इसी में है कि उन्हें कृष्ण के अनुकूल चलना चाहिए¹—

(राग सूही, धनार)

लै चली हो गोरस बेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल ।
तरफरात प्रात बिथुरी अलकैं आननि पर और सोहै कुम्हिलानी माल ॥
गोरस के मिस भूठैं हूँ डोलत ढूँढत फिरत गोपाल ।
'तानसेन' के प्रभु साँ हिल-मिल ऐन-बैन चली गज की चाल ॥

गो-चारण

कृष्ण अपने सखाओं के साथ धौरी, धूमर, पीयरी, काजरी, गौओं को टेर कर बुलाते हैं। सुंदर आभूषण पहन कर गाँएँ चराने जा रहे हैं। जब वापस लौटते हैं तब कृष्ण के मुख पर ब्रज की रज लिपटी दिखाई देती है और यशोदा मैया प्रेम से उन्हें देखती हैं²—

(रागिनी श्रीगौरी, चीताला)

धौरी-धूमर पीयरी-काजरी कहि-कहि टेरै ।
मोर मुकट सीस, सवन कुंडल, कटि में पीतांबर पहिरै ॥
ग्वाल-बाल सब सखा संग के, लै आवत ब्रज नेरे ।
'तानसेन' प्रभु मुख रज लपटानी, जसुमति निरखि मुख हेरै ॥

यह पद तानसेन के उन बिरले पदों में से है जिनमें आभोग नहीं है।

उपालंभ

हम तो सिर पर गगरी रख कर मार्ग में जा रही थीं, तभी कन्हैया दौड़ पड़ा और सबकी अनैठ कर दी, जल भरने यमुना की ओर जाने नहीं देता, हँसी की अजीब बातें करता है, यशोदा तुम्हारे कान्हा ने तो सब गोपों का अगुआ बन कर हमारी लोक-लाज और कीर्ति पर बट्टा लगा दिया है—

(राग गंधार, तिताला)

अरी, हम जात रहीं डगरी-डगरी, यहि गगरी सीस धरें मगरी ।
हमहि देख दौरै एकटक गोरी, अनैठ कीनी सगरी ॥
जमुना जान देइ नहि जल कौं, नाहिन फिरन देई नगरी ।
अचगरी बातें करत हँसी की, मुरली अघर धरें ठाड़ी पगरी ॥
अहो जसोदा ! सुनौ कान्हू की, लोक-लाज-कीरति बिगरी ।
'तानसेन' प्रभु सवन में अगुवा, ऐसी ढोठ कोऊ नाँहिन या जगरी ॥

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

2. पूर्वोक्त से ।

मान-मनावन

राजनीति में केवल साम, दाम, दंड और भेद, चार प्रकार ही व्यक्ति को ठीक करने के लिए कहे गए हैं। काव्य-शास्त्र में नायक द्वारा नायिका के मान भंग करने के सात साधन बतलाए गए हैं—साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा, प्रसन्न विध्वंस और दंड।

तानसेन ने संगीत-शास्त्र में इसका प्रयोग किया है और नायिका को अपने प्रिय को मनाने की रीति समझाई है—

(रागिनी पूर्वी, तिताला)

है यह मानिनी मनायवे कौं श्रुति ही हुलास जिय,
मन हू न मानै, पिय कैसे कै मनाइयै ।
बहुत ही सौह दई उठि चल फिर प्यारी,
वाके पाँय पर धरि सीस नवाइयै ॥
माने न मनाई नैंक, मैं पचिहारी,
कैसे कर वाकों समुभाइयै ।
'तानसेन' प्रभु प्यारे आप नैंक चलयै,
चलि पाँयन में सिर नाय बिनती कराइयै ॥

तानसेन का एक और पद नायिका के नायक को मनाने का दिया जा रहा है। इसमें कहा गया है—हे गँवार नारी उठ कर चल, मैंने तुझे बहुत समझा लिया, मेरा कहा नहीं मानेगी तो फिर पीछे पछताएगी—

(रागिनी खंवावती, चौताला)

जोबन के जोर तोर कैसें समभाय राखूं,
मेरौ कह्यौ मान प्यारी, आज तेरौ दाव री ।
तन-मन-धन नौंछावर करिहौं,
बीत गई रैन, तासौं छूटि गयौ चाव री ॥
लाल मनावत, तू नहीं मानत,
उठ री गँवार नारि, घने समभाव री ।
'तानसेन' कहै प्रभु सैं तजौ मान,
हाथ सौं गँवाय लाल, फिर पछिताव री ॥

शरण-लालसा

कृष्ण के दर्शन की प्रबल इच्छा ने सब-कुछ छोड़ा दिया, गोपी ऐसी मोहित हो गई है कि उसे न दिन में चैन मिलता है, न रात को। उसे जप-तप-नियम,

कुछ नहीं आता; अब वह कोटि यत्न कर हार गई, अब तो तुम्हारी शरण से ही सब-कुछ मिल सकेगा; कृपा कर अपने दर्शन दीजिए—

(रागिनी जैतश्री, चीताला)

मेरौ मन मोहि लीनौ सुंदर-नैन,
रैन चैन परत नाहीं बनवारी ।
मेरें तौ एक ध्यान तुम्हारौ, तुम्हारी गति,
तुमही जानौ, अविगत गति गिरधारी ॥
जप-तप-नैम कछू नहि जानूँ, नागर नंद-किसोर,
अब तौ कोटिन जतन कर हारी ।
प्राण-प्यारे दरस दीजै, सुख-संपत्ति-आनंद कीजै,
'तानसेन' सरन तेरी, एहो कुंज-विहारी ॥

मिलन की लालसा

अँधेरी रात है, विजली चमक रही है, ब्रज की गोपिकाएँ मदमाती हो रही हैं, वे यह भी नहीं समझती कि कब रात हुई और कब सबेरा हुआ, वृन्दावन की कुंज-गलियों में मदन जाग उठा है; ऐसे समय में नंद-किशोर से मिलने के लिए किसका मन व्याकुल नहीं होगा ? इस पद में 'हेली', 'आली' का सुंदर विकल्प है ।

(राग सगेठ, तिताला)

हेली, चली देखौ री चित-चोर ।
रैन अँधेरी कारी, बिजुरी चमकत, मोर करत अति सोर ।
ब्रज गोपिका सब सुख मदमाँती, कित रजनी कित भोर ॥
वृन्दावन की कुंज-गलिन में, मदन जग्यौ चहुँ ओर ।
नंद महर कौ ढीठ साँवरौ, हम सौं भयो कठोर ॥
मन व्याकुल बिन दरस स्याम के, चंचल चितवन जोर ।
'तानसेन' कौ दरसन दीजै, श्री बाल-नंदकिसोर ॥

दर्शन-लालसा

कृष्ण के दर्शन की लालसा गोपियों में प्रबल है । गोपियाँ कृष्ण से अनजानी बन जाती हैं, पहचानती नहीं हैं । उन्हें यह नहीं ज्ञात है कि वे कहाँ से आए हैं और कहाँ जाएँगे, फिर भी वे कहती हैं कि थोड़ी देर रुके रहो, हम सब सखियाँ मिल कर तुम्हारे दर्शन करेंगी¹—

(रागिनी देशी टोड़ी)

कहौ जी तुम कौन हो, कहाँ तैं आये,
कहाँ कित हो जाओगे सबेरे ।

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

हम तुमको पहिचानत नाहीं, न मेरे घर आवत दरे रे ॥
 लाल पाग पीतांबर सोहत, और बनमाल गरे रे ।
 'तानसेन' के प्रभु नेंक जो ठाड़े रहौ, सब सखियन मिलि हेरे ॥

वेणु-वादन

भागवत पुराण में कृष्ण की वेणु का बड़ा महत्व बतलाया गया है, 'वेणु-गीत' नामक एक अंश अत्यंत मनोहारी है । कृष्ण-भक्त गायकों ने कृष्ण की मुरली पर अनेक पद लिखे हैं । तानसेन ने भी कृष्ण-भक्ति-विषयक जितने पद लिखे हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या कृष्ण की मुरली के विषय में है ।

मुरली की ताल पर नृत्य करते हुए कृष्ण का सुंदर अंकन किया गया है—
 (रागिनी पूर्वी, चौताला)

मुरली बजावौ रिभावौ मनमोहन, मधुर-मधुर सुर तान ।

सप्त तीन इकईस बाइसौ, लाग-डाट और मान ॥
 ठाट भेद विलंबित आतक-खातक स्वरांतक औंड़व-षाड़व पूरन आन ।
 'तानसेन' प्रभु संगीत गत लै, नृतत करि लास्य-गान ॥

यहाँ भी तानसेन ध्रुपद के गायन के पारिभाषिक शब्द देना भूले नहीं हैं । यह 'ठाट' गायन-पद्धति परवर्ती प्रभाव है ।

मुरली-वादक कृष्ण सब स्थानों पर घूम मचाते हैं और सबको रिझाते हैं । यहाँ वे बहुनायक अनेक नायिकाओं से प्रेम करने-वाले दिखाए गए हैं—
 (राग भैरव, चौताला)

मुरली बजावै, आपुन गावै, नैन न्यारे नँचावै,

यह सबही तियन के मन कौं रिभावै ।
 दुरि-दुरि आवै पनघट, काहू के घटन दुरावै, रसना प्रेम जनावै ॥
 मोहिनी मूरति साँवरी सूरति, देखत ही मन ललचावै ।

'तानसेन' के प्रभु तुम बहुनायक, सबहिन के मन भावै ॥

यह 'बहुनायक' शब्द कृष्ण के लिए तानसेन ने अनेक बार प्रयोग किया है । वे श्रृंगारित गोपियों के प्रिय थे ।

मुरली की ध्वनि का प्रभाव तीनों लोकों में व्याप्त हुआ था—

(रागिनी मुलतानी धनाञ्जी, चौताला)

आज कान्हू बृंदावन मुरली बजाई सुखदाई है ।

स्वर्ग लोक नर लोक पताल लोक, सब सुन सुध बिसराई है ॥

सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्छना बाईस सुरति

उनचास कूट तान रंघन मैं छाई है ।

‘तानसेन’ के प्रभु रस-वस कर लीने

ब्रज-बधू घर छोड़ स्याम जू पै आई है ॥

यहाँ तानसेन सातों स्वर, तीनों ग्राम, इक्कीस मूर्छना, बाईस श्रुतियों और उनंचास कूट तानों का प्रयोग करना नहीं भूले ।

कृष्ण के मुरली-वादन के प्रभाव से ब्रह्मा, शिव, देवांगनाएँ, सुर, नर, मुनि, सभी सुध-बुध खो देते हैं—

(राग भैरव, चौताला)

एरी आज वाँसरी बजाई वन मध्य

कौन ढंग कौन रंग फूँकि-फूँकि ।

सुनत सवन सुधि रही नहीं तन की,

भई हौं बावरी, वृन्दावन दिसि हेरि भुकि-भुकि ॥

ब्रह्मा वेद पढ़त भूले, शिव समाध माँहि डोले

सुर-नर-मुनि मोहे देवांगना देखें लुकि-लुकि ।

सप्त स्वर तीन ग्राम इकईस मूर्छना लै,

‘तानसेन’ प्रभु मुरली बजावत

बोलत मोर-कोकिला कुहुकि-कुहुकि ॥

न-जाने कैसे, उनंचास कूट तान तानसेन भूल गए । फूँकि-फूँकि, झुकि-झुकि, लुकि-लुकि, कुहुकि-कुहुकि तुकों में त्रुटि आ गई है, तथापि उनका ध्वनि-साम्य सुंदर है ।

तानसेन के मुरली-महिमा के सब पद यहाँ देना अनावश्यक है । नमूने के लिए ये पर्याप्त हैं ।

संयोग

संयोग के माध्यम से कृष्ण और गोपियों का शृंगार-वर्णन अनेक गायक-कवियों ने किया है । तानसेन ने भी इस दिशा में अपनी निपुणता प्रस्तुत की है—

(राग भैरव, तिताला)

कान्हा तैं अब घर भगरी पसारौ, कैसें होय निरवारौ ।

यह सब घेरौ करत हैं तेरौ, रस अनरस कौन मंत्र पढ़ि डारौ ॥

मुरली बजाय कीन्हीं सब बीरीं,

लाज दई तजि अपने-अपने में बिसारौ ।

‘तानसेन’ के प्रभु कहत तुमहि सौं तुम जीते हम हारौ ॥

अंत में गोपियों को ही हार माननी पड़ी ।

अब एक मान-मनुहार का पद भी—

(राग भैरव, चौताला)

जिन करौ मोसैं झूठी-झूठी बतियाँ,

तिहारी प्रतीत मोहिं नैंक नाहि आवत ।

वे तौ लंगर कान्ह, नहीं छाड़ै अपनी बान,

वह सौतिन के घर जावत ॥

मेरे परतच्छ आय लाखन सौंहें खावत, मनावत,

पग परसि-परसि निज चूक छिमा करावत ।

बार-बार कौ रिसावन-मनावन, 'तानसेन' ए नाहीं जु सुहावत ॥

इसी प्रकार नायिका (गोपी) को सखी द्वारा मनाने के विषय का एक पद

है—

(रागिनी पूर्वी, चौताला)

अरी या तन कौ मति कर मान

मन में नहीं चाहै, मनावन करत हौ मान ।

मानौ मेरी मति मोहिनी मानिनी,

मो मति मनौ में मान, मति करौ मोहन सौं मान ॥

मुरि-मुरि चितवत मन ही मनभावन कौं

माघौ मुकुंद वे हैं, मथुरापति मुरारि नंद-दान ।

मान री मान, मैंका सी माधुरता,

'तानसेन' प्रभु मनमोहन की मान ॥

संयोग में रूप-माधुरी का वर्णन भी देखने योग्य है—

(राग विहाग, रूपक)

नैन सलौने री तेरे, नैनन ही हरि बस कियो, हरि बस कियो ।

दीरघ जमाल विमल विलोल कटाछन भर रहे,

तापर कजरा दियो ॥

भौंहे धनुष और चंद सौ बदन और कंचन सौ तन,

तेरौ कमल-कली सौ उठौ हियौ ।

तानसेन प्रभु जान बूझ कर, बोलिबे को नैम लियौ ॥

मदन-मूर्ति कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन भी बहुत सुंदर हुआ है—

(रागिनी आसावरी, चौताला)

नील वरन फहरि दुकुल रही घटा सी,
 कामिनि दामिनि, लगत माधौ रैन ।
 जाको पचरंग किनारी सोई मेरे जान धनक भई,
 बूंद सम-जल कीं और बोलत कोक-कला बैन ॥
 पुहपन के हार छूटे, रमि रहे सोई बक-पाँति,
 ऐसी लागी मेरे नैन-सैन ।
 यह छवि देख रीझे 'तानसेन' के प्रभु,
 ऐसी लागत मानों मूरत मैं ॥

अंत में तानसेन का यह पद उद्धृत करना उपयुक्त है, जिसमें गोपी कृष्ण को मृष्टि का कर्ता मान कर उनकी स्तुति करती है—

(राग भंरव, चौताला)

मोहन सृष्टि के आधार, जन कौं अब राखि लीजै गोपाल ।
 नैन-प्राण सुख दीजै, तन तैं दुख दूर कीजै,
 इतनी बिनती मेरी सुन लीजियै हाल ॥

पतित-पावन करना-सिंधु दीन दुख-भंजन,
 अनेक रूप लीलाधारी, भक्त-बछल, जुग-जुग भये कृपाल ।
 मदनमोहन, मधुसूदन, मुरारी, गज-सुदामा-द्रौपदी सहायकारी
 'तानसेन' प्रभु भक्त-प्रतिपाल ॥

गोपियों की कृष्ण-दर्शन की लालसा को अंकित करते हुए तानसेन ने गाया—
 (रागिनी मुलतानी धनाश्री, चौताला)

चल्यौ नहीं जात, अंग भीजे जात प्रसेद माँझ,
 पुलकित गात, जानी-समझी न बात है ।
 पिया बिन जात जरौ अंग, तन थहरात सब,
 आन कौ रंग कछु आन भयौ जात है ॥
 आँसू चले जात, प्यारी छीन सी दिखात,
 एरी तेरी दसा देखि मेरौ हियौ हहरात है ।
 नेक निहारें मनमोहन कौ रूप आली
 'तानसेन' प्रभु रोम-रोम हरसात है ॥

जब कृष्ण थोड़ी देर के लिए भी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं, तब गोपियाँ व्याकुल हो जाती हैं । इसका सुंदर वर्णन किया गया है—

(रागिनी टोड़ी, चौताल्ला)

तैं कहूँ देख्यौ री बनमाली आली,

बंसी बजाय मन लै गयौ ।

धुनि सुनि कल न परत निसि-दिन उन दिन

नैन तरसत बिन देखैं, टोना सौ जंत्र-मंत्र कछु करि गयौ ॥

जब नहि देखत छिन न सुहावत, भावत नहि गेह,

मेरे नयनन में अटक गयौ ।

‘तानसेन’ नैनन की मूरत कोटि बारि डारौं,

साँवरी सूरत जिय बसि गयौ ॥

कुछ अटपटे रूप में यही भाव अन्य पद में भी है—

(रागिनी टोड़ी, चौताल्ला)

तैं कहूँ देखौ री आली, नंद-नंदन कुंअर कान्ह,

मटुकी भटक कैं पटक गयौ री ।

माखन-चोर चोरि लीन्हौं चित, कीन्हौं नैकहु न डर,

नट ज्यों उलटि कैं पलटि गयौ री ॥

माराग रोकि रहत खोरन में, नैन-सैन दै सटक गयौ री ।

‘तानसेन’ के प्रभु तुम बहुनायक, रस-गोरस लै गटक गयौ री ॥

यहाँ भी तानसेन के कृष्ण बहुनायक हैं । ‘पटक गयौ’, ‘पलटि गयौ’, ‘सटक गयौ’ तथा ‘गटक गयौ’ की तुकों का ध्वनि-साम्य सुंदर है ।

यदि जाग्रत अवस्था में नहीं तब स्वप्न में ही दर्शन हों, तानसेन ने यह भी कामना व्यक्त की है—

(राग गंधार, तिताल्ला)

मोहि जागत भएँ चैन न रहै नैनन, तामैं तैं सपने में कहा समाइयै ।

‘तानसेन’ प्रभु समझ कीजै कैसें भोग-विलास, कठिन सुधि-बुधि,

लै री पुनि अमृत भेंट, सोना दै रतन जड़ाइयै ॥

इस पद में संचारी तथा आभोग अर्थात्, तीसरे तथा चौथे चरणों में नहीं है ।

इसी भाव का एक पद और है—

(राग गंधार, ताल रूपक)

कठिन माई पिय कौ री नेहरा, गेहरा नहीं भावै, रहौं नित उदास ।

अब नाँ सँमात मेरे जान आली, अरध-ऊरध दोऊ साँस ॥

मोहि जागत-रैन चैन नहीं नैनन, तातैं सपने हूँ मैं कहा,

सो रही सपनें नहीं आस ।

‘तानसेन’ प्रभु समझि-समझि कियौ भोग-विलास ॥

मदन-महोत्सव

भारत में मदन-महोत्सव अत्यंत प्राचीन काल से मनाया जाता था । इन उत्सवों में युवक और युवतियाँ एकत्र हो कर नाना प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन करते थे और झूला झूलने जैसी अनेक आकर्षक क्रीड़ाएँ करते थे ।

तानसेन ने ब्रज के मदन-महोत्सव का वर्णन करते हुए एक सुंदर पद लिखा है जिसमें गोपियाँ मदन-गोपाल की तिरछी चितवन से सम्मोहित होती हैं—

(रागिनी मुलतानी धनाश्री, तिताला)

घर-घर तैं ब्रज वनिता जो वन निकसीं आज,

कंचन-थार भरि-भरि नग नौछावर करन लाल की ।

सप्त सुर लै गावत, कंठ कोकिला लाजत,

उपजत अति रसाल गमक तान-ताल की ॥

मदन-महोत्सव साज समाज गोपी वृंद,

मिलि चलत चाल मराल की ।

‘तानसेन’ प्रभु रस-वस कर लीने,

तिरछी चितवन मदनगुपाल की ॥

ब्रज की होली

तानसेन को भी ब्रज की होली में फगुआ देना पड़ा । ‘छिरकी-छिरकी’, ‘थिरकी-थिरकी’, ढिरकी-ढिरकी’ तथा ‘हिरकी-हिरकी’ शब्द-योजनाएँ और तुकें सुंदर हैं—

(रागिनी सिद्धरा, परज)

ओढैं सारी प्यारी, केसर के रंग छिरकी-छिरकी ।

चितवन में बस कीन्हों मोहन, यातैं फिरत थिरकी-थिरकी ॥

अबीर-गुलाल लिएँ भरि भोरी,

रंग की कमोरी सिर ढिरकी-ढिरकी ।

‘तानसेन’ सौं फगुवा लीन्हौ, यातैं डोलत हिरकी-हिरकी ॥

एक अन्य पद में तानसेन ने गोपियों को ताली दे-दे कर होली पर नचाया है¹—

(रागिनी मुलतानी, धमार)

ग्वालिनि घूँघटवारी खेलन जौ आवैं ।

और दिना होरी के गोरी अब किन लाज भँजावैं ।

हमही पैं तैं लै गुलाल अरु हमारे मुखहि लगावैं ॥

सकरी खोरि लजीली ग्वालिनि मुरि-मुरि वदन छिपावैं ।

‘तानसेन’ प्रभु रंग-रँगिले तारी दै-दै नचावैं ॥

1. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से ।

गोवर्धन-लीला

तानसेन के एक पद में गोवर्धन-धारण-लीला का वर्णन मिलता है। इस पद में वर्षा का बहुत सजीव वर्णन किया गया है—कृष्ण के समक्ष इन्द्र ने सिर नवा दिया है—

(राग मेघ, झपताल)

प्रबल दल साजे झुक भूम या भूम पर,
उमड़ि घनघोर भर इंद्र लै आयौ रे ।
बरसत मूसल धार, होत पहर चार,
कृष्ण गिरिधर गोकुल वचायौ रे ॥
बूंदन तैं धरनीधर सबन की रक्षा कर,
पसु-पंछी जीव-जंतु अति सुख पायौ रे ।
कहै मियाँ 'तानसेन' तेरी गति अव्यक्त,
सुरपति अधीन होय सीस नवायौ रे ॥

संगीतज्ञ कृष्ण

तानसेन गायक पहले थे, कवि बाद को। अपने मोहन को वे संगीत द्वारा ही रिश्ताते दिखाई देते हैं—

(राग सोरठ, तिताल)

सुंदर छवि छाजत राजत मोहन, कहा कहौ रूप की निकाई,
मोसौं बरजौ न जाई, आली ऐसौ श्याम कन्हौई ।
सवन कुंडल मकराकृत, कटि पीत बसन, हाथ लकुटिया,
मुख मुरली, मधुर धुनि गावत सुहाई ॥
सप्त सुर और तीन ग्राम लै बाईस सुरति,
उनचास कूट तान लाग-डाट सकल छाई ।

औढ़व-षाड़व संपूरन आतक-खातक स्वरांतक,
बादी बिवादी संत्रादी अनुवादी 'तानसेन' लै रिझाई ॥

इस पद में तानसेन ने संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रवेश किया है, परंतु यह उस महान् गायक की विवशता है।

महावट वर्षा

माघ मास की वर्षा को महावट कहते हैं। ऐसी वर्षा होने पर क्षण-क्षण वियोग की पीड़ा बढ़ती है। एक-एक घड़ी, पल तथा क्षण युग के समान बीतता है। जब से प्यारे कृष्ण अलग हो गए तब से कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब तो आकर दर्शन दो, तब तक हृदय धीर नहीं रख सकता¹—

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से।

(रागिनी महीअरी टोड़ी, झपताला)
माई-री माहावट कठिन मिलि बिछुरे की है पीर ।

घरी-घरी पल-छिन जुग से वीतन लागे,

नैननि भरि-भरि आवत नीर ॥

जब तें प्यारौ भयौ न्यारौ तब सैं कछु न सुहात मेरी वीर ।

‘तानसेन’ को प्रभु बेगि दरस दीजै, होयरा धरत न धीर ॥

गौओं का कृष्ण-प्रेम

कृष्ण के विरह में ब्रज की गौएँ भी दुबली हो रही हैं । अन्य ग्वालों को तो वे पहचानती ही नहीं हैं । वे कृष्ण को शीघ्र आने के लिए आर्त पुकार कर रही हैं¹—

(राग जैत, चपक ताल)
कान तेरे बिन देखें गईयाँ काजरी-पीअरी धौरी-धूमरी दूबरी ।
और ग्वाल पैहँचानत नाहीं,

अधरनि दसनि तिरन चरत जह पाय लियौ है कूवरी ॥

एकनि तजे बान, एकनि तजे प्राँन, एक रही सूखि सूखरी ।

‘तानसेन’ को प्रभु बेगि आवन कीजै, कब दैहौ हेरी ऊबरी ॥

शबरी

तानसेन शबरी को भी नहीं भूले, तथापि उसे कृष्ण के रंग में रंग दिया । कंधे पर कामरी रखे, हाथ में लकुटी लिए चलने-वाले कान्हा के हृदय में दया-मया कहाँ से आई ? उसने तो शबरी के जूठे बेर खा कर अपना धर्म ही बिगाड़ लिया, उसे लाज-शर्म कहाँ रही ? हे गँवार ग्वालिन, तू उसका मर्म कैसे समझेगी—

(रागिनी गुजरी, चीताला)
एरी गँवारि ग्वारि, तू कहा जाने री गोपन कौ मरम ।

काँधें कामरी और हाथ लकुटि लिएँ,

ताकौ जिय कहा होत नरम ॥

कटि सोहै पीत बसन, बिडारौ फिरत,

याही तैं जान्यौ जात याकौ धरम ।

‘तानसेन’ कहै सबरी कौ जूठौ खायौ,

ताके जिय कहा होत सरम ॥

उद्धव-संदेश

महाकवि सूरदास ने उद्धव-संदेश के विषय में अनेक सुंदर पद लिखे हैं जिनमें भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है । इस विषय में तानसेन का दुर्भाग्य से एक ही पद मिला है तथापि वह बहुत सुंदर है । उसमें कृष्ण द्वारा भोजी

1. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से ।

गई चिट्ठी को पढ़वाने के लिए गोपियाँ यशोदा के आँगन में इकट्ठी होती हैं और भाव-विह्वल होने के कारण उसे स्वयं नहीं पढ़ पातीं—

(रागिनी गुजरी, चीताला)

चलौ जाय पूछियै हरि के समाचार,
जसोदा के आँगन कछु एक लगी है री भीर ।
पिया तैं पाती आई, बाँची हू न परै,
उनकों कहा हमारी पीर ॥
आवन कहि गये अवधि हू बीती,
अब कैसें जिय धरियै धीर ।
'तानसेन' प्रभु मधुवन कौं बिरमि रहे,
कब धौं मिलिहैं जे हरे हैं चीर ॥

कृष्ण से विदा-याचना

कृष्ण-भक्ति-विषयक तानसेन के अन्य पदों को देना संभव नहीं है। इस प्रसंग को तानसेन का एक उत्कृष्ट पद दे कर समाप्त किया जा रहा है। इसमें तानसेन की कृष्ण-प्रेमिका ने कहा है कि अपनी बाँसुरी सुना कर मुझे विदा करो, इस बाँसुरी से जितने स्वर निस्तृत हुए, उन्होंने मेरे रोम-रोम को वेध दिया है, मेरे अंग-अंग चीर कर मेरी माँग में सौभाग्य-सिंदूर भरिए, यह याचना कर तानसेन ने कृष्ण-कृपा की अभिलाषा की अगाध श्रद्धा-युक्त अभिव्यक्ति की है। संचारी और आभोग में सूफी मत का किंचित प्रभाव परिलक्षित होता है। अंगों की चीर-फाड़ किसी भारतीय निर्गुण या सगुण साधना-पद्धति का अंग नहीं है—

(रागिनी मुलतानी धनाश्री, चीताला)

दीजियै जू हमैं ब्रज बसिवौ, बाँसुरी न वसै,
बाँसुरी बजाय कान्हू हमैं विदा दीजियै ।
बाँसुरी की टेर सुनत रह्यौ नाँ परत मोपै,
कान सुनि-सुनि बन बसेरौ कीजियै ॥
जेते उन सुर गाये, तेते हम भेद लीने,
जहाँ राग तहाँ दाग, रोम-रोम छीजियै ।
'तानसेन' के प्रभु दया कीजै मो पर,
अंग-अंग चीर-चीर सिंदूर माँग दीजियै ॥

5. सूर्योपासक तानसेन

सम्राट अकबर ने सूर्य-सहस्रनाम जैन विद्वान भानुचन्द्र से सुन कर कंठस्थ किया था। तानसेन को इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे स्वयं संस्कृत के ज्ञाता थे,

अतएव उन्होंने सूर्य-सहस्रनाम स्वयं पढ़ा होगा । तानसेन के उपलब्ध पदों से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने सूर्य के नाम और गुणों के विषय में बहुत अधिक पढ़ा-लिखा था ।

सूर्य ही जगत का प्रसविता है । प्रसव-धर्म के कारण ही सूर्य का नाम 'सविता' है । सबकी स्तुति के पात्र हैं, इस कारण वे 'रवि' के नाम से विख्यात हैं । भानु (प्रकाशक) सर्व-व्यापक (सूर्य) हैं तथा रात्रि का अंधकार दूर कर दिन का प्रकाश फैलाने वाले 'दिवाकर' हैं ।

तानसेन ने सूर्य के विषय में अकबर के संदर्भ जो पद लिखे हैं, वे पहले दे दिए गए हैं, उनमें सूर्य के अनेक नाम आए हैं । यहाँ तानसेन के सूर्य की उपासना में लिखे गए दो पद देना ही पर्याप्त है । पहला पद इस प्रकार है—

(राग भैरव, चीताला)

जै सूर्य जगच्चक्षु जगबंदन जगन्नाता जगत्कर्ता जगन्नाथ ।

आदित्य सविता अर्क खग पूषा

गभस्तिमान् भानु दिवाकर, जग-कारज होयें तेरे हाथ ॥

ज्ञान-ध्यान जप-तप तीरथ-व्रत

संयम-नैम धर्म-कर्म सब उदय होयें सनाथ ।

'तानसेन' पै प्रभु कृपा कीजिये,

राग-रंग-स्वरन सौं निस-दिन गाऊँ तेरी गाथ ॥

एक अन्य पद में भी सूर्य के अनेक नाम दिए हैं—

(राग भैरव, चीताला)

प्रभाकर भास्कर दिनकर दिवाकर भानु प्रगटे विहान ।

तेरे उदै तैं पाप-ताप छूटैं,

धर्म-कर्म नैम-प्रेम होयें गुरु ज्ञान औ ध्यान ॥

जगमगात जगत पर जगच्चक्षु,

जोति-रूप कश्यपसुत जगत के प्रान ।

तेरे उदै तैं जगत-कपाट खुलत,

'तानसेन' कौं दीजिये विद्या कृपा निधान ॥

इन दोनों पदों की विशेषता यह है कि तानसेन ने सूर्य-भगवान से विद्या तथा राग-रंग और स्वर की याचना की है ।

निश्चय ही इन पदों में सूर्य के सहस्र नाम नहीं हैं । परंतु हमारा यह सुदृढ़ विश्वास है कि जब तानसेन के समस्त पद प्राप्त हो जाएँगे तब इन नामों की संख्या बहुत अधिक हो जाएगी ।

—सत्ताईस— प्रकृति-वर्णन

प्रकृति के 'पल-पल परिवर्तित वेष' मानव हृदय को सदा से आकर्षित करते रहे हैं। वर्ष की विभिन्न ऋतुओं तथा उसके प्रत्येक मास में धरित्री के नाना-रूप; रात्रि में नक्षत्रों, तारिकाओं तथा चंद्र की जगमगाहट; आकाश-गंगा का विराट-विस्तार; तथा प्रत्येक दिन के विभिन्न प्रहरों में प्रकाश की क्रीड़ाओं से मानव सम्मोहित होता रहा है। समुद्र की उत्ताल तरंगें तटों की चट्टानों से टकरा कर गंभीर गर्जन करती हैं तथा फेनिल ऊर्मियों को प्रवाहित करती हैं, तब मानव को वरुण-देव के विराट स्वरूप के दर्शन होते हैं। कभी घनघोर वर्षा मानव को आह्लाद से परिपूरित करती है, कभी उसका उग्रतर स्वरूप मानव को आतंकित करता है। सरिताओं का तीव्र गति से सागर में समाहित हो जाने की आकांक्षा से आतुर प्रवाह, अलौकिक प्रेम और विसर्जन की भावना का दर्शन कराता है। प्रकृति के ये नाना-रूप आनंददायक भी होते हैं और भयावह भी।

काव्य में विशेषतः हिंदी कवियों ने प्रकृति का उपयोग अपनी रचनाओं में दो प्रकार से किया है। एक वर्ग में वे प्रकृति-वर्णन आते हैं जिनमें प्रकृति का आलंबन के रूप में स्वतंत्र वर्णन प्राप्त होता है। दूसरे वर्ग में ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें प्रकृति का उपयोग उद्दीपन के रूप में तथा सौंदर्य के उपमानों के लिए किया जाता है। उनमें नेत्र खंजन पक्षी के समान चंचल ज्ञात होते हैं, वेणी नाग बन जाती है, नासिका शुक की नासिका जैसी दिखाई देती है, कटि सिंह की कटि जैसी दिखाई देती है, आदि-आदि।

तानसेन दोनों प्रकार के प्रकृति-वर्णनों में सिद्धहस्त हैं। यहाँ तानसेन द्वारा प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन के पद प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, क्योंकि वे पद तानसेन को हिंदी-काव्य के उँगलियों पर गिने जाने योग्य स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन करने-वाले कवियों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित करते हैं।

1. उषा

ज्ञात होता है, किसी दिन अरुणोदय के पूर्व ही तानसेन तानपूरा लेकर किसी पर्वत के शिखर पर पहुँच गए। उन्हें सुदूर प्राची में अरुणिमा की झलक दिखाई दी और उनके तानपूरे के साथ गायन में दिव्य संगीत की मंजुल लहरियों ने उषा देवी का स्वागत किया¹—

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 158।

(राग ललित भैरव, चौताला)

हेम किरीटिनी उषा देवि कनक-वरनी सविता-गेहिनी,
उदित मधुर हास जग हसायौ ।

सिंधु-वारि उदित भानु, विमल सोह जैसे मानौ,
दिशा-नागरी कनक-गागरी

पानी भरि-भरि मंगल असनान करायौ ॥

विहग मधुर ललित तान गावै, भुवन नवजीवन,

आनंद-मगन सब जग-जन मंगल गीत गायौ ।

आई उषा कमल-नेत्री, गायत्री, जगघात्री, लैकैं जाकी

अरुन किरन मज्जन 'तानसेन' मानस तामस दूर कीयौ ॥

इस पद का आशय स्पष्ट है, तथापि उसका अन्वय करने का लोभ संवरण करना असंभव है—स्वर्ण का मुकुट धारण कर कनकवर्णी उषा उदित हुई । उसने समस्त जगत को अपने मधुर हास्य से उद्भासित कर दिया । सिंधु के जल से उदित होता हुआ भानु दिखाई दे रहा है, मानो (प्राची) दिशा-रूपी नागरी सोने की गागरी में जल भर-भर कर समस्त जगत को मंगल स्नान करा रही है ।

समस्त जग को मंगल-स्नान कराते समय पक्षी भी मधुर-ललित गान गाने लगे ।

वह देखो, उषा देवी आ रही हैं, जिनके नेत्र अरुण पंकज के समान हैं, जो गायत्री (संगीतमयी) हैं ।

उनकी अरुण किरणों से मज्जन कर तानसेन ने अपने हृदय के अंधकार को दूर कर लिया ।

दिशा-रूपी नागरी द्वारा सोने की गागरी में जल भर-कर मंगल स्नान कराने का रूपक महाकवि जयशंकर प्रसाद के एक गीत का स्मरण कराती है—

बीती विभावरी जाग री !

अंबर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा नागरी ।

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,

किसलय का अंचल डोल रहा,

लो यह लतिका की भर लाई—

मधु मुकुल नवल रस-गागरी ।

अधरों में राग अमंद पिए,

अलकों में मलयज बंद किए,

तू अब तक सोई है आली !

आँखों में भरे विहाग री ॥

प्रसाद जी का उषा नागरी का वर्णन उत्कृष्ट है तथापि तानसेन का रूपक भी प्रसाद जी के रूपक से किसी प्रकार श्रेष्ठतर नहीं तो न्यून भी नहीं है। 'खग-कुल कुल-कुल' प्रयोग के स्थान पर तानसेन ने 'विहाग मधुर तान गावै' लिखा है।

प्रसाद जी ने उषा को ही मानवी-नागरी के रूप में देखा और उसके द्वारा अंबर-रूपी पनघट पर तारों को डुवाने के दृश्य को अंकित किया है, जो परिणामहीन क्रिया है। तानसेन की उषा देवी प्राची दिशा को प्रेरित करती है कि वह सोने की गागर में जल भर-भर कर जगत को मंगल-स्नान कराए। निश्चय ही तानसेन की परिकल्पना अत्यंत प्रशस्त और मंगलकारी है। केवल इसी पद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के चित्तेरे के रूप में तानसेन मूर्धन्य स्थान पाने के अधिकारी हैं।

इस पद के विषय में सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने लिखा है कि तानसेन के उषा-वर्णन को पढ़ कर वैदिक उषा-विषयक ऋचाओं का आभास होता है।¹

2. सूर्योदय

तानसेन इस उषा-स्वागत गान को पूरा भी न कर पाए थे कि गगन-मंडल में उन्हें सूर्यदेव के दर्शन हुए और उन्होंने गाया²—

(रागिनी ललित, चैताला)

गगन-मंडल-मध्य उदयाचल पर अष्टवाजि

कनक-रथ में, अरुण सारथि होत,

प्रिया उषा अरुन-बरन रंगी, वसन पहिरि भानु उदत ।

गगनांगन अंधकार दूर कियौ, किरन मज्जन कियौ,

उल्लास प्रकृति हँसत अमिय, विचित्र भूषन मोहन साजत ॥

कानन कुंडल नीहार-बूँदन जड़ित मुक्ता-माल ।

मानौ सिंधु निचोल, अचल मेखला नितंब धरती विशाल ॥

बालार्क सिंदूर-बिंदु भाल, ग्रह उर सप्त ऋषि मंडल सोहत ।

प्रकृति सोभा निहारि 'तानसेन' प्रान तारत ॥

यह पद बांग्ला लिपि में मिला है। इस पर बांग्ला भाषा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। उसमें यहाँ कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। 'अंधार दुरिया' के स्थान पर 'दूर कियौ' कर दिया गया है। इन पदों के विषय में स्वयं सुनीति बाबू ने लिखा है—“बंगाली अक्षरों में मुद्रित अथवा गायकों के कंठ में रक्षित पाठ

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 158 ।

2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 159 ।

विकृत हो गए हैं, उन पदों की भाषा शुद्ध लिखने का प्रयास किया गया है। भूल-चूकों को विशेषज्ञ पाठकगण संशोधित कर लें।”

इस पद में तानसेन को गगन-मंडल में उदयाचल (प्राची) से आठ घोड़ों से युक्त कनक रथ में अरुण सारथी तथा साथ ही उसकी प्रिया उषा, जिसका मुख लालिमा-युक्त है और वैसे ही उसके वस्त्र हैं, उसके साथ भानु उदित दिखाई दिए। तानसेन ने भानु की प्रिया उषा को मानो स्वागत के लिए पहले भेज दिया, और सूर्य ने उसे फिर पकड़ लिया, और फिर उसे पीछे छोड़ कर आगे चल दिया।

फिर प्रारंभ होता है प्रकृति देवी का उदात्त तथा अद्वितीय रूप-वर्णन।

गगन-रूपी प्रांगण का अंधकार सूर्य ने दूर कर दिया और उसका अपनी किरणों से मज्जन करा दिया। उल्लास से प्रकृति हँसने लगी। उसने अपने-आपको विविध आभूषणों से सजा लिया। कानों में कोहरा अर्थात् ओस की बूंदों के कुंडल पहन रखे हैं जो मोतियों से जड़ी माला-सी दिखाई देती है, सिंधु मानो उसका आवरण है और उसने विशाल नितंबों-वाली धरती को पर्वतों की मेखला पहना दी है, बाल सूर्य के रूप में वह अपने माथे पर सिंदूरी टीका लगाए हुए है, उसके उर पर सप्तर्षि मंडल की बड़ी माला शोभा दे रही है।

प्रकृति की ऐसी शोभा देख कर तानसेन ‘मतावृत’ हो गए। शुद्ध पाठ ‘तारत’ है।¹ प्रकृति की इतनी भव्य शोभा देख कर तानसेन के प्राण अपने आपको धन्य समझने लगे।

प्रकृति देवी के इतने भव्य वर्णन की समता करने-वाले किसी हिंदी कवि की हमारी खोज बहुत फलदायी नहीं हुई।

3. सूर्यास्त

तानसेन ने किसी संध्या पर आकाश की ओर सूर्य—सवितादेव को अस्ताचल की ओर जाते देखा और उस दृश्य का वर्णन करते हुए गाया²—

(रागिनी सागरी, चौताला)

जगत-जीवन सवितादेव अस्ताचल में जात,

अंधियार जगत मोहित होके मोह माया में सुपत।

पसू-पंछी कलरव कर जात सब अपने भवन भये रहन गुप्त ॥

प्रकृति स्तब्ध मुग्ध, मोह-जाल नर-नारी जीव-जंतु अचेतन होत,

आवत नींद सरन।

‘तानसेन’ प्रभु कृपानिधान जगत-कारन,

अज्ञान-तन सौ जात लुप्त ॥

1. चट्टोपाध्याय के हिंदी निबंध में ‘तारत’ ही है।

2. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, कविवर तानसेन, सम्मेलन पत्रिका, सं० 2003।

संध्या होते ही संसार माया से विमोहित हो कर सो जाता है। पशु-पक्षी कलरव करते हुए अपने घोंसलों में छुप जाते हैं। प्रकृति स्तब्ध हो जाती है। नर-नारी और जीव-जंतु अचेतन हो कर निद्रा की गोद में सो जाते हैं। सवितादेव जगत की उत्पत्ति के कारण हैं और उनके कारण अज्ञान का अंधेरा लुप्त हो जाता है।

4. वसंत-ऋतु

(राग हिंडोल, चौताला)

सरस सुंदर रितुराज बसंत आवत भावन, कुंज-कुंज फूले फूल,
भँवर गूँज, कोयल पंचम गान मतावै नर-नारी ।
कानन-कानन फूटत चमेली बकुल गंधराज
बेली मोतिया गुलाब सुगंध मनोहारी ॥
पवन चलत मंद-मंद बिछुरि गंध चहुँ दिसि गुंजत,
भजन नाद पंचम सुर पूरत सबहि बन भूरी ।
रति-पति भज जुबक-जुवति नाचत-गावत हिंडोल माति,
गोविंद-मंगल 'तानसेन' गायो री ॥¹

तानसेन के इस गोविंद-मंगल पर कुछ लिखना आवश्यक नहीं है। ऋतुराज के समय रति-पति का युवक और युवतियों को मत्त बना कर नाचने और उन्हें हिंडोल राग गाने के लिए विवश कर देना प्रकृति का अकाट्य नियम है। इस पद में कुछ शब्दों के बार-बार दोहराने से मोहक ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

इसके साथ ही एक अन्य वसंत-वर्णन दृष्टव्य है²—

(राग हिंडोल, चौताला)

सब मिलि करौ अनेग रंग कौ अब आई हो रितु बसंत ।
कोउ हँसि तार देत, कोउ छुअन किनेर,
कोउ मौरे बधावत री त्रीआ प्रसंग ॥
कोउ गावत, कोउ मृदंग बजावत, कोउ सुगंध लैलगावत अंग ।
'तानसेन' कौ प्रभु रीझि-रीझि बारत सखियाँ सहित सब संग ॥

5. वर्षा-ऋतु

तानसेन को ऋतुओं में सर्वाधिक वर्षा ने भावाभिभूत किया है। उनका वर्षा-वर्णन दो रूप में है; एक तो ऐसा वर्णन है जिसमें वर्षा का वर्णन स्वतंत्र रूप से किया गया है, दूसरा वह है जिसमें वर्षा का पूर्णतः स्वतंत्र तो नहीं तथापि लगभग स्वतंत्र वर्णन कहा जा सकता है।

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, भारत संस्कृति, कवि तानसेन, पृष्ठ 161 ।

2. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

श्यामसुंदर कृष्ण और श्यामघन से संबंधित एक सांगरूपक भी दृष्टव्य है—
(राग मेघ, चैताल)

श्याम घनश्याम घन उमड़-धुमड़ आये,
मंद-मंद मुरली तान गगन धिर आई ।
इत जलधर बूंद, उत सुधा बरसत,
इत चपला, उत पीतांबर फहराई ॥
इत मुक्त-माल गरे, उत बक पाँति देखौ,
इत धुरबार धार, उत गाज छाई ।
यह सोभा निरखत 'तानसेन' के प्रभु,
इत अश्न-बरन बादर, उत लाल पाग पहराई ॥

वर्षा-विहार

तानसेन ने वर्षा-विहार पर भी एक सुंदर पद लिखा है—
(राग ईमन, तिताला)

देख सखी पवन पुरवैया, ठौर-ठौर रुखन कौ हलवौ ।
आछी-नीकी कारी-पीरी घटा धुमड़ आई,
ता मधि कृष्ण-स्यामा जू कौ चलिवौ ॥
कुंज-लता द्रुम-लता सखी री, मंद कुसुम नीके कर खिलवौ ।
मीन अचल ह्वै जल जमुना कौ,
'तानसेन' के प्रभु कौ कबहुँक मिलवौ ॥

—अठ्ठाईस— संगीत-शास्त्री तानसेन

तानसेन से संबंधित संगीत-शास्त्र के सिद्धांतों पर अभी तक किसी के द्वारा शोध नहीं हुई है। इस अन-चले मार्ग पर चलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि तानसेन के केवल कुछ पदों में संगीत-शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं और कुछ संगीत-विषयक सांग-रूपक हैं। इतनी थोड़ी-सी सामग्री में से संगीत सम्राट तानसेन के संगीत-शास्त्र के ज्ञान की थाह लेना कठिन है। फिर भी, जो-कुछ सामग्री उपलब्ध है उस पर से ही यहाँ संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. संगीत-शास्त्र के शब्द

तानसेन के पदों में संगीत-शास्त्र-विषयक जो शब्द प्राप्त होते हैं उन्हें दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहला वर्ग उन शब्दों का है जो संगीत-शास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध हैं, उन्हें सुविधा के लिए 'तत्सम' कहा गया है। दूसरे वर्ग में वे शब्द आते हैं जो तानसेन के समय में गायकों में प्रचलित थे, सुगमता के लिए उन्हें 'देशज' कहा गया है।

तत्सम

ॐकार, अंश, अवरोही, अनहद, अनवादी, अनाघात, आरोही, इड़ा, औढव, कूट तान, काल, कंचनताल, गुरु, ग्राम, गांधार, गूढ़, गीत, गान, चौगुण, छंद, टोड़ी, तालमूल, ताल, तालाध्याय, तार, तान, द्विगुण, द्रुत, दारु, देशी, दीपकरण, ध्रुपद, ध्वनि, धैवत, न्यास, निषाद, नाद, नादब्रह्म, नृत्य, नाड़ी, नृत्याध्याय, पंचम, प्रबंध, प्रकीर्ण, प्रमाण, भैरव, मालकौस, मेघ राग, मूर्छना, मध्यम, मृदंगाध्याय, मार्गी, राग, रागिनी, रागाध्याय, रागालिप्ति, ऋषभ, लेश, विकृति, विलंबित, वादी, विवादी, शुद्ध मुद्रा, शुद्ध वाणी, शब्दब्रह्म, श्रुति, श्रीराग, षड्ज, षाढव, स्वर, स्थायी, संचारी, स्वराध्याय, सप्ताध्याय, हिंडोल, त्रैवट, त्रैवत, त्रिगुण, आदि।

इन शब्दों में 'आहत' शब्द नहीं है।

देशज

अरस-कुरस, आतक-खातक, उलट-पुलट, उरप-तिरप, उक्ति-जुक्ति, कौल, खुली-मुंदी, खंडार, गुबरहार, जुरत-फुरत, जेवट, झुमरा, डागुर, डुरन-भुरन, ताली, तिलाना, धोबा, धारू, नौहार, परभाटा, बंस डाँस, माठा, रंग-जुगत, रंगत-जुगत, रंगत-संगत, लाग-डाट, सप्त-प्रकट, सप्त-गुपत, आदि।

इन सभी शब्दों का आशय लिखने का कार्य करणीय है, तथापि उसे तानसेन के समस्त पद मिलने तक रोकना होगा ।

ऊपर लिखे देशज शब्दों में कुछ नृत्य से भी संबंधित हैं तथापि तानसेन ने उनका प्रयोग गायन के संदर्भ में ही किया है ।

तानसेन ने शाङ्गदेव के संगीतरत्नाकर का परिशीलन किया था, इसके लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त है¹—

(रागिनी भीमपलासी, चीताला)

ए ही सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना,

गीत छंद धोवा माठा प्रबंध त्रैवट तान ।

आरोही अवरोही अस्थायी संचारी वादी विवादी

संवादी अनवादी जान ॥

खरज रिषभ गंधार मध्यम पंचम

धंवत निषाद तान आन ।

सा रे ग म प ध नि सा नि ध प म ग रे,

‘तानसेन’ कहाँ ग्रंथ प्रमान ॥

इस पद के संचारी तथा आभोग, अर्थात्, तीसरे और चौथे चरण में वे भाग हैं जो ‘संगीत रत्नाकर’ में उपलब्ध हैं । शाङ्गदेव ने यह अतिरिक्त कथन किया है कि श्रुतियों से स्वरों की उत्पत्ति होती है²—

श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमाः ।

पञ्चमो धंवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ॥

तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरा मताः ।

2. राग, रागिनी और ताल

तानसेन के पदों पर विभिन्न पद-संग्रहों में जो राग-रागिनी-नाम और ताल-नाम मिलते हैं, उन की प्रामाणिकता संदिग्ध है; क्योंकि प्रतिलिपिकारों का निजी अभिनिवेश अथवा प्रमाद इस प्रसंग में अवश्यभावी है । फिर भी उन उल्लेखों की तालिका नीचे प्रस्तुत है ।

तानसेन के पदों में नीचे लिखे हुए रागों के नाम प्राप्त हुए हैं:—

ईमन, ईमन बिलावल, कल्याण, कान्हारा, केदारा, गंधार, गौड़ मलार, गौड़ सारंग, चौराष्टक, जैत, दरबारी, कान्हारा दरबारी, दीपक, देशी, मारवा, षट,

1. अप्रकाशित ‘रागमाला’ से ।

2. प्रेमलता शर्मा के निदेशन में आर० के० श्रृंगी द्वारा किए गए शाङ्गदेव के ‘संगीत-रत्नाकर’ का अंगरेजी अनुवाद, पृष्ठ 130 ।

बिलावल, भैरव, मलार, मालव, मालकोस, मेघ, मेघेन्द्र, ललित, लाछसारव, विभास, शुद्ध मलार, सारंग, सूहो, हिन्दोल, श्रीराग, त्रिवण, सोरठ, वसंत, आदि ।

तानसेन के संदर्भ में नीचे लिखी रागिनियाँ प्राप्त हुई हैं:—

अलैया, आसावरी, खम्माइच, खंवावती, गुर्जरी, घनाश्री, छाया, जैतश्री, टोड़ी, मुलतानी भीमपलासी, भैरवी, भैरवी गणेश, महीअरी टोड़ी, लछिमा टोड़ी, दरबारी टोड़ी, देशी टोड़ी, नायकी, परज (?), पूर्वी, मालश्री, मुलतानी, मुलतानी घनाश्री, भीमपलासी, ललित, विहाग, सायरी, सिंदूरा परज, सुधराई, श्रीगौरी, सोरठी, सोहनी, आदि ।

तानसेन ने अपने पद नीचे लिखे तालों में गाए थे:—

आढा चौताला, इकताला, चपक, चौताला, चर्चरी, जलद, जलद तिताला, झपताला, धमार, धीमा, धीमा तिताला, ध्रुपद चौताला, नव, परज(?), सूरफाकता, रूपक आदि ।

3. तानसेन का संगीत-विधान

तानसेन मूर्च्छना पद्धति के भी पंडित थे और मुकाम-पद्धति के भी । इसके उदाहरण-रूप में आचार्य बृहस्पति ने एक पद उद्धृत किया है¹—

(राग कान्हार, चौताला)

‘धैवत, पंचम, मधिम, गंधार, रिखव, खरज, सुर साधि-साधि,
साधि गुनी निषाद रे ।

तेरहों अलंकार बाईस श्रुति साधि

वाद उचारि सा रे ग म प ध नि स सुधर सानी धानी ध प म ग रे ॥

त्रविधि त्रविधि सुरनि-मधि त्रतीय, त्रतीय, त्रतीय अरे वितंत
जानत वेदमान रे ।

सप्त सुर तीनि ग्राम, इकईस मूर्च्छना, छत्तीस भेद नादवाद
‘तानसेन’-विधान रे ॥

इस पद का भाष्य करते हुए पूर्वोक्त विद्वान ने लिखा है²—

“धैवत, पंचम, मध्यम, गंधार, ऋषम, षड्ज स्वर का साधन कर-करके
निषाद का साधन कर ।

“तेरहों अलंकार और बाईस श्रुतियों का साधन करने के पश्चात्, ओ सुधर
‘सा, नि, ध, प, म, ग, रे’ का उच्चारण कर ।

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति तथा श्रीमती सुमित्राकुमारी, संगीत चिंतामणि, पृष्ठ 373 ।

“इन पंक्तियों में ‘घ, प, म, ग, रे, सा’ का साधन करके ‘नि’ का साधन करने की बात कही गई है और इस क्रम की साधना को अलंकारों और बाईस श्रुतियों की सिद्धि का आधार बताया गया है। इतना सब-कुछ करने के पश्चात् ‘सा, रे, ग, म, प, ध, नि’ का उच्चारण करने की बात कही गई है।

“अकवरी युग में जो ‘नि, घ, प, म, ग, रे, सा’ शुद्ध माने जाते थे, वे भरत और शाङ्गदेव के ‘घ, प, म, ग, रे, सा, नि’ थे। इन स्वरों को ‘घ, प, म, ग, रे, सा, नि’ कहने से ही ‘रत्नाकर’ जैसे ग्रंथों के श्रुति-सिद्धांत को समझा जा सकता था। मूर्च्छना-पद्धति से इन स्वरों के नाम उन ध्वनियों के ‘गुप्त’ नाम थे और मुस्लिम संप्रदाय में प्रचलित इनके नाम ‘नि, घ, प, म, ग, रे, सा’ थे। ‘गुप्त’ नामों की साधना और उसके आधार पर श्रुति-सिद्धांत का ज्ञान होने के पश्चात्, सुघर व्यक्ति से कहा गया है कि वह उनके प्रचलित नामों का अभ्यास करे।

“ध्रुवपद की तीसरी पंक्ति का अर्थ है—

“तीनों प्रकार के स्वरों—अर्थात् चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक और द्विश्रुतिक स्वरों में उनकी अपेक्षा तीसरे-तीसरे स्वर का निवास है, इस तत्व को विद्वान व्यक्ति जानते हैं।

“गणना के एक प्रकार में जिस स्वर के पश्चात् गणना करनी होती थी, उसके पश्चात् वाले स्वर से गणना करते थे। इस दृष्टि से ‘सा’ के पश्चाद्वर्ती तीन स्वरों में—अर्थात् ‘रे, ग, म’ में तीसरा स्वर ‘म’ और ‘रे’ के पश्चाद्वर्ती ‘ग, म, प’ में तृतीय स्वर ‘प’ इत्यादि हैं।

“भरत ने लिखा है कि षड्जग्राम के ‘सा, रे, ग, म, प, ध, नि’ ही मध्यम-ग्राम के ‘म, प, ध, नि, सा, रे, ग’ हो जाते हैं। ‘ध्रुवपद’ की इस पंक्ति में यही अर्थ है।

“षड्जग्राम का प्रत्येक स्वर अपने पश्चाद्वर्ती स्वरों में तीसरे स्वर की संज्ञा का ग्रहण मध्यमग्राम की दृष्टि से कर लेता है, इसी तत्व का प्रतिपादन करने के लिए तानसेन का कथन है कि प्रत्येक स्वर में तृतीय स्वर का निवास है। तानसेन की परंपरा के अन्य गुणी भी इसी रहस्य से परिचित थे और इसे बहुत बड़ा ‘गुर’ (रहस्य) कहते थे।”

फकीरूला

हमारे मत में तानसेन की यही विशेषता है। उनकी कला को कोई झुंझलाएँ जकड़ नहीं सकी थीं। प्रत्येक युग-प्रवर्तक कलाकार रूढ़ियों में बंध कर नहीं रहता। अपनी कला की अभिव्यक्ति को लोक-व्यापी और अपने सम-कालीन समाज के चिंतन को प्रगतिशील बनाने के लिए वह बंधे-बंधाएँ नियमों में जकड़ा नहीं रहता। वह लोक-रुचि के अनुरूप अपनी कला को निखारता है और भावी पीढ़ियों के मार्ग-दर्शन के लिए नवीन प्रतिमान छोड़ जाता है। बँजू गुजरात में ईरानी

संगीत में कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् ही महाराज मानसिंह तोमर के पास ध्रुपद गायन-शैली सीखने के लिए आया था, वह शैली उस युग के भारत की संस्कृति की प्रतीक थी। उसके ज्ञान के बिना बैजू का गांधर्व-ज्ञान अधूरा रहता। तानसेन की इसी विशेषता के कारण फकीरल्ला ने उन्हें एक ओर बैजू, बख्श और पांडवी की परंपरा का कहा है, दूसरी ओर हजरत अमीर खुसरो, शेख बहाउद्दीन, जकरिया मुल्तानी और हुसैनशाह शर्की की परंपरा का पूर्ण ज्ञाता माना है।¹ यही कारण है कि 'साम-गान' से चलते-चलते भारतीय संगीत 'प्रबंध-गान' तक आया और फिर 'ध्रुपद गायन' के रूप में लोक-प्रिय हुआ। लोक-रुचि के परिवर्तन के कारण ध्रुपद गायन-शैली के स्थान पर अन्य शैलियाँ चल निकलीं।

इसी प्रकार की निरंतर प्रवहमान धारा सभी कलाओं में परिलक्षित होती है।

गणेश और सरस्वती की वंदना

प्रत्येक गायक को सर्व-प्रथम गणेश और सरस्वती की वंदना करना आवश्यक होता है।² यहाँ तक कि बीजापुर के सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह (सन् 1580-1627 ई०) की रचनाओं में भी सरस्वती-वंदना प्राप्त होती है। बीजापुर के सुल्तानों की राज-भाषा फारसी थी और जन-भाषा मराठी। इब्राहीम आदिलशाह का दरबार फारसी के प्रसिद्ध कवियों को आकर्षित कर रहा था; परंतु उसने स्वयं अपनी रचना किताबे-नौरस का मंगलाचरण इन शब्दों में लिखा है³—

नवरत्न स्वर जुग जग जोति आणी सर्वगुनी ।

यौ सत् सरसुती माता इबराहीम प्रसाद भई दुनी ॥

निपुण गुरु

ध्रुपद गायन सीखने के लिए कोई पूर्ण निपुण गुरु आवश्यक है। तानसेन ने भी एक पद में गुरु-महिमा गाई है—

(रागिनी टोड़ी, चीताला)

जो गुनी जन गुरु पावै, गावै नीकी तान, गुन सौं रिभावै ।

जब वजावै बीन आछी-नीकी परमान सोच-समझ,

1. प्रो० शाहब सग्नादी, अलीगढ़ के एक पत्र से प्राप्त जानकारी। फारसी में बैजू को मंजू आदि पढ़ा जाता है। उसी प्रकार रागदर्पण की प्राचीनतम प्रति में उसे भानु कहा गया है। इस नाम का कोई नायक मानसिंह तोमर की संगीत-मंडली में नहीं था।
2. संबंधित पद 'भक्त-कवि तानसेन' परिच्छेद के उपखंड 'सगुण भक्ति' में दिए गए हैं। पीछे पृष्ठ 176 देखें।
3. नजीर अहमद, किताबे-नौरस, प्रस्तावना, पृष्ठ 95।

तान लेत ध्यान धरत जिया मैं जब सुर संगति पावै ।
 दुरन-मुरन सौं वाकी समझ आवै ॥
 सप्त तीनि इकईस बाईसौ लाग-डाट खुली-मुंदी दरसावै ।
 सप्ताध्याय संगीत-मत करि कै, तब 'तानसेन' प्रभु कौं रिभावै ॥

तानसेन ने संगीत के सिद्धांत से संबंधित ग्रंथों का भी अवगाहन किया था । उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा ने वेद में, भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में, शाङ्गदेव ने संगीतरत्नाकर में, कल्लिनाथ ने संगीतरत्नाकर की टीका में और हनुमन्तमत (आंजनेय संहिता) में संगीत के सिद्धांतों का विवेचन किया है ।¹ संभव है यह सब सिद्धांत तानसेन ने नायक बैजू से सीखे हों ।

नाद की उत्पत्ति

तानसेन ने नाद की उत्पत्ति के विषय में एक पद लिखा है—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

ॐकार ब्रह्मा उचार्यौ चारों आनन,
 तार करन सप्त प्रमान ।

सप्त सुर, तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना,
 बाईस सुरति, उनंचास कूट तान ॥

आरोही-श्वरोही अस्थाई-संचारी, अंस न्यास गृह जान ।
 औडव-षाडव सुर संपूरन, 'तानसेन' गुरु ज्ञान उर आन ॥

सप्त-स्वर

तानसेन ने एक पद में पुनः सातों स्वरों का नामोल्लेख किया है और लिखा है कि ये अनहद नाद से उत्पन्न होते हैं । इनके अभ्यास से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं—

(राग दरबारी देशी, टोड़ी)

अनहद शब्द उपज्यौ मो घट में, ताकौ ध्यान घरूँ अष्टयाम ।

षडज रिषभ गांधार मध्यम पंचम धैवत

निषाद पावै ज्यौँ अति अभिराम ॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पदारद पाये,

अब प्रगट्यौ नाद-ब्रह्म सहस रूप आनंद धाम ।

धन-वन जोति स्वरूप अचरज कर,

और परसै 'तानसेन' कंठ धाम ॥

छह राग

तानसेन ने एक ही पद में छहों रागों का नामोल्लेख किया है और लिखा है कि इस विद्या का पार नहीं पाया जा सकता—

(रागिनी मालश्री)

परज साधें गाऊँ, मैं सवनन सुनहुँ सुनाऊँ ।

वेद पढ़ाऊँ, जोई-जोई कहै सोई-सोई उचराऊँ ॥

भैरव-मालकोष-हिंडोल-दीपक-श्रीराग-मेघ सुर ही लै आऊँ ।

‘तानसेन’ कहै सुनौ हो सुघर नर, यह विद्या पार नहीं पाऊँ ॥

नाद-विद्या

एक पद में तानसेन ने लिखा है कि स्वयं सरस्वती भी अगाध नाद-सागर को बिना वीणा के तूँबों को छाती से चिपकाए पार नहीं कर सकती; यह अद्भुत उक्ति है। विष्णु, शिव तथा अंजनीनंदन भी उसका पार नहीं पा सकते; साथ ही राग-रागिनियों आदि का उल्लेख भी कर दिया है—

(रागिनी भैरवी, चौताला)

नाद अगाध बहुत गये हैं साध,

सुर-नर-मुनि-गंधर्व, रचि-पचि गये सिद्ध सब हार ।

काहू न पायौ पार, करि-करि थाके विचार,

कमलासन हरि, शिव-श्रवनधार, अंजनीनंदन कहै उचार,

सरस्वती तरन लागी हिय में दो तूँवा डार ॥

सप्त सुर, तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना, बाईस सुरति,

उनंचास कूट तान, अंश न्यास त्रिकृति धार ।

छै राग, छत्तीस रागिनी, औडव-षाडव के भेद, सुद्ध मुद्रा-

सुद्ध वानी, ‘तानसेन’ करचौ विनान, जाकौ सूभत न आरपार ॥

इस तारतम्य में संस्कृत का एक श्लोक भी द्रष्टव्य है—

नादाब्धेस्तु परं पारं, न जानाति सरस्वती ।

अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बं वहति वक्षसि ॥

ध्रुपद की चार वाणियाँ

एक पद में तानसेन ने ध्रुपद की चारों वाणियों का नामोल्लेख किया है, साथ ही अपने गायन के आधार भी गिनाए हैं—

(राग भैरव, चौताला)

बानी चारौं के ब्यौहार सुनि लीजै हो गुनीजन,

तब पावै यह विद्या-सार ।

राजा गुबरहार, फौजदार खंडार, दीवान डागुर, बकसी नौहार ॥

अचल सुर पंचम, चल सुर रिषभ,

मध्यम, धैवत, निषाद, गंधार ।

सप्त तान, इकईस मूर्छना, बाईस सुरति,

उनंचास कूट तान, 'तानसेन' आधार ॥

आचार्य बृहस्पति का अभिमत है कि ये चार विभाग डागुरों को नीचा दिखाने के लिए किए गए हैं और इसीलिए उन्हें तीसरा स्थान दिया गया है ।¹ ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्रम ठीक है । डूंगरेन्द्रसिंह तोमर (1425-1459 ई०) 'डूंगर' भी कहलाते थे । गुबरहार खालियर के नाम पर आधारित है । सवाई माधोपुर के पास खंडार नाम का एक विशाल गढ़ है । वहाँ मारन सिंह तोमर की ओर से उनका भतीजा सलहदी प्रशासक था । वहाँ प्राप्त शिलालेखों में मानसिंह के लिए 'महाराजाधिराज' लिखा मिलता है और सलहदी के लिए 'महाराज' । मानसिंह तोमर के भतीजे का संगीत में निपुण होने का अनुमान सहज ही किया जा सकता है । इसी कारण एक वाणी का नाम खंडार है । नौहार शब्द नव-हार से निकला है; यह नवीन ग्राम कहाँ बताया गया होगा, यह अज्ञात है ।

गुणी गायक

एक पद में तानसेन ने गुणियों से संवाद कर सकने की योग्यता प्राप्त करने के लिए न्यूनतम निपुणता निर्धारित की है—

(राग गंधार, चौताला)

गावत सुघर गुनी-गंधर्व, सुद्ध मुद्रा संगत सौं नाद ।

सुरति कला ध्वनि मूर्छना पूरन लगै, तब राग कौ सवाद ॥

रंग लिप्त रस रूप लय ताल काल लय समान, वर रह छंद महानाद ।

'तानसेन' कहै ग्राम-तान-अलंकार, सब समझ कीजै गुनियन सौं संवाद ॥

मूर्ख गायक

तानसेन ने मूर्ख कवि-गायक का वर्णन कर कविता के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं । उन्होंने अकबर की सौगंध खा कर कहा है कि मुझे उन मूर्खों की रचना सुन कर दुख भी होता है और हँसी भी आती है²—

(राग आसावरी, चौताला)

जौ घुरपद ना सुध अछिरनि उक्त-जुक्त न संगीत, राग बनावै ।

जे अग्यान गुनीयन कौ पचावै, भिम सें निरगुनि कौ कीयौ गावै ॥

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति, ध्रुवपद और उसका विकास, पृष्ठ 248 ।

2. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

नौ रस राग जानें नहि, लोमकध वाद ही कवि कहावै ।
साहि अकबर की सौ मोहि तौ दुख और हांसी या ही तैं आवति,
अरथ पूछे ते कवि नाहीं करि आवै ॥

तानसेन की बिकट तान

तानसेन ने एक पद में अपने-आपको कवि कहा है, साथ ही अपनी तान को बिकट कहा है और अपने पौराणिक आख्यानो के ज्ञान का परिचय भी दिया है—
(राग भैरव, चौताला)

विद्या में नाद बिकट, शास्त्रन में न्याय बिकट, गढ़ में लंका बिकट,
लोक में बिकट सुरलोक, देव बिकट हर जानियै ।
पशुन में बिकट सिंह, मुनिन में बिकट दुरवासा,
मनिन में बिकट कौस्तुभ मनि, पंचभूत में बिकट अग्नि मानियै ॥
पंछिन में बिकट गरुड़, उदधि बिकट चारों दिक,
अवतार बिकट नरसिंह, मीन बिकट मकर मीन,
बिकट संगीत प्रमानियै ।

कहत कवि 'तानसेन' सुर बिकट नाभि गायन
तान बिकट 'तानसेन' जाकौ सुजस गानियै ॥

गान-वाद

तानसेन ने अपने गान-वाद के विषय में भी एक पद लिखा है और यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि चंदन और बबूल के वृक्ष साथ-साथ नहीं पनप सकते—

(राग षट, सूरफावता)

विद्याधर गुनीग्रनि सौं क्यों अरीऐ, गुन-चरचा की लराई लरीऐ ।
जाइ कछु आवै नहीं तासौं कहा कहीऐ, दौरि गुनीनि के चरन परीऐ ।
मेरौ-तेरौ न्याउ निरंजन आंगैं, चंदन बबूर कैसें इक ठौरे धरीऐ ।
और लराई नहीं गुन की लराई, 'तानसेन' ताननि तरीऐ ॥

वाद्य

वाद्यों के चारों प्रकारों के गुण के विषय में आचार्य बृहस्पति ने लिखा है¹—

“वाद्य को रंजक, विभिन्न, मधुर, शुद्ध, सूक्ष्म, घन, व्यक्तध्वनि, रागयुक्त तथा गंभीर होना चाहिए । गीत के अक्षरों, ग्रह, मोक्ष इत्यादि अङ्ग, पाणियों, ताल, यति, लय, न्यास और अपन्यास के समय साथ रहना वाद्य का कर्तव्य है ।

1. कैलाशचन्द्र बृहस्पति तथा श्रीमती सुमित्रा कुमारी, संगीत चिन्तामणि, पृष्ठ 41 ।

“तत एवं सुषिर-वाद्यों में गीत उत्पन्न होता है, अवनद्ध वाद्य उसका उपरंजन करते हैं और घन वाद्यों का कार्य गीत को लय के अनुसार नियंत्रित रखना या नापना है। इस प्रकार चारों तरह के वाद्य गीत के उपकारक हैं।”

उपर लिखे वाद्यों के इन वर्गों को तानसेन के अनेक पदों में से खोजना होगा।

तत—तत वाद्य उन्हें कहते हैं जिनके तारों पर प्रहार कर बजाया जाता है; यथा वीणा, रबाब, आदि।

अवनद्ध—अवनद्ध वाद्य वे होते हैं जो चमड़े से मढ़े होते हैं; यथा मृदंग, पखावज, नगाड़ा, नोबत, ढफ, डमरू, आदि।

सुषिर—सुषिर वाद्य वे कहलाते हैं जिनको मुख से या अन्य किसी प्रकार वायु को प्रेरित कर बजाया जाता है; यथा बंशी, शहनाई, तुरही आदि।

घन वाद्य—घन वाद्य उन्हें कहते हैं जो किसी ठोस धातु के बने होते हैं; यथा घंटिका, करताल, आदि।

तानसेन के एक पद में ‘वितत’ वाद्य का भी नामोल्लेख है, परंतु उसका स्वरूप नहीं बताया है।

—उत्तीस— दृश्य संगीत

प्रकृति और पुरुष के रूप में सृष्टा की परिकल्पना ने भारतीय दर्शन और कलाओं में मंजुल सौंदर्य और अनेकरूपता की प्रतीति कराई है, प्रकृति के रूप में नारी और पुरुष के रूप में नर की परिकल्पना की गई है। शैवों ने अर्धनारीनटेश्वर का स्वरूप भी प्रस्तुत किया है। शाक्त तान्त्रिकों ने नारी के त्रैलोक्य-सुंदरी, माता के रूप के साथ-साथ महिषि-मर्दिनी के रूप में भी दर्शन किए हैं। पुरुष शिव, नटराज के रूप में प्रस्तुत किए गए और आदि-शंकराचार्य ने अपने महिष-मर्दिनी-स्तोत्र में दुर्गा के विषय में लिखा है—

भरण भरणभिजिमि भिभ्रकृतनूपुर सिजित मोहित भूतपते ।

नटितनटार्घ नटीनटनायक नाटितनाट्य सुगानरते ॥

इस प्रकार शिव और पार्वती, दोनों को ही नाट्य और उसके आनुषंगिक गीत तथा वाद्य से संबंधित कर दिया ।

संगीत के क्षेत्र में रागों की उत्पत्ति भी शिव और पार्वती द्वारा मानी गई है। शिव के पाँच मुखों से पाँच राग—भैरव, दीपक, मालकोस, हिंडोल तथा मेघ प्रस्तुत हुए और पार्वती ने छठवाँ राग जोड़ दिया। इन छह रागों के नाम भिन्न-भिन्न दिए गए हैं। पार्वती को सभी ग्रंथों में श्रीराग की प्रवर्तिका माना गया है। भारतीय मस्तिष्क की सूक्ष्म विभाजन और उप-विभाजन की विशेषता के अनुसार प्रत्येक राग की भार्याओं की परिकल्पना की गई। इनमें प्रत्येक राग की पाँच, छह, सात या आठ भार्याएँ मानी गई हैं। इन भार्या-रागिनियों के पुत्र भी उत्पन्न हुए। उ की संख्या भी सुनिश्चित नहीं है। किसी ने छह पुत्रों को जन्म दिया; किसी ने सात, आठ या नौ को भी। राग-रागिनियों के नाम बहुधा देवी-देवता, प्रदेश-विशेष तथा ऋतुओं पर आधारित हैं। श्रीराग संभवतः लक्ष्मी से संबंधित है। भैरव शिव का गण है। संधवी, बंगाली, गौड़ी तथा गुर्जरी प्रदेश-विशेषों से संबंधित हैं। मेघ राग ऋतु से संबंधित है। दीपक राग ने दीपक से नाम ग्रहण किया है, आदि-आदि।

यहाँ प्रसंग दृश्य संगीत का है, जिसे रागमाला कहा जाता है। संगीत का एक अंग नृत्य भी है। प्रस्तर या धातु के माध्यम में नृत्य के दृश्य मिलते हैं। इन माध्यमों की मर्यादा के कारण गायन के स्वर-ताल की ध्वनियाँ प्रस्तुत नहीं की जा सकतीं। रागमालाओं के प्रस्तर या धातु के अंकन तो उपलब्ध नहीं हैं, तथापि पट-चित्रों की भरमार है।

संस्कृत के कवि भास, कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, आदि ने ऐसे दृश्य प्रस्तुत किए हैं, जिनके ऊपर से मंजुल चित्रों का अंकन किया जा सकता है।

इस दृश्य संगीत को प्रस्तुत करने के लिए संगीताचार्यों द्वारा राग-रागिनियों के लक्षण तथा ध्यान प्रस्तुत किए गए हैं। तथापि रागों के ध्यान बहुत पहले लिखे गए थे। रागमाला-चित्र पंद्रहवीं शताब्दी के पहले के नहीं मिलते। रागों के लक्षण और ध्यान संस्कृत में भी मिलते हैं, अन्य लोक-भाषाओं के साथ हिंदी में भी मिलते हैं, और फ़ारसी में भी।

दृश्य संगीत का विवेचन करते समय सबसे पहले मानकुतूहल का फ़ारसी भाषा में अनुवाद करने-वाले फकीरुल्ला का कथन जान लेना उपयोगी होगा¹—
“रागिनी राग की पत्नी को कहते हैं और पुत्र राग-रागिनी के बेटे को कहते हैं। प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ और आठ पुत्र होते हैं, परंतु श्रीराग के छह रागिनियाँ और नौ पुत्र होते हैं।”

1. संस्कृत रागमालाएं

संस्कृत में रागों के लक्षण तथा ध्यान सबसे पहले दामोदर भट्ट ने ‘संगीत दर्पण’ में प्रस्तुत किए हैं। कुछ विद्वान उनका समय 1630 ई० के आसपास बताते हैं, तथापि किसी ने इस काल-निर्धारण का आधार नहीं बतलाया है। यह सर्वमान्य है कि दामोदर भट्ट लक्ष्मीधर के पुत्र थे। लक्ष्मीधर का उल्लेख वीरसिंहदेव तोमर (1375-1400 ई०) के गंगोलाताल के विक्रम संवत् 1451 आषाढ़ शुक्ल पंचमी (4 जून 1394 ई०) के शिलालेख में है। लक्ष्मीधर के नाम के आगे के कुछ अक्षर टूट गए हैं, वहाँ भट्ट ही होगा।² दामोदर भट्ट ने अनेक राग-रागिनियों के लक्षण तथा ध्यान अपने ग्रंथ ‘संगीत दर्पण’ में लिखे हैं। वीरसिंहदेव की राज-सभा को एक संगीताचार्य देवेन्द्र भट्ट भी सुशोभित कर रहे थे।³

भैरव राग

तानसेन को प्रातर्गय भैरव राग बहुत प्रिय था। उनके द्वारा विरचित भैरव राग के कुछ पद पहले दिए जा चुके हैं।⁴ दामोदर भट्ट ने भैरव राग के लक्षण और ध्यान दिए हैं। भैरव के लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं :—

लक्षण

धैवतांशग्रहण्यासो रिपहीनत्वमागतः।

भैरवः स तु विज्ञेयो धैवतादिकमूर्च्छनः।

विकृतो धैवतो यत्र औडवः परिकीर्तितः॥

1. द्विवेदी, मानसिंह और मानकुतूहल, पृष्ठ 62।

2. द्विवेदी, खालियर के तोमर, पृष्ठ 23।

3. कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धान्त, पृष्ठ 311।

4. पीछे पृष्ठ 78-79 देखें।

भैरव राग में 'धैवत' स्वर अंश, ग्रह, न्यास है। 'रि प' स्वर वर्जित हैं; यह धैवत की मूर्च्छना में से उत्पन्न होता है। इसमें विकृत धैवत लिया जाता है और यह राग औडुव है।

ध्यान

गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः

सर्पेर्विभूषिततनूर्गजकृत्तिवासाः ।

भास्वत्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी

शुभ्राम्बरो जयति भैरव आदिरागः ॥

जिसके मस्तक में से गंगा बहती है; कपाल पर चन्द्रकला का तिलक है; जिसके तीन नेत्र हैं; जिसके शरीर पर सर्प शोभायमान हैं; जिसने अपने शरीर पर हस्ति-चर्म धारण कर रखा है; जिसके हाथ में त्रिशूल भासित है; गले में मुंड-माल है; तथा जिसके वस्त्र श्वेत हैं; ऐसा यह आदि राग भैरव है।

दीपक राग

कहा यह जाता है कि दीपक राग गाने से तानसेन का शरीर झुलस गया था, मेघ राग गाने से वह ठीक हुआ था। यह धारणा नितांत मिथ्या है।¹

दामोदर भट्ट ने दीपक राग के जो लक्षण और ध्यान दिए हैं वे इसके विल-कुल विपरीत हैं। जब नायक-नायिका मध्य रात्रि को कामातुर होते हैं तब वे दीपक बुझा देते हैं।

लक्षण

षड्जग्रहांशकन्यासः संपूर्णो दीपको मतः ।

मूर्च्छना शुद्धमध्या स्याद्गातव्यो गायकैः सदा ॥

दीपक राग संपूर्ण है। इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। मूर्च्छना 'शुद्ध मध्या' है। यह सदा (किसी भी ऋतु अथवा प्रहर में) गेय है।

ध्यान

बालारतार्थं प्रविलीनदीपे गृहेऽन्धकारे सुभगं प्रवृत्तः ।

तस्याः शिरोभूषण रत्नदीपैर्लज्जां दधौ दीपकराग राजः ॥

जिसने बाला स्त्री के साथ क्रीड़ा करने में प्रवृत्त होने पर दीपक बुझा कर अंधकार किया, परंतु उसके शिरोभूषण के रत्नों के तेज से उसे बड़ी लज्जा प्राप्त हुई; ऐसा यह दीपक राग है।

रागिनी टोड़ी

तानसेन का एक पद टोड़ी रागिनी के विषय में प्राप्त हुआ है। दामोदर भट्ट ने टोड़ी रागिनी के लक्षण और ध्यान दिए हैं जो निम्न-प्रकार हैं :—

1. पीछे पृष्ठ 73 देखें।

लक्षण

मध्यमांशग्रहन्यासा सौवीरी मूर्च्छना मता ।
संपूर्णा कथिता तज्ज्ञैस्तोडी श्रीकौशिके मता ।
ग्रहांशन्यासषड्जांच केचिदेनां प्रचक्षते ॥

टोड़ी में मध्यम स्वर ग्रह, अंश, न्यास है; तथा 'सौवीरी' (मध्यम ग्राम की) मूर्च्छना है। टोड़ी कौशिक की भार्या है और वह संपूर्ण है, संगीतज्ञ लोग ऐसा मानते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार इसमें षड्ज स्वर ग्रह, अंश, न्यास है।

ध्यान

तुषारकुंदोज्ज्वल देहयष्टिः काश्मीर कर्पूरविलिप्त देहा ।
विनोदयंती हरिरां वनांते वीणाधरा राजति तोडिकेयम् ॥

जिसकी देह का वर्ण कुंद अथवा हिम के समान निर्मल, स्वच्छ और श्वेत है; जिसने केशर तथा कपूर की सुगंधि से शरीर का मर्दन किया है; जो वन में मृगों से विनोद करती है; जिसने अपने हाथ में वीणा ले रखी है; ऐसी शोभमयी कौशिक की भार्या टोड़ी है।

2. हिंदी रागमालाएँ

हिंदी में अनेक रागमालाएँ लिखित रूप में मिलती हैं और कुछ में चित्रों के ऊपर उनके ध्यान लिखे होते हैं। उन सबका विवरण देना यहाँ संभव नहीं है। यहाँ केवल राधाकृष्ण, उपनाम कृष्ण कवि द्वारा लिखे गए भैरव और दीपक राग तथा टोड़ी रागिनी के लक्षण और ध्यान दिए गए हैं। पहले भैरव राग के ध्यान और लक्षण दिए जाते हैं।

'रागकुतूहल' के रचयिता राधाकृष्ण अथवा कृष्ण कवि को गौड़ ब्राह्मण कहा गया है। उसके आश्रयदाता भीमसिंह को उनियारगढ़ (जयपुर राज्य) का रावराजा कहा गया है। रचना का संवत् 1953 (सन् 1796) दिया गया है।

लक्षण

ध्रुवत ग्रह ध नि स रि ग म प संपूरन सुर सात ।
बिना बरद घानी चलै भैरव ग्रीष्म प्रात ॥

भैरव राग का ध्यान नीचे लिखे अनुसार है—

ध्यान

पीत जटा, सिर गंग उमंगत, भाल विसाल मयंक विराजै,
लोचन तीन लसैं, दुख मोचन आनन, कानन कुंडल राजै ।
अंग विभूति धरै, अहि भूषन, सूल लिए कर डौरू वजावै,
रूप अनूप सदाशिव मूरति भैरव राग महाद्यवि छाजै ।

राधाकृष्ण ने दीपक राग के लक्षण तथा ध्यान नीचे लिखे अनुसार दिए हैं :—

लक्षण

धिरजग्रेह स रि ग म प ध नि संपूरन सुर जाति ।

दीपक तें दीपक जगै हिम रितु आधी राति ॥

ध्यान

जुग जाम निसा घनघोर छयौ,

अँधियार घनौ सरसावत है ।

रति-सी रमनी रति-मंदिर मैं,

पति केलि-कलानि रिभावति है ॥

सिर भूषन की अति जोति जगी,

दुतिमान मनौ दरसावत है ।

यह दीपक राग महाछवि सौं,

लखि दीपक हू सकुचावत है ॥

राधाकृष्ण ने टोड़ी के विषय में लिखा है कि टोड़ी मालकोस राग की एक रागिनी है । एक दोहे में उसके लक्षण दिए हैं—

धिरजग्रेह स रि ग म प ध नि सातौं सुर अभिराम ।

टोड़ी गावत सरद रितु दिवस दूसरे जाम ॥

उसने टोड़ी का ध्यान एक सवैया में दिया है—

सुंदर अंग अनंग भरी छवि स्यामल बिंदु विराजत टोड़ी ।

अंबर स्वेत उरोज उतंगनि नागिनि-सी अलकैं जुग छोड़ी ॥

धूमत तानन-बानन सौं कर चूमत कानन के मृग मोरी ।

ताहि नचावति बीनि बजावति पीतम के गुन गावत टोड़ी ॥

तानसेन के सम-कालीन पुण्डरीक बिट्टल ने एक तुरष्क टोड़ी का भी उल्लेख किया है । राधाकृष्ण ने उसे तुरकी टोड़ी कहा है और उसके लक्षण भी दिए हैं । उसके अनुसार तुरकी टोड़ी के लक्षण नीचे लिखे अनुसार हैं :—

मध्यम ग्रह म प ध नि स र ग म संपूरन सुरतान ।

दिवस दूसरे पहर मैं तुरक टोड़ी कर गान ॥

राधाकृष्ण, उपनाम कृष्ण कवि ने तुरकी टोड़ी का ध्यान एक सवैया में दिया है—

तन भूषन राज जराय जरे

मुख चंद की जोति अमंद बनी ।

पट केसरिया पिसवाज हरी
 पग लाल इजार सुगंध सनी ॥
 धन जोवन जोर मरोर छकी
 मदिरा रस पीवत मत्त घनी ।
 यह टोड़ी तुरकन की तिय कौ
 सब साजन सौं कविराय भनी ॥

3. फारसी रागमालाएँ

हिंदी की रागमालाओं ने बहु-संख्यक हिंदी जानने-वालों के लिए उस विशाल भंडार को प्रस्तुत कर दिया जो संस्कृत नहीं जानते थे । भारत में फारसी भाषा का प्रचार होने के उपरांत एक ऐसा वर्ग भी अस्तित्व में आया जो रागमाला का आस्वादन फारसी के माध्यम से ही कर सकता था, वे फारसी भाषा में रागों के लक्षण और ध्यान जानने के इच्छुक थे । एक रागमाला ग्वालियरी कलम में चित्रित है, इसे भिंड में प्रारंभ किया गया और 22 फरवरी 1898 को नरवर में पूरा किया गया । इस रागमाला में चित्रकार का नाम नहीं दिया गया है ।

फारसी की इस रागमाला के अनुसार प्रथम राग भैरव है । दूसरा राग मालकोस कहा गया है । तीसरा राग हिंडोल है । फिर क्रमशः दीपक, श्रीराग तथा मेघ दिए गए हैं । इन छहों रागों की प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिनियाँ बताई गई हैं ।

रागिनी टोड़ी का ध्यान भी दिया गया है, जो मालकोस की रागिनी है । तानसेन के संदर्भ में केवल भैरव, टोड़ी और दीपक संबद्ध हैं । भैरव राग के विषय में लिखा है—

भैरों राग का बयान

यह राग महादेव के मुख से निकला है और इसकी जाति ओड़व है यानी सात स्वरों में से पाँच से मिल कर बना है और उसका स्थान (तरतीब) मुख और उदर है । ध्रुवत स्वर ग्रह है और इसे शरद ऋतु में प्रातःकाल में गाते हैं । इसकी सूरत 'रागमाला' में महादेव की शकल के समान है यानी सुंदर पुरुष, मुख पर भभूत मली हुई, सिर में जटा रखे हुए व जटा में से गंगा नदी निकल रही है व हाथ में कंगन (यानी दस्त बिरंजन) पहने हुए और दूज का चंद्रमा भाल पर व तीसरी आँख दोनों भ्रुओं के मध्य में व सर्प गरदन और बाहु पर लिपटा हुआ और माथे पर तिलक कड़ा हुआ व हाथी का चर्म कंधे पर पड़ा हुआ या बिछा कर उस पर बैठे हुए व मुंड माल, जिसे रंडमाल भी कहते हैं, उनके गले में पड़ी हुई है जो आदमी की वीस खोपड़ियों की हमेशा महादेव की गरदन में रहती है व एक त्रिशूल यानी सीधा नेत्रा हाथ में लिए हुए या बराबर से जमीन में गढ़ा हुआ और उनकी सवारी का बैल पास में बैठा हुआ लिखा है ।

॥ राग भैरव ॥ १ ॥



राग भैरव

(मोतीमहल-भवालयर : पृष्ठ 222)



राग दीपक
(क़ारसी रागमाला : पृष्ठ 222)

॥ राग दीपक ॥ ४ ॥



राग दीपक

(मोतीमहल-ग्वालियर : पृष्ठ 222)



रागिनी टोड़ी
(फ़ारसी रागमाला : पृष्ठ 222)

॥ रागिणी टोड़ी ॥ ३॥ मा० ॥



रागिणी टोड़ी

(मोतीमहल-नवालयर : पृष्ठ 222)

दीपक राग

यह कहा जाता है कि तानसेन द्वारा दीपक राग गाने से दीपक जल उठते थे तथा उसका शरीर झुलस गया था। इसके विपरीत दीपक राग के जो ध्यान संस्कृत, हिंदी अथवा फ़ारसी में पहले दिए जा चुके हैं उनके अनुसार अँधियारी रात में रमणी, रति-मंदिर में केलि-कलाओं से अपने प्रिय को रिझाती है और दीपक बुझा देती है और उसके सिर पर पहने हुए आभूषणों से ज्योति जगमगा उठती है।

टोड़ी रागिनी

तानसेन ने रागिनी टोड़ी के विषय में केवल एक पद लिखा है। इस पद में टोड़ी के लक्षण तथा ध्यान एक ही पद में दिए गए हैं—

(रागिनी टोड़ी, चौताला)

टोड़ी रागिनी अलापत गावत,

बीन वजावत, उपवन मिरग रिभावत।

गांधार स्वर गृह मूर्छना, संपूरन तान सुनावत ॥

सब तान इकईस बाइसौ, उनंचास कूट तान,

ताकौ ब्यौरो जनावत।

उज्ज्वल वसन पहिर, केसर-कपूर चर्चित,

रतनन आभूषन 'तानसेन' तान साजत ॥

राग दरबारी

यह माना जाता है कि तानसेन ने तीन रागों का आविष्कार किया था—मियाँ की सारंग, मियाँ की टोड़ी, तथा मियाँ की मलार। कौलाशचन्द्र बृहस्पति का अभिमत है कि मियाँ की टोड़ी 'ठाठ मुकाम' पद्धति की देन है, और उनके अनुसार 'मियाँ की सारंग' तथा 'मियाँ की मलार' मूर्छना पद्धति में नहीं आते, इन्हें मुकाम पद्धति तथा मेल पद्धति में भी समेटना कठिन है, इन रागों में निषाद के सुखदायी प्रयोग तानसेन की देन है।¹

1. सुशोचना यजुर्वेदी तथा आचार्य बृहस्पति, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृष्ठ 134।

—तीस—

मूल्यांकन

1. फकीरुल्ला

फकीरुल्ला ने तानसेन के गायन के विषय में जो अभिमत दिया है वह ऊपर दिया जा चुका है ।¹

2. अबुलफजल

आधुनिक विद्वानों ने सर्वाधिक ध्यान अल्लामा अबुलफजल के कथन पर दिया है । अल्लामा ने आइने-अकबरी में लिख दिया कि “मियाँ तानसेन ग्वालियर निवासी, जिनके समान गायक पिछले एक हजार वर्ष से नहीं हुआ ।” इस टिप्पणी को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई है, और तानसेन के विषय में आधुनिक समय के कुछ विद्वानों ने भी इसी उक्ति का अंधानुकरण किया है । इस उक्ति ने भारत के समस्त अतीत पर (कम-से-कम 600 ईसवी से) पानी फेर दिया है । अल्लामा की इस अनोखी सूझ का आधार क्या है, इसका विवेचन आगे किया गया है । इस प्रसंग में माधव कवि का कथन भी कि “तानसेन जैसा गायक न हुआ है, न है, और न कभी होगा” चिन्ता-योग्य है । माधव के विषय में पहले लिखा जा चुका है ।² माधव कवि था, अतएव क्षम्य है; परंतु अल्लामा अबुलफजल तो इति-हास लेखक थे ।

3. अकबर

विचित्र बात यह है कि जब अबुलफजल ने तानसेन की मृत्यु के समय अकबर द्वारा व्यक्त किए गए उद्गार अकबरनामा में प्रस्तुत किए, तब उनका स्वरूप और ही था । अल्लामा के अनुसार उस अवसर पर अकबर ने कहा था³ : “तानसेन की मृत्यु से मेरे युग का आनंद ही धूमिल हो गया तथा ऐसा ज्ञात होता है कि पिछले एक हजार वर्ष में केवल कुछ व्यक्ति ही होंगे जो तानसेन के स्वर-माधुर्य और उसकी कला की बराबरी कर सकते हों ।”

यह संतुलित अभिमत नितांत यथार्थ है । अकबर को यह ज्ञात था कि तानसेन की वाणी ने किस उत्स से अमृत ग्रहण किया है । उसके मूल में मानसिंह तोमर, बंजू, बख्श, गोपाललाल आदि भी थे । अपने कथन में ‘केवल कुछ व्यक्ति ही’ जोड़ कर अकबर ने इन महान् गायकों की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया । अबुलफजल चाटुकारी की झोंक में चार पग आगे बढ़ गए और निकट-भूत की परंपरा पर

1. पीछे पृष्ठ 209 देखें ।

2. पीछे पृष्ठ 43 देखें ।

3. अबुलफजल, अकबरनामा (बैवरिज का अनुवाद), भाग 3, पृष्ठ 816 ।

पानी फेर दिया; अकबरनामा में कुछ और तथा आइने-अकबरी में कुछ और ही राग अलापने लगे, यद्यपि आइने-अकबरी अकबरनामा का ही अंतिम खंड है।

4. अजमखाँ

शाहजहाँ-कालीन बख्शू के पदों का संग्रह करने-वाले अजमखाँ ने लिखा है कि तानसेन अकबर के समय में संगीत-कला के शिखर पर पहुँचा हुआ कलावंत था। गान-रचना और उसकी प्रस्तुति में यद्यपि उस समय संगीत-रचयिता और गायक वर्ग में अच्छे-अच्छे कलावंत थे, तथापि तानसेन पूर्णतया उन सब से बढ़ कर थे तथा शैली की परिपक्वता और गायन के सौंदर्य में उन्होंने उच्च कोटि की उन्नति की थी; इसी कारण बादशाह अकबर ने उन्हें 'कंठाभरण-वाणी-विलास' की उपाधि दी थी।¹

5. जगन्नाथ कविराय

सम-कालीन जगन्नाथ कविराय ने तानसेन को 'जगत-गुरु' कहा है।²

तानसेन के स्वभाव की प्रशंसा अबुलफ़जल ने भी की है। विनम्र और सरल स्वभाव के कारण ही उसे अकबर के संगीतज्ञों में मूर्धन्य स्थान मिला था। देशाचार और लोकाचार का तानसेन को कितना ध्यान रहता था, यह उसके पदों के उन विषयों से भी ज्ञात होता है जिनका विश्लेषण पीछे किया गया है। मान की रंगशाला हो या रामचन्द्र बघेला की राजसभा—अकबरी दरबार हो या शेख सलीम चिश्ती की सभा या ब्रज के कृष्ण-भक्तों का समाज; तानसेन ने सबके अनुकूल अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

ये सब प्रशंसाएँ तानसेन के 'गायक-रूप' की हैं। इन सम्मतियों को देने-वालों को इस बात से कोई संबंध नहीं था कि तानसेन ने संगीत के शास्त्रीय सिद्धांतों को किस सीमा तक हृदयंगम किया था। वे सुस्वादु व्यंजन ग्रहण करने-वाले थे, उन व्यंजनों को बनाने की प्रक्रिया से उनका संबंध नहीं था। उन्हें संभवतः इस बात की भी जानकारी नहीं थी कि उस श्रेष्ठ गायन के पीछे कितना निरंतर प्रवहमान दीर्घकालीन अभ्यास था तथा उन्हें तानसेन के कवित्व की श्रेष्ठता का आभास भी नहीं था।

6. जहाँगीर

तानसेन ने स्वयं अपने-आपको 'कवि' कहा है और दुर्गा भवानी से कवित्व का वरदान माँगा है, अतएव यह स्वाभाविक था कि जहाँगीर को तानसेन का कवि-रूप अधिक अच्छा लगा था। उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा है³— "मेरे पिता की सेवा में जो कवि थे, उनमें तानसेन कलावंत प्रमुख था, जिसकी समता

1. प्रेमलता शर्मा द्वारा 'सहसरस' की भूमिका में मूल फ़ारसी से उनके द्वारा अनूदित।

2. पूरे पद के लिए पीछे पृष्ठ 82-83 देखें।

3. तुजुके जहाँगीरी, रोजर्स-कृन्ड अँगरेजी अनुवाद, पृ० 413।

का अन्य कोई नहीं था। अपनी एक रचना में उसने एक युवक के मुख की तुलना सूर्य से की है। एक अन्य स्थान पर उसने नायिका की तिरछी चितवन की तुलना कमल पुष्प की उस सिहरन से की है, जो उस पर भ्रमर के बैठने से होती है।”

संभावना यह है कि बादशाह जहाँगीर द्वारा उल्लेखित पद नीचे लिखे हुए हों¹—

(राग विभास, चौताला)

लाल के संग ललनि रैन जागी और लाल लोड़नि,
 लागे री मानौ बंधूक पौहोप डीठे ।
 ता मध पुतरी ऐसी लागै मानौ भमर,
 लटपटात उनि मध उड़ि परै रंग मजीठे ॥
 उनके हेष भेष रही हौं मेरै जान,
 कमल खंजन मीन भ्रग लागै हैं सीठे ।
 साहि अकबर की सौं हौं वापै रींभी अलक लड़े,
 फुनि बड़े छबीले ढोले चितवत नीके ॥

इस पद में नायिका नायक के साथ सारी रात जागी है, इस कारण उसकी आँखें लाल हो गई हैं और वे ऐसी लगती हैं मानो बंधूक के फूल हों और उनमें आँखों की मजीठे-जैसे लाल डोरे-वाली पुतलियाँ ऐसी लगती हैं मानो उनके खुलते ही भौरे लटपटाते हुए उड़ पड़े हों। इस सुंदर उपमा द्वारा प्रस्तुत रमणीय प्रकृति निरीक्षण की तानसेन की क्षमता मनोहारी रूप में प्रस्तुत हुई है।

एक अन्य पद नीचे लिखा हो सकता है²—

(राग गौर सारंग, चौताला)

ऐसे नैनां अरुन बरन तेरे री पीय संग जागे रंग रस पागे ।
 सेत-सेत तारे कमल-दल-लोचन निरखि आनन कुल त्यागे ॥
 पलक पखुरीयाँ-सी मुदत चितवत ही मनो वांन से लागे ।
 पौहोप सरोवरि पांनप पूरे 'तानसेन' प्रभु अनुरागे ॥

दूसरे पद के शब्द 'कमल दल लोचन निरखि आनन कुल त्यागे' में कुल से आशय भ्रमरों के कुल से है तथा आभोग अर्थात् चौथे चरण के 'पौहोप सरोवरि पांनप' शब्दों का आशय जल से परिपूर्ण सरोवर से है जिसमें कमल फूल रहे हैं और उनके

1. अप्रकाशित 'रागमाला' से ।

2. पूर्वोक्त ।

खुलते ही भ्रमर उड़े और नयन-सरोवर में सिहरन आ गई। पूरे भरे सरोवर में थोड़ा-सा कंपन भी लहरों में सिहरन ला देता है।

बादशाह जहाँगीर पहला साहित्य-रसिक था जिसने तानसेन को कवि के रूप में मान्यता दी।

7. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय

आधुनिक विद्वानों में सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने सर्व-प्रथम तानसेन के कवि-रूप को स्थापित किया है। उन्होंने तानसेन के कवि-रूप के विषय में लिखा है¹—

“तानसेन एक प्रथम श्रेणी के प्रतिभावान कवि थे, यह बात बंधनों के बीच उनकी वाणी के सौंदर्य से प्रमाणित होती है। ध्रुपद में किसी एक प्रकार का धीरोदात्त और स्निग्ध गंभीर भाव विद्यमान है; इसकी गठन-शैली होती है विराट वास्तु-शिल्प की सी, परस्पर-प्रथित और सुसंबद्ध। वास्तुशिल्पानुरूप गुण के कारण तानसेन के ध्रुपद गीतों में एक उच्च कोटि की महिमा, एवं एक शुद्ध-संयत भाव आ जाता है; जो कि उनकी रचना-शैली की उदारता, उनके आभिजात्य एवं उनके शब्द-चयन की शक्ति से और भी पुष्ट, और भी समृद्ध, और भी उद्भासित हो उठते हैं। देवताओं की स्तुति में या इनकी महिमा के कीर्तन में विशेषण और नाम-शब्दों का प्रयोग तानसेन ने अपने पदों में किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें कोई महत्त्व और विशालत्व भरा हुआ है। दृष्टांत के रूप में पर-ब्रह्म, शिव या विष्णु-विषयक कुछ पदों का उल्लेख किया जा सकता है। पक्षियों के गाने और दक्षिण-पवन के साथ वसंत ऋतु का आनंद-मय रूप, पुरवी बयार, बादलों की घटा, बिजली की चमक, मेघ-गर्जन और बारि-पात के चित्र, मोहक स्निग्ध ध्वनि के साथ वर्षा ऋतु, विश्व प्रकृति को ज्योति से उद्भासित कर उप-काल में सूर्योदय, हिमालय की गोद में ध्यान-मग्न योगेश्वर धूर्जटी महादेव, श्री के साथ महासागर पर अनंत-शायी महाविष्णु, राधा और कृष्ण की शाश्वत अनैसर्गिक प्रेम-लीला—भारतीय काव्य-साहित्य में महिमा-मय तथा माधुर्य-मय जो भी कुछ हो, उन सबों से तानसेन के पद मानो भरपूर हैं। प्राचीन और मध्य-युग के हिंदू काव्य, ज्ञान, योग और भक्ति का मानो मंथन करके जो नवनीत निकला, वह तानसेन के पदों के स्वर्ण कटोरे में धर दिया गया है। ऋग्वेद के ऋषियों के समय से प्रारंभ कर भारत की प्राचीन तथा मध्य-युग की कवि-परंपरा के बीच तानसेन का स्थान सुतरां गौरवमय है।”

1. सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, कविवर तानसेन, सम्मेलन पत्रिका, संवत् 2003। इस अभिमत के विषय में प्रभूदयाल मोतल ने ‘संगीत सम्राट तानसेन, जीवनी और रचनाएं’ (पृष्ठ 40) में लिखा है कि निश्चय ही यह तानसेन के काव्य की उसी प्रकार अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशंसा है, जिस प्रकार ‘आइने-अकबरी’ और ‘बीरभानूदय काव्यम्’ में उनके संगीत की है। निश्चय ही विद्वान लेखक ने सम्मेलन पत्रिका का निर्बंध पढ़े बिना ही यह अभिमत दे दिया है।

—इकतीस— नीराजना

संगीत तन्मयता और आनंद की पराकाष्ठा की द्योतक चरम अभिव्यक्ति है और विश्व के समस्त प्राणियों की अपनी विशेषता है; यह तत्त्व तानसेन के पदों में पूर्णतः परिलक्षित होता है ।

महान गायक, श्रेष्ठ संगीत-शास्त्री, उच्च कोटि के कवि, अगाध भक्ति से परिपूरित, मंत्रद्रष्टा, संगीत-सम्राट तानसेन के विषय में पीछे अब तक प्रचुर परिमाण में लिखा जा चुका है । जिसकी प्रशंसा सम्राट अकबर ने की; जिसकी तान ने महाकवि सूरदास को विमुग्ध कर दिया; जिसकी काव्य-प्रतिभा पर जहाँगीर विमुग्ध हो गया; तथा आधुनिक विद्वानों ने जिसे संगीत-शास्त्री और कवि के रूप में स्वीकार किया—उस महान कवि, भक्त-गायक के विषय में और अधिक लिखना शेष नहीं रह जाता । शैशव-काल में वेहट के सघन निकुंज में कोयल की कूक सुन कर तानसेन का हृदय रस-सिक्त हो गया था और इसने उनके काव्य में मनोहारी रस की सृष्टि कर दी । गंभीर साधना, प्रतिष्ठा और प्रतिभा के सम्मिलन ने तानसेन के काव्य में अद्भुत गरिमा ला दी ।

तानसेन अनुकरणीय व्यक्तित्व से मंडित थे । अस्सी वर्ष के उनके लंबे जीवन की ऊँच-नीच और सफलताओं को एक स्थान पर संक्षेप में प्रस्तुत करना और भी दुरूह कार्य है । तानसेन अपने युग के सिद्ध-साधक तथा अलंकार-विधान और रस-रीति के मर्मज्ञ थे । अपने पदों के माध्यम से अपने आराध्य के प्रति अगाध रूप से अपने-आपको समर्पित करते हुए उन्होंने रस-निष्पत्ति करने-वाले अनेक मनोहारी पद लिखे हैं । तानसेन निर्गुण और सगुण भक्ति के समर्थ कवि थे । उनके लय, ताल, भाव-संवेद, अलौकिक आनंद-दायक थे । तानसेन मूर्छना पद्धति तथा मेल-ठाठ पद्धतियों में निष्णात थे ।

तानसेन के कुछ पदों में वेदों की उद्गीथ ऋचाओं की समता प्राप्त होती है ।

पीछे दिए गए विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि वे अत्यंत निर्भीक व्यक्ति थे—निरे सम्राटों, महाराजों या राजाओं के चाटुकार नहीं थे; राज-स्तुति के उनके पद बहुत कम मिले हैं ।

इतने महान् होते हुए भी वे अत्यंत सरल, अहंकार-रहित, मृदु स्वभाव के थे । सतत परिवर्तनीय परिस्थितियों के अनुरूप अपनी प्रतिभा के प्रयोग में उन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई ।

तानसेन की श्रेष्ठता का मुख्य कारण उनकी प्रगतिशील एवं रचनात्मक प्रतिभा थी। अवसर और श्रोताओं की रुचि के अनुरूप पद-रचना तथा प्रस्तुति में परिवर्तन कर वह अपने गायन को सर्व-प्रिय बनाने की असीम क्षमता रखते थे। उनका गायन अकबर को, जो स्वयं श्रेष्ठ कवि तथा गायक था, उसे भी आह्लादित करता था और ध्रुपद गायन के मर्मज्ञ, रसिक-शिरोमणि स्वामी हरिदास को भी; शेख सलीम चिश्ती उनके गायन से आध्यात्मिक शांति की उपलब्धि करते थे, बीरबल जैसे वाग्विदग्ध व्यक्ति तथा कवि भी उनके गायन से आनंदित होते थे; तथा रहीम जैसे परम वीर तथा रसिक कवि भी उनके गायन से रस ग्रहण करते थे। बादशाह जहाँगीर ने उनके कवि-रूप की भूरि-भूरि अभ्यर्थना की। एक ओर तानसेन दौलतख़ाँ जैसे निष्कण्टक रुचि के व्यक्ति का भी रंजन करने में समर्थ हुए, दूसरी ओर वे राजा रामचन्द्र वघेला जैसे उदात्त प्रकृति के व्यक्ति को भी मंत्र-मुग्ध कर सके।

गायक के रूप में अपने विकास के क्रम में तानसेन ने कभी जड़ता नहीं आने दी। वे निरंतर गायन-कला में सुधार करते रहे, और उसे अधिकाधिक लोक-रंजक तथा अलौकिक बनाते रहे। राग-रागिनियों में भी उन्होंने अनेक सुधार किए और दरबारी ठाठ से गाने योग्य नवीन रागों का आविष्कार भी किया। इसके साथ ही वे पद-रचना की पटुता और गायन के अद्भुत आकर्षण को समान रूप से बनाए रहे।

तानसेन ने मानसिंह तोमर की संगीत-शाला का यश भारत में ही नहीं, संसार के अनेक देशों में फैलाया। अपने गुरु वैजू तथा बख्शू की कीर्ति को कठोर साधना के आधार पर अत्यधिक विस्तृत कर अपना गुरु-ऋण चुकाया। वे ग्वालियर की भूमि से उद्भूत जाज्वल्यमान बहुमूल्य मणि थे, जिसकी प्रभा ने सर्वत्र अपनी अलौकिक आभा को विकीर्ण किया। सहस्र दीपों से उनकी नीराजना करना भारत की वर्तमान और भावी पीढ़ियों के द्वारा उनके राष्ट्रीय दायित्व की पूर्ति होगी।

अनुसूची-1 व्यक्ति-अभिधान

अ	अमीर खुसरो, हजरत	14, 210, 223
अकबर, जलालुद्दीन मुहम्मद, बादशाह,	अयोध्या प्रसाद पखावजी	144
सम्राट 2, 10, 23, 26, 27,	अलीखाँ	28
28, 32, 34, 35, 36,	अली, हाफिज ख्वाजा	52
37, 40, 44, 45, 46,	अशरफखाँ	188
47, 48, 49, 50, 51,	असदवेग	104
53, 54, 55, 56, 57,	आ	
58, 59, 60, 61, 62,	आकिलखाँ	82
65, 66, 67, 68, 69,	आजम हुमायूँ	21
70, 71, 72, 74, 75,	आसकरन कठवाहा	112
78, 79, 81, 85, 86,	इ	
88, 89, 90, 91, 92,	इब्राहीम आदिलशाह	104, 105, 210
94, 95, 99, 100,	इब्राहीमखाँ सूर	25, 26, 27
101, 102, 103, 104,	इब्राहीम लोदी	19, 21
105, 106, 108, 109,	इन्द्रजीत	72, 73, 103
110, 111, 112, 114,	इशशाक (इशहाकखाँ) ढाड़ी, मुल्ला	51, 82
115, 116, 117, 119,	इस्लामशाह सूर	23, 24, 25, 105
120, 122, 123, 135,	ए	
136, 137, 138, 140,	एलिजाबेथ (प्रथम)	104
141, 142, 143, 171,	औ	
180, 183, 184, 198,	औरंगजेब	81, 128
199, 213, 224, 225,	क	
228, 229	कजोरीराय	146
अगरचंद नाहटा 146, 150	कबीर	119, 143
अजीतसिंह 22	कमला	3, 4, 5, 20, 131
अनूपसिंह, राजा 149	कमलादेवी	10
अबुलफतह (शेख गूरान) 22		
अब्दुल्ला, मीर 52		
अमरसिंह, राणा 102, 103		

कल्याणमल्ल तोमर	10, 128	जगन्नाथ कविराय	2, 82, 83,
कल्लिनाथ	211		225
काशीनाथ मिश्र	17	जयकीर्ति	77, 152
कासिम (कोहबर)	51	जयदेवसिंह, ठा०	144
कियाखाँ	27	जयशंकर प्रसाद	201, 202
कीर्तिसिंह	22, 28, 29	जयसिंह, मिर्जा राजा	135
कृष्ण कवि (विहारी सतसई के टीकाकार)	154	जलालखाँ कुर्ची	40, 41
कृष्ण कवि (राधाकृष्ण)	146, 219,	जहाँगीर (शाहजादा सलीम)	57,
	220		62, 82, 86, 88, 89,
केशवदास	4, 17, 72, 73, 74,		103, 120, 147, 225,
	76, 103, 130, 143,		226, 227, 228
	150, 153, 158	जैनखाँ	40
क्षेमशाह	19	जैनुल आबेदीन	52
ख		जोधाबाई (मरियम मकानी)	28,
खिजरखाँ	82		62, 89, 108, 120
खूबचन्द	17, 73, 75, 76	ज्ञानदेव (संत)	129
ग		ट	
गंग	143	टोडरमल, राजा	53, 73, 74,
गंधीरसिंह	76		103
गणेशकुँवरि	73	ड	
गोपाल (नायक-देवगिरि)	13	डूंगरेन्द्रसिंह तोमर, महाराज	128, 213
गोपाललाल, नायक	13, 14,	त	
	15, 16, 17, 43,	तन्ना (तानसेन)	2, 3
	143, 149, 224	तन्नु	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7,
गोपाल लाहौरी	76, 77		19, 98, 133, 142
गोवर्धनलाल	145	ताजखाँ किरानी	25
गोविन्द स्वामी	111, 112	तानतरंग (तानसेन का पुत्र)	13,
च			20, 51, 52, 53,
चर्चू	13, 19, 23, 24,		81, 82, 83, 84,
	25, 51, 53, 82		85, 86, 137
चाँदखाँ, मियाँ	52, 82, 137	तानतरंग (नर्तकी)	1, 11,
ज			12, 13
जईनखाँ कोका	69, 70	तानसिंह	2, 19
जकरिया मुल्तानी	210		

तानसेन	कुछ पृष्ठों को छोड़ कर शेष सभी पृष्ठों में तथा सभी पदों के आभोग अर्थात् चौथे चरण में ।	नाभादास	113
ताना	55, 56	नारायणदास	10, 143
ताशवेग	52	नारायण पुजारी	132, 133
तुलसीदास	98, 102, 143, 170, 183, 184	निजामुद्दीन चिश्ती, शेख	95
तोम	55, 56	नियाजी शेख	119
त्रिपुरदास (पतरदास), रायरायन	104	नूरजहाँ	75
त्रिलोचन (तन्नु-तानसेन)	1, 2, 3, 6	नृसिंहदेव तोमर	22, 138
थ		प	
थेघनाथ	128	पतरदास (त्रिपुरदास)	104
द		पतिराम सुनार	103
दलपतिराय	150	पद्मावती	80
दाऊद ढाड़ी	51	पांडे, नायक	82
दाहू	119, 143	पीरजादा	52
दावन, शेख	51	पीरबख्श	88
दिलीपचन्द्र वेदी	92	पृथ्वीराज राठौर	95
देवी	82	प्रचंडराइ	9
देवेन्द्र भट्ट	217	प्रताप, राणा	54
दोस्त उस्ता	51	प्रबोधतरंग	11, 12, 13
दौलतखाँ उजियाला	23, 24, 33, 105, 137, 141, 229	प्रमोदतरंग	8, 9
घ		प्रवीणखाँ	51, 52, 137
धुरमंगद	138	प्रवीणराय	72, 73, 74, 103
न		फ	
नंददास	111	फकीरुल्ला	14, 81, 83, 150, 162, 163, 210, 217, 224
नयचन्द सूरि	152	फीरोजशाह सूर	24
नरहरि महापात्र	23, 24, 25, 102	फीरोजा (पिरोजाराइ)	19
नवाबखाँ	82	फैजी, कविराज	56, 67, 94
नागरीदास	113, 115	व	
		बख्शू	1, 2, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 18, 19, 20
		बख्तखाँ	52, 104
		बदरुद्दीन मुहम्मद अकबर	27
		बहराम कुली	52
		बहाउद्दीन शेख	210

वहादुरखाँ	88	महमूद लोहंग	13, 19, 142
बाणभट्ट	216	माधव, कवि	12, 224
बाबर	22, 23, 110, 183	माधवसिंह	78, 79
बिहारी, कविवर	4, 28	मानसिंह कछवाहा, राजा	53, 63, 78, 79, 91
बिहारीमल (राजा)	28, 50, 154	मानसिंह तोमर	1, 2, 3, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 39, 52, 91, 93, 94, 103, 105, 107, 109, 113, 128, 139, 142, 143, 165, 180, 210, 213, 224, 229
वीरवल (महेशदास)	3, 57, 69, 70, 71, 73, 74, 82, 95, 103, 133, 229	माहम अनका	28
बुरहानखाँ फारुकी	79	मिसरीसिंह (मिसरीखाँ)	80, 81
बैजू	1, 2, 7, 13, 15, 19, 20, 43, 55, 82, 113, 115, 139, 142, 143, 149, 171, 209, 210, 211, 224, 229	मीराबाई	143
वैरमखाँ	27, 28, 66, 75, 117	मुकुन्ददेव	23
भ		मुबारक, शेख	94
भगवान (नायक)	82	मुल्ला-दो-प्याजा	53
भत्तू (बैजू)	82	मुहम्मद अमीन	52
भवभूति	216	मुहम्मद आदिलशाह	24, 25, 26, 27
भानुचंद्र उपाध्याय	58, 198	मुहम्मद करम इमाम	30, 99
भिखारीदास	153	मुहम्मद गौस	5, 18, 22, 23, 29, 30, 116, 136, 137, 138, 140
भीमसिंह	219	मुहम्मद फाजिलखाँ खालियरी	81
म		मुहम्मद महमूदखाँ शेरांनी मौलाना हाफिज	152
मकरंद	3, 4, 5, 6, 7, 131, 133, 134	मुहम्मद सालह	152
मजनुखाँ	28	मुहम्मद हमीद लाहोरी	152
मतिराम	155, 156	मुहम्मद हुसैन	52
मदनखाँ	82	मेराज धौलपुरी	92
मदनराइ	1	मोतमिदखाँ	128
मधुकरशाह	54, 73	मोहम्मद खाँ ढाड़ी	51
मरियम मकानी (जोधाबाई)	28, 62, 89, 108, 120		
मरियम मकानी (हमीदा बानू)	26, 27, 68		

मोहनराइ (पात्र)	19	लाला	82, 86
य		सूअर्ड केप्टिन	68
यूसुफ, उस्ता	51	व	
र		बल्लभाचार्य (महाप्रभु)	102,
रंगसेन	51, 52		110, 111, 112, 152
रघुनाथसिंह, राजा	88	वाजिदअली शाह	99, 100
रहमतुल्ला	51	वायजीद (वाजबहादुर)	25, 51,
रहीम (मिर्जाबाँ, खानखाना)	53,		82
71, 73, 74, 76, 77,		विक्रमादित्य (उज्जयिनी)	53
78, 102, 103, 143,		विक्रमादित्य तोमर	2, 11, 19,
152, 171, 184, 229			20, 22, 27, 83, 92,
राघाकृष्ण (कृष्ण कवि)	146,		105, 107, 138, 180
	154, 219, 220	विचित्रखाँ	51
रामचन्द्र वधेला	2, 8, 10, 17,	विठ्ठलनाथ, गोस्वामी	110, 111
	28, 29, 30, 31, 32,	विन्सेंट स्मिथ	135
	33, 34, 35, 36, 37,	विलासखाँ	81, 82, 83, 86, 87,
	38, 39, 40, 41, 42,		88, 91
	43, 44, 49, 60, 66,	विष्णुदास, महाकवि	128, 143
	68, 69, 70, 71, 76,	वीरभद्र	68
	89, 93, 102, 103,	वीरभानु	68, 70
	105, 107, 141, 170,	वीरमंडलखाँ	51, 137
	171, 172, 180, 183,	वीरसिंहदेव तोमर	138, 152,
	225, 229		217
रामचन्द्र भट्ट	71	वीरसिंह नृपति	10
रामचन्द्र शुक्ल	45	वीरसिंह देव, बुंदेला	103, 104
रामदास, बाबा	19, 23, 24, 25,	श	
	81, 82, 92, 113	श्यामसिंह तोमर	103, 104
रामशाह राजा	72, 73	शाहजहाँ	83, 144
रामसिंह तोमर	27, 28, 138	शाह मुहम्मद उस्ता	52
रूपमंजरी (सम्राज्ञी)	111	शाहेब सरमदी, प्रो०	81, 82, 210
ल		शिहाबखाँ	51
लक्ष्मणसेन	2	शुजातखाँ	23
लक्ष्मीधर	217	शुभलक्ष्मी	135
लक्ष्मीबाई (शांसी की रानी)	222	शेखू बाबा	96, 120
लालखाँ	51, 81	शेरखाँ अफगान	23

शेरशाह सूर 23, 26, 28, 29,
68, 103, 137

श्रीज्ञानखाँ 51, 52, 137
स

संग्रामसिंह, राणा 17

सरस्वती (स्त्री) 80

सरोदखाँ 51

सलहदी 10

सलीम 120

सलीम चिश्ती, शेख 103, 119,
120, 121, 122,
139, 184

सावंतसिंह राजा (नागरीदास)
113, 115

सिकंदर लोदी 16, 19

सिकंदर सूर 141

सुबलसेन 82

सुभानखाँ 51, 82

सुधर्मा 138

सुन्दरनाथ 128

सुरज्ञानखाँ 137

सुल्तान हाफिज हुसैन 52

सुल्तान हाशिम 52

सूर्यसेन 2

सूरतसेन 82, 83, 89, 90

सूरदास (बाबा, गायक) 23,
51, 113

सूरदास (महाकवि) 54, 64,
102, 111, 112, 113
143, 185, 197

सूरदास मदनमोहन 113

सैयद अली, मीर 51

ह

हकीम हुमाम 51

हमीदा बानू (मरियम मकानी) 26,
27, 68

हमीर सेन 82

हरिदास डागुर 83

हरिदास स्वामी 6, 7, 18, 102,
108, 110, 113, 114,
115, 116, 171, 229

हरिनाथ 17

हरिराय 111

हसनखाँ ततबनी 82

हाफिज अली, ख्वाजा 52

हीरविजय सूरि 81

हुमायूँ 15, 23, 26, 27, 54,
68, 70, 75, 103

हुसैनशाह शर्की 210

हेमचन्द्र विक्रमादित्य (हेमू) 26,
27, 66

अनुसूची-2

स्थान-नाम

अजमेर	115, 123	कालंजर	22, 23, 28, 29, 39, 68
अमरकोट	26, 27	कालपी	71, 222
अयोध्या	73, 118, 183	किशनगढ़	113, 116
अलीगढ़	81	खंडार	213
अवध	99	गुजरात	10, 18, 23, 55, 61, 66, 75, 115, 116, 152, 209
अहमदाबाद	55, 56	गोकुल	110, 112, 143
आंतरी	111	गोपाचल	3, 4, 5, 10, 53, 54, 86
आगरा	1, 10, 22, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 41, 51, 52, 72, 78, 94, 97, 110, 112, 117, 120, 137, 141	ग्वालियर	1, 2, 4, 5, 6, 7, 10, 13, 16, 17, 19, 21, 22, 23, 24, 26, 27, 28, 29, 30, 39, 40, 49, 51, 52, 86, 89, 98, 107, 110, 111, 112, 113, 116, 117, 118, 128, 131, 132, 135, 137, 138, 140, 141, 142, 150, 154, 168, 222, 224, 229
आमेर	28	चंबल क्षेत्र	22
आराकाण (दक्षिणी बर्मा)	138, 151	चित्तौड़	28
इंग्लैंड	104	चुनारगढ़	5, 25, 26
इलाहाबाद	28, 68	चौसा	23
ईरान	23, 26, 150	जयपुर राज्य	219
उदयपुर	28	जौरा अलापुर	16
उनियारगढ़	219		
ओड़छा	4, 29, 72, 73, 74, 117, 118, 143, 150, 153, 154		
ओड़ीसा	23, 26		
कन्नोर	27		
कन्नौज	23, 68		
कश्मीर	52		
कांगड़ा	71		

झाँसी	222	भिड	221
दिल्ली	14, 16, 26, 27, 81	मक्का	119
	92, 108, 115, 122	मथुरा	186
द्वारका	10	मदीना	119
नरवर	112, 221	मशहद	51, 52
पंजाब	27	महाराष्ट्र	152, 222
पानीपत	22, 183	मांडू	15
फतेहपुर	55, 56, 68, 69,	मानगढ़	78
	70, 71, 112	मानिकपुर	28
फ्रांस	99, 100	मालवा	23, 51
बंगाल	2, 88, 91, 144	रणथंभौर	28
बंबई	107	राजस्थान	26, 152
बड़नगर	56	रामपुर	81, 144
वांघवगढ़	29, 30, 32, 35,	रीवा	68, 145
	68, 69, 71, 76,	रोहतास	26
	107, 112, 149	लखनऊ	144
बिहार	2	लाहौर	85, 92
बीकानेर	149	विष्णुपुर	88
बीजापुर	210	वृंदावन	18, 114, 115, 141,
बुंदेलखंड	161		189
बेहट	5, 7, 131, 133, 228	वाराणसी	144
ब्रज	186, 187, 195	शाहाबाद	68
भटगोर (रीवा)	29	सवाई माधोपुर	213
भांडेर	154	साबरमती	55
भारत	1, 11, 26, 28, 36,	सारंगपुर	10
	43, 49, 51, 53, 67,	सीकर	26, 47, 55, 56, 68
	75, 98, 99, 106, 110,		70, 112, 119, 120,
	116, 119, 129, 131,		139
	136, 137, 138, 140,	हिरात	51, 52
	142, 148, 150, 151,		
	154, 195, 210, 221,		
	224, 229		

अनुसूची-3

तानसेन के पदों के स्थायी, अर्थात्, प्रथम पंक्ति

अंजन रेख ताटक निकट सोहत	64
अंतकाल कृपा करी, हिया पर हरि ठाढ़ी	97
अकबर आयी री आली सवन सुनत यौ	56
अगम अपार नाद सागर की राह तामैं तुम जिहाज मान	33
अवल चक्रवर्ती बघेली चकत्ता नरेश	32
अद्भुत अनूप रचि-पचि कर विचार, नाद मंदिर बनायौ	160
अनहद शब्द उपज्यौ मो घट में, ताको ध्यान धरूँ अष्टयाम	211
अन्हात जिनि बार खसै, सोहत बर्न बार लौं होये तुमको	54
अब मैं राम-राम कहि टेरौं	182
अरी या तन कौ मति कर मान	192
अरी हम जात रहैं डगरी-डगरी, यहि गगरी सीस धरें मग री	187
अहो टेढ़ी पागरि नागरि नारि सीस धरें जैसैं	154
आज कहा तजि बैठी हौ भूषन, ऐसेई अंग कछु अरसीले	155
आज कान्हू वृंदावन मुरली बजाई सुखदाई है	190
आज जनम सफल भयौ 'तानसेन' बाबा हरिदास हाथ पकड़्यौ	17,115
आज तो सखी री देखौ रामचन्द्र छत्रधारी	41
आनंद भयौ आज, आयौ विजय कर, घर-घर मंगलचार	66
इंदु से बदन, नैन खंजन से, कंठ कोकिल वचन सुहाई	157
इत भानु, उत साह अकबर, दो दरस जो देखैं	58
इन अँखियन बिरह की बेलि बई	166
ईद मुबारक हौवै जुग-जुग नित-नित, तुम कौं महरबान	66
उठि प्रभात सुमरियै, जै श्री गणेश देवा	176
अँकार ब्रह्मा उचार्यौ चारौं आनन तार करन सप्त प्रमान	211
ए आज कौन बन चराई एती गैयाँ, कहाँ धौं लगाई एती बेर	164
ए आयौ, आयौ के बलवंत साह, आयौ छत्रपति अकबर	55
ए आयौ, आयौ मेरे गृह छत्रपति अकबर, मन भायौ करम जगायौ	57
ए ईश्वर ! मो हिय की जानत	96
एक कर दरपन, एक कर कजरा, अचरा गहँ सुधारत	161
ए तुम सजि-सजि दल चढ़त जब भूमि पर भार होत	36

एकदंत, गजवदन, विनायक विघन-विनासन हैं सुखदाई	177
ए दारू पिलाउ कलाली	67
ए मन, जब लगि नैन प्रान, तब लगि नियत सब काहू की दीदार	130
ए मन, तू जो अपनों सुख चाहत है	183
एरी आज बांसरी बजाई वन मध्य, कौन ढंग कौन रंग फूँकि-फूँकि	191
एरी आली ! आज सुभ दिन गावहु मंगलचार	57
एरी गँवारि ग्वारि, तू कहा जानै री गोपन कौ मरम	197
एरी तू अंग-अंग रंगराती अति ही सयानी री तू	64
ए ही सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्छना	207
ऐसे नैनं अरुन वरन तेरे री पीय संग जागे रंग रस पागे	226
ओढैं सारी प्यारी, केसर के रंग छिरकी-छिरकी	195
कठिन माई पिय की री नेहरा, गेहरा नहीं भावै, रहों नित उदास	194
कराल बदनी काली, त्रिसूल-खप्पर सोहै, चंडी असुर संहार कारन	126
कही जी तुम कौन हौ, कहाँ तैं आए, कहाँ कित हो जाओगे सवेरे	189
कान तेरे बिन देखैं गईयाँ काजरी-पीअरी धौरी-धूमरी दूबरी	197
कान्हा ओलरि आयी हो बरसि-बरसि रिमि-झिमि रस बूंदन	159
कान्हा तैं अब घर झगरौ पसारौ, कैसैं होय निरबारी	191
कासी, कास्मीर, कामरू, करनाटक, बूंदी, बूंदेलखंड	54
कुबिजा कौ राज री न्याव ये, जासौँ गोविंद बोल बोलैं	169
कुबिजा तैं काहे न मगल गावै, मंगल गावै	169
केते बंद-छंद करत, दु टौना वारें कान्हा सुंदर नंददुलारे	186
कैसे आछे सोहत लाल, कैसे मुकुट सीस	185
खंजन नैन सुरंग रसमाते	64
गगन-मंडल-मध्य उदयाचल पर अष्टवाजि	202
गढ़ गोपाचल रे	3
गए मेरे सब दुःख, देखे तैं आप दरस	30
गावत सुघर गुनी-गंधर्व, सुद्ध मुद्रा संगत सौँ नाद	213
गुन समुद्र कलपतरु अकबर करतार हो बजावै	48
गोवरधन गिरिधर गुपाल गजाधर गरुरापति गरुरगामी गोविंदे गोपीनाथ	181
ग्वालिनि घूँघटवारी खेलन जौ आवैं	195
घन न हौई री माई जे आई मो पर मनमथ की फौजें धावन	159
घर-घर तैं ब्रज बनिता जो बन निकसीं आज	195
चंद्रबदनी मृगनयनी ता मधि तारका गंग	178
चंद्रबदनी, मृगनयनी, हंस गमनी, चली है पूजन महादेव	182
चटक चित्र मित्र हू मिलत अमल	59

चढ़ी चिरंजीव साह अकबर साहनसाह	59
चली जाय पूछियै हरि के समाचार	198
चल्यो नहीं जात, अंग भीजे जात प्रसेद माँझ	193
छत्रपति राजा मान, चिरंजीव रहौ जौलों ध्रुव-मेरु-तारो	8
जगत-जीवन सवितादेव अस्ताचल में जात	203
जगत-जीवन हो प्रभु, भगत-वच्छल तू ही भगवान	180
जनम यौही गँवायो बावरी, अब गहै न हरि के चरनन	39
जब करतार करम करै तो सब कछु पावै	174
जागै जोगी, भोगी कहा जागै	129
जिन करौ मोसैं झूठी-झूठी बतियाँ	192
जेई-जेई वचन कहत हौं री तोसैं	167
जै गनेस जै गनेस जै गनेस देवा	176
जै-जै कर पूजी धोलागढ़ की रानी नैं	74
जै शारदा भवानी, भारती विद्यादानी, महावाक्वानी, तोहि ध्यावैं	179
जै सूर्य जगच्चक्षु जगवंदन जगन्नाता जगत्कर्ता जगन्नाथ	199
जो गुनी जन गुरु पावै, गावै नीकी तान, गुन सौं रिझावैं	210
जोबन के जोर तोर कैसैं समझाय राखूं	188
जौ धुरपद ना सुध अछिरनि उक्त-जुक्त न संगीत, राग बनावै	213
ज्ञानवंत कौ रस अगम बुद्धि दैनी तू	179
टोड़ी रागिनी अलापत गावत, बीन बजावत, उपवन मिरग रिझावत	223
तखत बैठी महाबली ईश्वर होय अवतार	50
तन की ताप तब ही मिटैगी मेरी, जब प्यारे कौं दृष्टि-भर देखींगी	168
तिमिर हरन प्रभात कर दिनकर तेजसकर	58
तुअ समान को दूजौ रच्यो नाहन गुन समर्थ न आयो है	140
तुम रब, तुम साहेब, तुम ही करतार	121-173
तुम राजा राम, कहा जानत काज अरु कान	36
तुम हो गनपति देवा बुधिदाता, धरै सीस गज तुंड	177
तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही महादेव, तू ही गुरु, तू ही चेला	158
तेरी गति-औगति मोपै बरनी ना जात नारायन निरंजन	96
तेरो आली रूप, पिय के मन को खिलीनो	63
तैं कहूँ देखो री आली, नंद-नंदन कूँअर कान्ह	194
तैं कहूँ देख्यो री बनमाली आली, बंसी बजाय मन लै गयो	194
त्रिवेनी उलटि बही मानों तिरछी चितवन त्रिया पिया तन देखी	158
दया कर दयानी, सो राग-रंगत सौं गाऊँ, उत्तम बानी	182
दीजियै जू हमें ब्रज बसिबो, बांसुरी न बसै	198

देख सखी पवन पुरवैया, ठौर-ठौर रुखन कौ हलवौ	205
द्रगन मेरे जौलों सुख होय, तौलों देखिवौ करौं तिहारो आनन	39
धन-धन मोरे भाग, भोर भएँ आये लालन, सब निसि कहाँ जागे प्यारे	165
धनि-धनि घरनी धरें साहि अकबर	53
धरिनी-धरन, अधरन-दाता विधाता, विश्व-भरन-पोषन	174
धर्म कर्म की अलाप हार सम्हारी	32
धीरें-धीरें-धीरें मन, धीरें ही सब कछु होय	62
धैवत, पंचम, मधिम, गंधार, रिखव, खरज, सुर साधि-साधि	208
धौरी-धूमर पीयरी-काजरी कहि-कहि टेरे	187
नाचत चपल चंचल गति, धन मृदंग रस-भेद सौं बाजत	161
नाद अगाध बहुत गये हैं साध	212
नाद विस्तार किनहूँ ना पायौ पार	15
नाद समुद्र कौ पार न पायौ, सुनियत गुनी कहायौ	13
नाम लेत दुख टरत मौम दिल खवाजा	121
नील बरन फहरि दुकुल रही घटा सी	193
नैन सलौने री तेरी, नैनन ही हरि बस कियो, हरि बस कियो	192
परस्पर दंपति मिल करत सिंगार	63
पाई विद्या मैं परम, पुनि पाई है और अलख माई है	114
पाक मुहम्मद अल्ला रसूल तेरो ही नूर जहूर	121
पार नहीं पाइयै गुण समुद्र अथाह कौन विध तरियै	179
पिय के आवन कौ सो अब मैं आगम पायौ री माई, री माई	167
प्यारे ! तु ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही रुद्र, तू ही गुरु, तु ही चेला	159
प्रथम नाद सरसुती गणपति बुद्धि-दाता	180
प्रथम ही आनंद रच्यौ नीकी धरी महरत पाँचौ सब्द बजाये	36
प्रबल दल साजे झुक झूम या झूम पर	196
प्राण मेरी ही रोवत है विरह प्राण-वल्लभ निसिदिन	97
बाजत नीकें घुंघरियाँ, ठुमकत चाल सहेली	77
बादर आए री लाल, पिया बिन लागे डरपावन	166
बानी चारों के ब्यौहार सुनि लीजें हो गुनीजन	212
भाँति-भाँति के भाँड़े गढ़े, ऐसी विधना कुम्हार	174
भोर भयें भैरव गावत भर मुरली में, श्री वृन्दावन मधि.बनवारी	79
भोर ही भैरव राग अलाप्यौ, हो प्यारे ! बंसी में तान	79
मगन रहौ रे दालिद्र हरन, क्यों ना भजै निरंजन	35
महागनेस कहत सुख चैन	178
महादेव देव देवनपति ईस सुरेस नीलकंठ शिव	126

महादेव महाकाल धूर्जटी शूली पंचवदन प्रसन्न नेत्र	126
महादेव सिव सिंभू महाबली महारूप महापति मंत्र सुरगुड सिंगी	181
महाबाक्वानी बरदानी सनमुख हूजें आहूजें	178
माई-री माहावट कठिन मिलि बिछुरे की है पीर	197
मुरली बजावै, आपुन गावै, नैन न्यारे नचावै	190
मुरली बजावौ रिझावौ मनमोहन, मधुर-मधुर सुरतान	190
मुरारे त्रिभुवनपते, इंद्र सुरपते, शेषनाग है फनपते	60
मुहम्मद नबी हबीब अल्लाह के साह मदनि	122
मेरी आली री, सावन की रैन	167
मेरें मन माहि हरिनाम, जिन रच्यौ अखिल धाम	175
मेरें तौ सरसुती घट-घट भरि पूरी रही, नाव धरौं बाक्वानी	178
मेरी मन मोहि लीनी सुंदर नैन, रैन चैन परत नाँही बनवारी	189
मोसौं रूसनौ हो किन करत हौ प्यारे	24
मोहनलाल दयाल कृपाल कृपा कीजें तुम्हें कहाँ हम पावें	169
मोहन सृष्टि के आधार, जन कौं अब राखि लीजें गोपाल	193
मोह लेत पिय कौ मन तेरे नंना प्यारे	12
मोहि जागत भएँ चैन न रहै नैनन	194
रमकि झूलत हैं री, लाल-वाल रहसि-रहसि संग	161
राजन के राजा महाराजाधिराज	38
राजा राम निरंजन देस निरंजन	70
रिमझिम बरसैं आज बदरवा, पिया बिदेस	166
रुम-झुम भरि आये री नयना तिहारे	157
रूप निरंजन अंजन रहित, ताहि बरनिबे कौं	173
रे मन जब लगि, तब लगि जग नाती	175
लंबोदर, गजानन, गिरिजा-सुत गनेस	177
लाल के संग ललनि रैन जागी और लाल लोइनि	226
लाल मया के बुलाई, सौतिन दुख पायी	168
लै चली हो गोरस वेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल	187
लोयन लाल, चुनरी लाल, बूटे छूटे सबुज लाल	186
विद्याधर गुनीअनि सौं क्यों अरीऐ, गुन चरचा की लराई लरीऐ	214
विद्या में नाद बिकट, शास्त्रन में न्याय बिकट गढ़ में लंका बिकट	214
शंकर महादेव, देव सेवक सब जाके ।	181
शिव शक्ति अनादि आदि भवानी दयानी	125
षरज साधैं गाऊँ, मैं सवनन सुनहुँ सुनाऊँ	212
सघन वन छायाँ, द्रुम बेली माघी-भवन	78

सब मिलि करी अनेग रंग की अब आई हो रितु वसंत	204
सब समूह करि हितु नर-नारी हरषित लै	56
सब्द प्रथम औंकार वर्ण प्रथम आकार जाति प्रथम ब्राह्मण	34
सरस सुंदर रितुराज वसंत आवत भावन, कुंज-कुंज फूले फूल	204
सर्वमनि अल्ला बडेनमनि खुदाई जोतमनि नूर	61
सर्वमनि ब्रह्मा ताकौ रच्यौ संसार पुरुषमनि पुरुषोत्तम अवतार	61
सर्व ही मांगत जो हौं री माई, आगम भयौ आवन परस	183
साई, तू न आवै आज, आधी रात माझ-माझ सिहनी जगावै सिंह	166
साके कौ विक्रम, दैवे कौ बलि-करन, वेद सम जाहि ज्ञान	70
साह अकबर कौ रिझायलै री, मान किये तैं कहा पावंगी	9
सुंदर अति प्रवीन महा चतुर अचल राज करी	31
सुंदर छवि छाजत राजत मोहन, कहा कहाँ रूप की निकाई	196
सुभ दिन सुभ घरी सुभ महूरति	66
सूरन-मनि जती-मन राजाधिराज	69
सोहत कामिनि उत्तम रूप पहिरत सम्हार	62
सौंहें खात तोतरात, बात करत अरसात	165
स्याम घनस्याम घन उमड़-छुमड़ आये	205
हमारे लला कैं सुरंग खिलौना, खेलत कृष्ण कन्हैया	185
हार हमेल सौं नीकी लागत, और गोरे हाथन चूरी हरी	12
हिंदूनी कबहूँ जनन कहाँ रे, तुरका संग तुरकानी भयेली	77
हेम किरीटिनी उषा देवि कनक-वरनी सविता-गेहनी	201
हेली, चलौ देखौ री चित-चोर	189
है यह मानिनी मनायवे कौं अति ही हुलास जिय	188

अनुसूची-4 संदर्भ-ग्रंथ

श्री अगरचंद नाहटा

मानकुतूहल के एक अध्याय की उपलब्धि; मध्य-
भारत संदेश, ग्वालियर; 5 जुलाई 1955 ।

अल्लामी अबुलफ़जल

1. अकबरनामा, हेनरी वेवरिज द्वारा अँगरेजी अनुवाद (तीन भाग)—1902-21; भारत में पुनर्मुद्रित—रेयर बुक्स, दिल्ली; 1973 ।
2. आइने-अकबरी : (क) प्रथम भाग; एच० ब्लाचमैन द्वारा अँगरेजी अनुवाद (1873); लेफ्टि० कर्नल डी० सी० फिल्लोट द्वारा संशोधित तथा संपादित एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के 1927 संस्करण का पुनर्मुद्रण; (ख) द्वितीय तथा तृतीय भाग; कर्नल एच० एस० जेरेट द्वारा अँगरेजी अनुवाद (1891); सर जदुनाथ सरकार द्वारा संशोधित रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के 1948-49 संस्करण का पुनर्मुद्रण; ओरिएंटल बुक्स रिप्रिंट कार्पोरेशन, नई दिल्ली, 1977-78 ।

डॉ० आर० के० श्रृंगी

शाङ्गदेव-कृत संगीत रत्नाकर का अँगरेजी अनुवाद; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली; 1984 ।

मुल्ला अब्दुल काविर बदायूनी

मुंतख़बुत्तवारीख़ : (क) भाग 1; जार्ज एस० ए० रेंकिंग द्वारा अँगरेजी अनुवाद (1898); (ख) भाग 2; डब्ल्यू० एच० लो द्वारा अँगरेजी अनुवाद (1884); (ग) भाग 3; सर वोल्जली हेग द्वारा अँगरेजी अनुवाद; तीनों भाग ब्रह्मदेव अंबष्ठ्य द्वारा संशोधित तथा परिवर्धित; रिनेसॅन्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; भारतीय संस्करण 1986 ।

- सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह कितावे-नौरस; संपादक-डॉ० नसीर अहमद, एम०ए०, पी-एच०डी०; संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली; 1956 ।
- श्री ईश्वरी प्रसाद तानसेन; संगीत कार्यालय, हाथरस; 1942 ।
बी० ए०
- कजोरीराय रागमाला (अप्रकाशित) ।
- श्री कार्ल खंडालवाला ललित कला (संपादकीय टिप्पणी), अंक 1-2 : अप्रैल 1955-मार्च 1956; ललित कला अकादमी, भारत, नई दिल्ली ।
- महाकवि कालिदास कुमारसंभव ।
- महंत किशोरीदास निजमत सिद्धांत; संपादक-महंत भगवानदास; प्रकाशक-लाला केदारनाथ; सन् 1911 ई० (संवत् 1968 वि०) में मुंबई से प्रकाशित ।
- श्री कृष्णानंददेव व्यास संगीतरागकल्पद्रुम, संपादक-नगेन्द्रनाथ बसु, भारतीय कला भवन ग्रंथालय, वाराणसी; बंगीय साहित्य परिषद्; 1914 ।
- महाकवि केशवदास केशव ग्रंथावली (तीन खंड); संपादक-श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद; 1954 ।
- आचार्य कैलाशचंद्र देव बृहस्पति 1. भरत का संगीत सिद्धांत; प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश; 1959 ।
एम०ए०, पी-एच० डी०, 2. मुसलमान और भारतीय संगीत; राज-
संगीत महामहोपाध्याय, कमल प्रकाशन, दिल्ली; 1974 ।
विद्यामार्तंड, साहित्य सूरि 3. ध्रुवपद और उसका विकास; बिहार-
राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना; 1976 ।
- आचार्य कैलाशचंद्र देव बृहस्पति संगीत-चिंतामणि; संगीत-कार्यालय, हाथरस; 1966 ।
तथा
- श्रीमती सुमित्रा कुमारी हुमायूँनामा-श्री ब्रजरत्नदास-कृत हिंदी अनुवाद
गुलबदन बेगम (द्वितीय संस्करण); नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी; सं० 2008 वि० ।
- गोपाल लाहौरी पादशाहनामा [श्री उमेश जोशी-कृत भारतीय संगीत का इतिहास (पृष्ठ 272 पर

- संदर्भित); मानसरोवर प्रकाशन महल,
फ़ीरोजाबाद; 1957]।
- गोपाल लाहौरी क्रिसन-रुक्मिणी-री-बेलि का हिंदी पद्यानुवादक।
- महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ भारतीय संस्कृति और साधना; बिहार-राष्ट्र-
कविराज भाषा-परिषद, पटना; 1977।
- गो० गोवर्धनलाल रागमाला; लहरी प्रेस, काशी।
- जयकीर्ति क्रिसन-रुक्मिणी-री-बेलि का हिंदी पद्यानुवादक।
- महाकवि जयदेव गीतगोविंद।
- बादशाह जहाँगीर तुजुक-ए-जहाँगीरी (मेमाइस ऑफ जहाँगीर);
एलेक्जेंडर रोजर्स तथा हेनरी वेवरिज के
अंगरेजी अनुवाद के रायल एशियाटिक सोसा-
इटी, कलकत्ता के 1909 संस्करण का
द्वितीय भारतीय संस्करण; मुंशीराम मनोहर-
लाल, दिल्ली; 1978।
- सर जार्ज ए० ग्रियर्सन माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान;
1889।
- जीतनसिंह रीवां राज्य दर्पण—लेफ्टि० कर्नल सी० ई०
लुअर्ड के रीवां राज्य गजेटियर (1907) के
आधार पर; रीवां राज्य का प्रकाशन;
1919।
- दामोदर (दल्ह) बिल्हणचरित; ग्वालियर के तोमर (द्विवेदी),
पृष्ठ 121 पर उद्धृत।
- दामोदर भट्ट संगीत दर्पण; संगीत कार्यालय, हाथरस;
1950।
- डॉ० दीनदयाल गुप्त अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय; सं० 2004।
- दौलत काजी सती मयना औ लोरचंद्रानी (श्री सत्येन्द्रनाथ
घोषाल देखें)।
- नयचंद्र सूरि हम्मीर महाकाव्य; राजस्थान प्राच्यविद्या प्रति-
ष्ठान, जोधपुर; 1968।
- श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी 1. संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ; साहित्य
भवन लिमिटेड, इलाहाबाद; 1955।

2. कवि तानसेन और उनका काव्य; साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद; सं० 2013 वि० ।

पुंडरीक विट्ठल

रागमंजरी ।

डॉ० प्रभुदयाल मीतल,

संगीत सम्राट तानसेन-जीवनी और रचनाएँ; साहित्य संस्थान, मथुरा; सं० 2017 वि० ।

साहित्यवाचस्पति,

डी० लिट० (मानद)

डॉ० प्रेमलता शर्मा

सहसरस; संगीत नाटक अकादेमी, नई दिल्ली; 1972 ।

एम०ए० (हिंदी), एम०ए०

(संस्कृत), साहित्याचार्य, पी-

एच०डी०, संगीतालंकार,

बी० म्यू०

फकीरुल्ला सैफख़ाँ

रागदर्पण; अनुवादक-डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी : मानसिंह और मानकूतुहल, विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर; सं० 2010 वि० ।

डॉ० फ्रांस्वाज़ देलवोआ नलिनी

पत्रों द्वारा ज्ञातव्य तथ्य ।

श्री ब्रजरत्नदास

रहिमन विलास; रामनारायणलाल, इलाहाबाद; सं० 1987 वि० ।

बख़्शू

सहसरस (डॉ० प्रेमलता शर्मा देखें) ।

भरत मुनि

नाट्य शास्त्र ।

भावभट्ट

अनूप संगीत रत्नाकर (अप्रकाशित) ।

मदनलाल व्यास

बंगाल की ध्रुपद परम्परा; ध्रुपद सम्राट श्री चंदन जी चतुर्वेदी स्मृति ग्रंथ; श्री चंदन जी चतुर्वेदी शताब्दी समारोह समिति, मथुरा; 1981 ।

मलिक मुहम्मद जायसी

पदमावत (डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल देखें) ।

माधव कवि

वीरभानूदय महाकाव्यम्; रीवां राज्य का प्रकाशन; 1938 ।

मिश्र बंधु

मिश्र बंधु विनोद; 1914 वि० ।

मोतमिद खाँ

इकबालनामा-ए-जहाँगीरी (मौलवी अब्दुल हाजी तथा अहमद अली; एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल; 1865); अकबरनामा

- (बेवरिज), भाग 2 के पृष्ठ 280 पर उद्धृत ।
- डॉ० मोतीचंद्र अग्रवाल ललितकला (संपादकीय टिप्पणी), अंक 1-2 : अप्रैल 1955-मार्च 1956; ललित कला अकादमी, भारत, नई दिल्ली ।
- मौलाना मोहम्मद हुसैन आजाद अकबरी दरबार (श्री रामचंद्र वर्मा देखें) ।
- श्री रमेशचंद्र बंदोपाध्याय बंगाल की ध्रुपद-परंपरा (श्री मदनलाल व्यास देखें) ।
- राधाकृष्ण (कृष्ण कवि) रागमाला (अप्रकाशित) ।
- श्री रामचंद्र वर्मा अकबरी दरबार (मौलाना मोहम्मद हुसैन आजाद-कृत) का हिंदी अनुवाद (तीन भाग); नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; सं० 2004 वि० ।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; 1997 तथा 1999 ।
- महापंडित राहुल सांकृत्यायन अकबर; किताब महल, इलाहाबाद; 1957 ।
- लैफ्टि० कर्नल लुअर्ड रीवा राज्य गजेटियर (जीतनसिंह देखें) ।
- डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पदमावत; मलिक मुहम्मद जायसी-कृत महा-काव्य की संजीवनी व्याख्या; साहित्य-सदन, चिरगांव; वि० सं० 2012 ।
- विन्सेंट स्मिथ 1. अकबर द ग्रेट मुगुल (द्वितीय संस्करण) ।
2. ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इंडिया एंड सीलोन; कॉडरिंगटन द्वारा संशोधित द्वितीय संस्करण; आक्सफोर्ड; 1930 ।
- आदि शंकराचार्य श्रीमहिषासुरमर्दिनीस्तोत्रम्; श्रीपीतांबरा पीठ, दतिया ।
- शाङ्गदेव संगीतरत्नाकर (डॉ० आर० के० श्रृंगी देखें) ।
- प्रो० शाहेब सरमदी रागदर्पण की अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की मौलाना आजाद लाइब्रेरी की प्रति से उनके द्वारा उतारे गए पाठ और उसके अंगरेजी अनुवाद से एक पत्र द्वारा सूचित तथ्य ।
- शिवसिंह सेंगर शिवसिंह सरोज; 1923 ।

श्री सत्येंद्रनाथ घोषाल

कवि दीलत काजीर सती मयना ओ लोर-
चंद्रानी; साहित्यप्रकाशिका से पुनर्मुद्रित;
प्रकाशक, मुद्रक तथा प्रकाशन का वर्ष अंकित
नहीं; प्रकाशन अनुमानतः 1956 के पूर्व ।

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल

अकबरी दरबार के हिंदी-कवि; लखनऊ विश्व-
विद्यालय; सं० 2007 वि० ।

डॉ० सुकुमार सेन

एम०ए०, पी०एच०डी०

बांग्ला साहित्येर इतिहास; श्री उपेंद्रचंद्र चट्टो-
पाध्याय द्वारा प्रकाशित; 1940 ।

डॉ० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय
साहित्यवाचस्पति

1. द नेशनल फ्लैग एंड अदर ऐसेज; 1944 ।
2. कविवर तानसेन, सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग;
ज्येष्ठ-आषाढ़ सं० 2003 वि० ।
3. भारत संस्कृति; मित्र औ घोष, कलकत्ता;
1964 ।

डॉ० सुभद्रा चौधरी

भारतीय संगीत में ताल और रूप-विधान-लक्ष्य-
लक्षणमूलक अध्ययन; कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर;
1984 ।

श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी
तथा

खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार; राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली; 1976 ।

आचार्य बृहस्पति

श्री सोमानंद नाथ

श्री ललिता सहस्रनाम-भाष्य; प्रथम संस्करण;
इंदिरा प्रकाशन, पटना; सं० 2040 वि० ।

श्री हरिराय

252 वैष्णवन की वार्ता; वैष्णव रामदास जी
द्वारा संपादित; गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
बंबई; सं० 1988 वि० ।

डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी
साहित्यवाचस्पति

1. मानसिंह और मानकुतूहल; विद्यामंदिर
प्रकाशन, ग्वालियर; सं० 2010 वि० ।
2. मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी); विद्या-
मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर; 1955 ।
3. साधनकृत मैनासत; विद्यामंदिर प्रकाशन,
ग्वालियर; 1959 ।
4. नारायणदास कृत छिताईचरित; विद्या-
मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर; 1960 ।

5. महाकवि विष्णुदास कृत महाभारत (पांडव चरित); विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर; 1973 ।

6. ग्वालियर के तोमर; विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर; 1976 ।

मौलाना हाफिज मुहम्मद

उर्दू भाषा का इतिहास; ओरिएण्टल कालेज मेगजीन; नवंबर 1934 ।

शुद्धि-पत्र

बहुत सावधानी बरतने पर भी मुद्रण की कुछ भूलें रह गई हैं, इसका हमें खेद है। पाठकगण कृपया उन्हें सुधार कर ही पुस्तक पढ़ें। धन्यवाद।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
1	27	अन्तर्साक्ष्य	अन्तःसाक्ष्य
3	14	त्रईफल	त्रैफल
5	9	किदवन्ती	किंवदन्ती
11	33	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
23	13	षड्यंत्र	षड्यंत्र
33	30	इस	इन
35	7	भुभुक्षा	बुभुक्षा
37	13	लाखति	लाखनि
61	6	ज्ञानमनि कर विचार	ज्ञानमनि गीता कर विचार
62	10	16	19
64	14	तांटक	ताटंक
	17	मानौ तन तनी	मानौ तनी तनी
	30	तानसेन	सूरदास
66	18	नित-निति	नित-नित
68	4	इलाहवाद	इलाहावाद
73	5	दीपक	मेघ
75	22	षड्यंत्र	षड्यंत्र
84	28	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
86	13	को	की
92	13	सांस्कृत्यायन	सांस्कृत्यायन
94	29	मालिख मालिख	मा लिख मा लिख
104	2	का	के
	21	अंतर्साक्ष्य	अंतःसाक्ष्य
112	14	महती	महान्
113	7	दीए	दिए
134	1	बिदुषियों	विदुषियों

140	1	तुअ समान को दूजो	तुअ समान को दूजो
145	1	विदुषी-फांस्वाञ	विदुषी फांस्वाञ
	4	महती	महान्
146	24	उद्देश्य	उद्देश
148	2	स्वच्छंद	स्वच्छंद
149	9	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
150	32	प्रथ चरण	प्रथम चरण
154	24	सतसयरा	सतसैयरा
155	12	निकटम	निकटतम
157	12	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
158	29	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
164	10	लब्ध-विप्रा	विप्रलब्धा
168	19	जन	तन
187	19		पूरी पंक्ति काट दें
188	17	नायिका के नायक	नायिका द्वारा नायक
190	9	ताल	तान
228	16	अनुकरणीय	अननुकरणीय

गढ़गोपाचल रे आकी है कमलासन नारी कमला
आकी ताली लिरा प्रथम औतार लीनो हो ।

पिय के आवन की सा अब में आगम पायी रो माई रो माई
कुच भुज फरकाने और आंख बाई कगवा सगुनवा सुनाई ॥

साधन बन छाये द्रुम बेली माधौ भवन अति प्रकारम बरन बरन पुष्परा
कोकिला खंजन कीर कपोत अति आनन्द कारि चहु ओर भर बरसा

छत्रपति राजा मान चिरजीव रहौ जौलों ध्रुव मेरु तारौ ।

वह देस तैं गुनीजन आवत तुम पै थावत पावत मज इच्छा

तुम सौ नहीं और कासैं जाय कहूं दौर वही आज कीरत को

देत करोरन गुनी जनन को अजाचक कीये तानसेन प्रतिप

रि आली आज सुभ दिन गावहु मंगल चार ।
चौक पुरावौ मृदंग बजावौ रिभावी कथावौ वाधौ बदन बाव ॥
गली-गधर्व-अप्सरा-किन्नर बिन खव बजै करतार ।
धन धरी धन पल-महूरत तानसेन प्रभु पर बलिहार ॥

पिया की मया मो पै कही न
तानसेन के प्रभु पलकन

आई उषा

हेमकिरीटिनी उषा देवी कनक

सिंधु दारि उदत भानु विमल सो

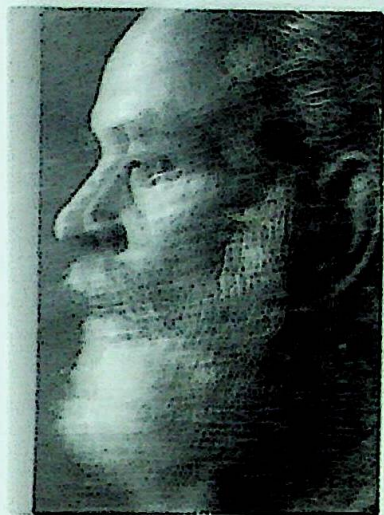
बिहग माधुर ललित तान गावै भुव

कमल नेत्री गायत्री जगधात्री जाकी

लत फूल भई पिया के सुरव की अरानी ।
मद भीरा देत लेत राग कान हरे की तान हंसत हंसत बात करत मत

सरस्वती तरन लागी हिय में दो तंवा डार ॥

जियै जू हमैं ब्रज बसि वौ बांसुरी न
सुरी की टेर सुनत रहत ना परत
उन सुर गायै तैतै हम भेद लीन
सेन के प्रभु दया की जै मो पर



जैसे जैसे वेलेम म्यूजियम, बंबई की प्राचीन चित्रों
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी का इतिहास-
अस्थान; मध्य प्रदेश गजेटियर का संपादक-मंडल;
हिंदी की हिंदी समिति; कार्यक्रम सलाहकार समिति, आकाश-
वाणी, आदि ।



• designed & printed by

Rituraj Ashutosh Dvivedi

Vidyamandir, Morar

Gwalior-474006

Phs: 823072340